ऋषभायण में बिम्ब योजना

जैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय) के
संस्कृत एवं प्राकृत विभाग में पी.एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबंध

शोध–निर्देशक

डॉ. हरिशंकर पाण्डेय

यू.जी.सी. द्वारा नवीं राष्ट्रीय शोध पुरस्कार से पुरस्कृत
पूर्व अध्यक्ष, प्राकृत एवं जैनागम
जैन विश्वभारती संस्थान
सम्प्रति–अध्यक्ष, प्राकृत एवं जैनागम विभाग
सहायक–संकायाध्यक्ष, छात्र कल्याण संकाय
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

शोधकर्त्री

सुनीला नन्द नाहर

(एम.ए., साहित्य–रत्न, एल.एल.बी.)

जैन विश्वभारती संस्थान

लाडनूँ-341306

ऋषभायण में बिम्ब योजना

जैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय) के
संस्कृत एवं प्राकृत विभाग में पी.एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबंध

शोध–निर्देशक

डॉ. हरिशंकर पाण्डेय

यू.जी.सी. द्वारा नवीं राष्ट्रीय शोध पुरस्कार से पुरस्कृत
पूर्व अध्यक्ष, प्राकृत एवं जैनागम
जैन विश्वभारती संस्थान
सम्प्रति–अध्यक्ष, प्राकृत एवं जैनागम विभाग
सहायक–संकायाध्यक्ष, छात्र कल्याण संकाय
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

शोधकर्त्री

सुनीला नन्द नाहर

(एम.ए., साहित्य–रत्न, एल.एल.बी.)

जैन विश्वभारती संस्थान

लाडनूँ-341306

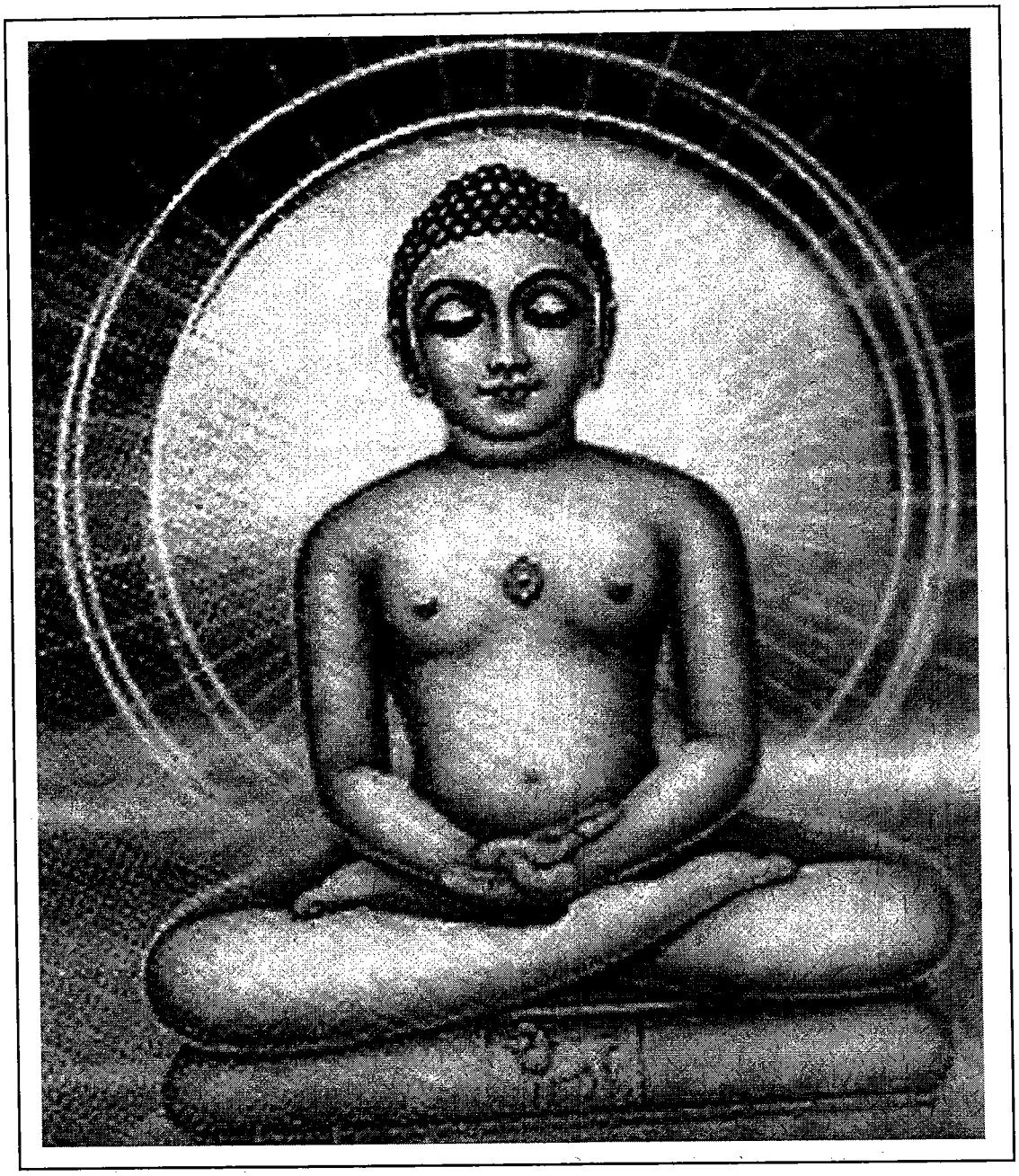

नमो अरिहंताणं

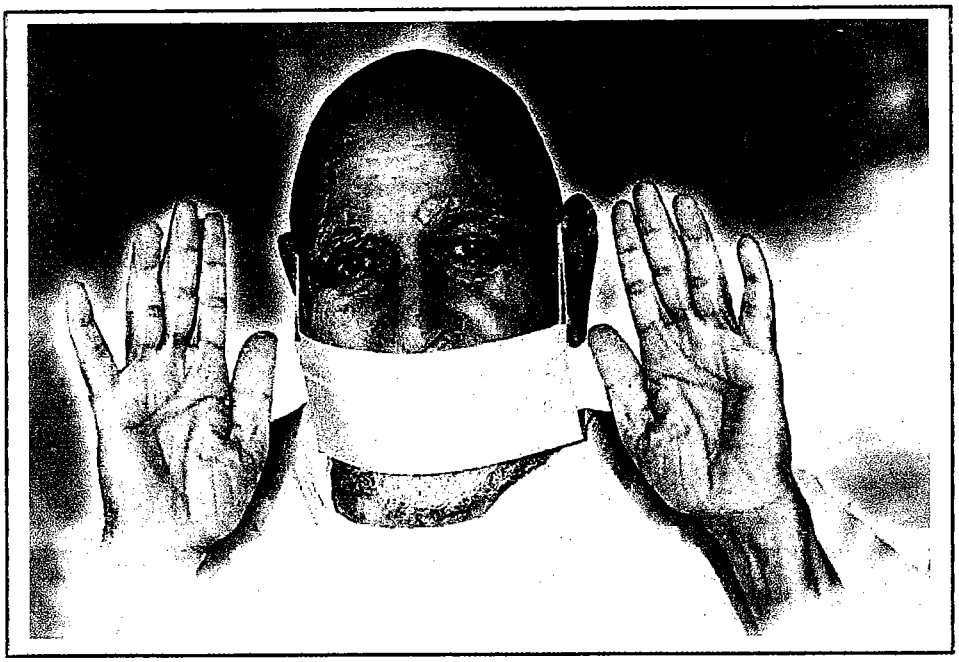

नमो आयरिय पण्णाणं

यह शोध ग्रन्थ पूज्य गणाधिपति गुरूदेव
आचार्य श्री तुलसी को समर्पित

सुनीला नन्द नाहर
मेहकर (महा.)

प्रो॰डॉ॰ हरिशंकर पाण्डेय
पी॰ एच्-डी॰, डी॰ लिट्
अध्यक्ष, प्राकृत एवं जैनागम विभाग
9 वीं यू. जी. सी राष्ट्रिय शोध पुरस्कार-2002
आचार्य महाप्रज्ञ साहित्य पुरस्कार-2006 से पुरस्कृत
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

फोन नं॰ : ~~0542-2208845~~
मो॰ नं॰ : 9935287205
: 9451885545

~~आवासीय पता : 17, प्राचीनशिक्षक आवास~~
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय,
जगतगंज, वाराणसी-221002

पत्राङ्क ... ...

दिनाङ्क ... ...

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती सुनीलानन्द नाहर ने मेरे निर्देशन में "ऋषभायण में बिम्बयोजना" विषय पर पीएच्.डी की उपाधि के लिए शोध प्रबन्ध का निबन्धन किया है। अभी तक इस विषय पर कार्य नहीं हुआ है। यह शोध प्रबन्ध सर्वथा नव्य, भव्य एवं काव्य-शास्त्रीय-निकष से सम्पन्न है। आवश्यक शोध-प्रविधियों से सम्भूषित है। इस शोध-प्रबन्ध को पीएच्॰ डी उपाधि के लिए विश्वविद्यालय को प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान करता हूं। शोध कर्त्री की माङ्गलिक भविष्य की कामना करता हूं।

हरिशंकर पाण्डेय
18/1/10

भूमिका

उपोद्धात (prologue)

जब कवि–प्रतिभा किंवा ऋषि–प्रज्ञा किसी महदुद्देश्य से सम्बद्ध महचरित्र की संस्थापना तथा आस्तिक जगत् के लिए 'रामादिवत् वर्तितव्यं न च रावणादिवत्' की प्रतिष्ठापना के लिए जाग्रत होती है। तब महाकाव्य का जन्म होता है, जिसमें सृजनधर्मिता का उद्दाम–वैभव, चिन्तन की सहजविभूति तथा दूरदर्शिता का अकाट्य और अखण्ड ललित–आलम विद्यमान होता है। जहाँ जीवन के सम्पूर्ण संभावनाओं की अभिव्यक्ति आस्तिकता के धरातल पर संगठित होती है। जहाँ रूप के साथ रमणीयता और चर्वणीयता का सहज योग विद्यमान रहता है।

आचार्य़ महाप्रज्ञ विरचित 'ऋषभायण' अखण्ड मानवता का विलसित महाकाव्य है, जिसमें आचार्य महाप्रज्ञ जैसे अनाविल प्रतिभा, ऋतम्भरीया–प्रज्ञा तथा चिदम्बरीय–कल्पना ललित महाकवि की हृदय से संभूत सहज–संवेद एवं चिताकर्षक शब्दलहरियां विद्यमान है तो विद्वद्मनोरंजिनी चेतना की ऊर्मियाँ भी उल्लसित हैं। भगवान् किंवा महामानव ऋषभ के चरित्र का आश्रयण कर अतीत और वर्तमान का सहज समन्वय संस्थापित किया है। इस विशिष्ट महाकाव्य में कवि ने सार्थक बिम्बों का प्रयोग किया है। उन्हीं बिम्बों का अनुशीलन, परिशीलन में मेरी मति प्रवृत्त हुई।

समस्या (Problem)

बिम्ब क्या है ? ऋषभायण के संदर्भ में बिम्ब का क्या स्वरूप हो सकता है, बिम्ब की काव्य में क्या आवश्यकता है, बिम्ब के कितने भेद हैं–आलोचना शास्त्र तथा कवि–परम्परा में बिम्बों की उपयोगिता है, ऋषभायण के कवि ने किस तरह के बिम्बों का प्रयोग किया है। उनकी बिम्ब–प्रयोग की सार्थकता क्या है–आधुनिक संदर्भ में उसकी उपयुज्यता क्या है ? आदि समस्याओं के समाधान हेतु तथा ऋषभायण के हार्द को समझने के लिए, क्योंकि काव्य का प्राण तत्व बिम्ब होता है, ही इस शोधकार्य में संलग्नता का मेरा मानस बना।

उद्देश्य

ऋषभायण आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा रचित महाकाव्य है। यह हिन्दी का कालजयी काव्य है। इस महाकाव्य में भावना तथा विचारणा का अद्भुत सामंजस्य

है। लोकमानस में विचारक और दार्शनिक के रूप में आचार्य महाप्रज्ञ की गहरी छाप है। इसमें संदेह नहीं कि आचार्य महाप्रज्ञ एक वैचारिक कवि हैं लेकिन विचार को कविता में बदलना सबके बूते की बात नहीं है। उच्चकोटि की सर्जनात्मक प्रतिभा से सम्पन्न एक अतिशय संवेदनशील मन का स्वामी हुए बिना यह कार्य संभवनीय नहीं है। मेरा चिंतन है बिम्बों की दृष्टि से 'ऋषभायण' का अध्ययन करने से शायद महाकवि आचार्य महाप्रज्ञ की संवेदनशीलता की थोड़ी–बहुत थाह लग सकती है और यह कार्य करने का विचार किया। 'ऋषभायण में बिम्ब विधान' पर कार्य करना इसलिए स्वीकार किया क्योंकि बिम्ब कवि–कर्म की सफलता का ठोस और प्रामाणिक मापदंड है। जिस कवि में कल्पना की जितनी यथार्थता व भावना की गहराई स्पर्श करती है, उसके बिम्ब उतने ही जीवन्त होते हैं।

बिम्बों में कवि की संवेदनशील की कसौटी ठहराने की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण पहल केरोलीन स्पर्जियन ने की थी। जिन्होंने शेक्सपीयर के बिम्बों का अध्ययन करते हुए उनके सहारे कवि के व्यक्तित्व, मनोदशा और विचारों के अतिरिक्त उनके नाटकों की विषय–वस्तु और चरित्रों पर भी प्रकाश डाला था। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि सेसिल डे लेविस की 'दि पोएटिक इमेज' तथा फैंक की 'रोमांटिक इमेज' इस दिशा में नयी संभावनाओं का द्वारा खोलते हैं। हिन्दी में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'रसात्मक–बोध के विविध रूप' शीर्षक निबंध द्वारा इस विषय पर प्रकाश डाला है। आचार्य नंद–दुलारे वाजपेयी ने प्रसाद और निराला के बिम्बविधान पर तथा डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने पुराकथाओं व मिथकों को लेकर कुछ महत्वपूर्ण संकेत किये हैं। डॉ. केदारनाथ सिंह ने 'आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान का विकास' विषय पर शोध–प्रबंध लिखा। डॉ. रामयतन सिंह 'भ्रमर' ने आधुनिक हिन्दी कविता में चित्र–विधान विषय पर कार्य किया। डॉ. सुधा सक्सेना ने जायसी की बिम्ब योजना तथा डॉ. सुशीला शर्मा ने 'तुलसी साहित्य में बिम्ब–योजना' पर गहरा कार्य किया।

बिम्ब–विश्लेषण हमें काव्य व्यापार के मूल तक पहुँचाने में समर्थ होता है। पाश्चात्य कवि, आलोचक बिम्ब को 'काव्य की आत्मा' मानते हैं। वस्तुतः बिम्ब प्रत्येक युग व देश की कविता का एक शाश्वत तत्व है। आचार्य महाप्रज्ञ विश्व–कवि हैं उनकी कविताओं का संग्रह वह ऋषभायण महाकाव्य लोकमानस में जन–मन तक पहुँच रहा है। अतः अब इन कविताओं तथा महाकाव्य के महात्म्य का अनुभव करना

आवश्यक है। उनकी सूक्तियाँ, मुहावरे, सुंदर कल्पनाएँ एवं उपमाओं का संग्रह संकलन रूप में प्रकाशित हो जन–जन पर एक पहुँच रहा है। पाश्चात्य सिद्धांत के अनुसार बिम्ब–विधान के आधार पर ऋषभायण का शास्त्रीय विवेचन अभी तक नहीं हुआ है। प्रस्तुत श्रम इसी अभाव की पूर्ति का प्रयास है। आज का जीवन चिंतन ही नहीं बल्कि तार्किकता, बौद्धिकता व पाश्चात्य सम्पर्क से प्रभावित है। चारों ओर सुख–शांति ढूंढने की कोशिश में और ज्यादा अशांत होता जा रहा है। अतः अपने लक्ष्य में पहुँचने के लिए यह ऋषभायण ही एक समाधान है। स्वयं आचार्य महाप्रज्ञजी कहते हैं–"हम दर्पण से परिचित हैं और प्रतिबिम्ब से भी परिचित हैं। बिम्ब से परिचित नहीं हैं, जिसे बिम्ब मान रहे हैं वह भी वास्तव में प्रतिबिम्ब है। शरीर बिम्ब नहीं है। बिम्ब है–'आत्मा अथवा चेतना'। प्रेक्षा एक दर्पण है उसमें अपना बिम्ब देखा जा सकता है। ऐसा दर्पण, जो प्रतिबिम्ब को नहीं लेता, केवल बिम्ब को ही बिम्बित करता है। हम इस प्रकार के दर्पण से भी परिचित नहीं है। हमें परिचित होना है और इसीलिए होना है कि हम स्वास्थ्य और शांतिपूर्ण जीवन जी सकें।

अपने दर्पण का निर्माण और अपने बिम्ब का दर्शन। प्रेक्षा निर्जरा की प्रक्रिया है, जिससे पुराने संस्कार क्षीण हो सकें। प्रेक्षा–संवर का प्रयोग है, जिससे प्रतिबिम्ब पैदा करने वाले परमाणु चेतना के भीतर न आ सके। शोधन और निरोध तथा निरोध और शोधन इस श्रम का परिणाम है बिम्ब का दर्शन, साक्षात्कार।"1

(1. अपना दर्पण : अपना बिम्ब, आचार्य महाप्रज्ञ)

अपना दर्पणः अपना बिम्ब के संपादकीय में संकलित है "बिम्ब है आत्मा। प्रतिबिम्ब है शरीर, वाणी और मन। आत्मा शरीर में है पर वह शरीर नहीं है। शरीर आत्मा की अभिव्यक्ति का स्रोत है पर आत्मा नहीं है। x x x

बिम्ब को जानने के लिए प्रतिबिम्ब को जानना आवश्यक है और आवश्यक है प्रतिबिम्ब से परे जाना। बिम्ब के दर्शन का अर्थ है – आत्मा के शुद्ध स्वरूप का बोध।"

व्यक्ति का जब जीवन मन से संचालित होता है तो वह स्वयं व दूसरों के लिए भारभूत होकर भयावह होने लग जाता है। जिस समाज में आवश्यकता सीमित लेकिन साधन असीमित होता है तब जीवन में उतनी समस्या महसूस नहीं होती परन्तु ठीक इसके विपरीत साधन सीमित व आवश्यकताएँ असीमित होने पर उस समाज के स्वस्थता की स्थिति संदिग्ध हो जाती है। ऐसे समय में आत्मा के संयम का अंकुश हर जन में लगना जरूरी है तथा श्रमनिष्ठा के प्रति हर इंसान का

जागरूक होना आवश्यक है। इस ऋषभायण में बदलते हुए वक्त परिवेश में होने वाला रूपांतरण का बड़ा ही रोमांचकारी निदर्शन है। युगलिक युग में मनुष्य समाज के निर्माण की ओर बढ़ा। सुविधा के अभाव में व्यवस्थाओं का जन्म हुआ। राजा ऋषभ ने अभाव व अव्यवस्था में सबको व्यवस्थित होने, जो कर्मभूमि के सिंहद्वार में प्रवेश करने का संदेश दिया, वही अनेकानेक सिद्धान्त व अनुरणीय तथ्य इसी 'ऋषभायण महाकाव्य' में समादृत है। साम्राज्य विषयक परिकल्पना, साम्राज्य के अधिकारी, शासन और न्याय–व्यवस्था, राजस्व–व्यवस्था, दंड व्यवस्था, सैन्य संगठन, यौद्धा और युद्ध का सांगोपांग चित्रण है।

महाकाव्य में इतना ही नहीं सद्गुरू गौरव अंतर्निगूढ़ता (आत्मा व सिद्धावस्था), जगत्–निरूपण, माया–महिमा, मोक्ष–मीमांसा का सांगोपांग चित्रण है। दार्शनिक लक्ष्य में आतंरिक शुचिता और व्यापक जीवन–दृष्टि पर चिंतन है। व्यंजित सामाजिक संस्कार और सामाजिक रीतियाँ में सामाजिक विश्वास और प्रचलित परंपराएँ, नारी विषयक चिंतन, मानवीय एकता के विधायक तत्वों पर गूढ़ प्रकाश प्रतिपाद्य है, जिसकी आज के वक्त को सख्त जरूरत है।

शोध–प्रविधि (Research Methodology)

प्रस्तुत शोधकार्य में विवेचनात्मक, समीक्षात्मक पद्धति का समाश्रयण किया गया है। सिद्धान्त एवं प्रयोगगत तथ्यों का विवेचन–विश्लेषण के सम्बन्ध में विवेचनात्मक तथा समीक्षा के काल में समीक्षात्मक पद्धति का आश्रयण किया गया है। सिद्धान्तोपस्थान उदाहरण–प्रस्तावन, ऋषभायणगत–उदाहरण का विवेचन–विश्लेषण और समीक्षण की पद्धति के अनुसार प्रस्तावित शोधकार्य की पूर्णता की सिद्धि की गई है।

कृत्कार्यो की समीक्षा

अभी तक ऋषभायण पर बिम्ब विषयक कार्य नहीं हुआ है।

शोध सीमा निर्धारण

बिम्बों की सिद्धान्तगत प्रस्तुति के उपरान्त ऋषभायण के मूल उदाहरणों को उद्धत कर उनकी समीक्षा तक शोध की सीमा निर्धारित है।

शोध–संसाधन

यह शोधकार्य मूलतः पुस्तकालयों, समीक्षा–ग्रंथों तथा गुरूजनों के साथ 'विवेचन, विमर्शन एवं विश्लेषण की प्रक्रिया' पर आधारित है। इसमें विभिन्न पुस्तकालयों की यात्रा तथा विशिष्ट विद्वानों से सम्पर्क किया गया है।

आधुनिक युग को अवदान

1. आचार्य महाप्रज्ञ की नव्य एवं भव्य कृति की गुणवत्ता से आस्तिक संसार परिचित होगा।

2. शोधार्थियों, अध्ययनार्थियों के लिए बहुमूल्य संसाधनों की उपलब्धि।

——00——

दो शब्द

पाश्चात्य साहित्यिक जगत में समयानुक्रम में जो–जो वैचारिक धाराएँ प्रवाहित होती रही हैं, उसका प्रभाव किसी न किसी रूप में पौर्वात्य साहित्य पर भी पड़ता रहा हैं। 'प्रतीक' की भाँति 'बिम्ब' विद्या का विकास पाश्चात्य जगत् की ही देन हैं। इसका मतलब यह कतई नहीं लगाया जा सकता कि भारतीय कवि बिम्ब विधान से अपरिचित थे। सिद्धांतः भारतीय काव्यशास्त्र में ध्वनि, रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, औचित्य, की विशद व्याख्या मिलती है, किन्तु सिद्धांत के तौर पर बिम्ब विधान पर कोई चर्चा नहीं की गई है। जबकि उपर्युक्त सभी भारतीय काव्यशास्त्रीय के विचारों की दृष्टि से बिम्ब की पुष्टि होती हैं। ध्वनि, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति आदि अपना प्रकाशन बिम्बात्मक रूप में ही करते हैं। 'रस' को तो भाव दशा का क्रियमाण तत्व होने के कारण काव्य की आत्मा के रूप में ही स्वीकार किया गया है। 'भाव' अथवा 'विचार' के प्रस्फुरण में कवि की कल्पना की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कल्पना के द्वारा भाव सत्य का प्रकाशन बिम्ब के रूप में ही होता हैं। इस प्रकार बिम्ब आधुनिक काल की एक ऐसी महत्वपूर्ण काव्य विधा है, जिसमें भाव चित्र स्पष्टतः उभरते हैं। कवि की कल्पना जितनी ही मर्मस्पर्शी होगी, भाव चित्र भी उतना ही गहरा होगा।

यो तो हिन्दी साहित्य में छायावादी युग से ही सिद्धांत रूप में बिम्ब बहुला कविताएँ लिखी जाने लगी थी। आचार्य शुक्ल जैसे मूर्धन्य समीक्षों ने भी कवि एवं काव्य की कसौटी बिम्बों के सशक्त प्रयोग को ही माना हैं। डॉ. नगेन्द्र, डॉ. केदारनाथ सिंह, डॉ. अखौरी, बृजनंदन प्रसाद जैसे प्रभृत्त विद्वानों ने बिम्ब के स्वरूप तथा उसके क्रियमाण प्रभाव की विषद विवेचना की है। जिससे आधार बनाकर हिन्दी साहित्य व संस्कृत साहित्य के अधिकांशतः पुराने व नवीन कवियों के द्वारा बिम्ब विधा की गहराई से तलाश भी की गई है। हिन्दी साहित्य में सूर, तुलसी जायसी, प्रसाद, पंथ, निराला, महादेवी वर्मा, सुमन, मुक्तिबोध, समशेर बहादुर सिंह, अज्ञेय आदि ऐसे कवि है, जिन्होंने सशक्त बिम्बों को गढ़ा हैं। आज भारतीय काव्य के साँचे में 'बिम्ब' इस रूप में ढल गया है कि लगता ही नहीं कि वह पाश्चात्य जगत की देन है। प्राचीन कवियों को बिम्ब की कसौटी पर कसने से ऐसा लगता है कि कवि पूर्णतः इस विद्या से परिचित थी। भले ही इसका जन्म आधुनिक काल में हुआ।

आधुनिक काल का कवि चूँकि बिम्ब के सैद्धांतिक पहलू से भी परिचित है इसीलिए उनकी कविताओं में विविध भाव बिम्बों का पूर्णतः प्रसार देखा जा सकता है। आचार्य महाप्रज्ञ आधुनिक काल के विशेष भावभूमि पर प्रतिष्ठित है, क्योंकि वे कोरे कवि नहीं, गहरे ध्यान में पैठने वाले साधक भी है, इसलिए उनके काव्य में बिम्बों का पारदर्शी रूप सहज ही दिखाई देता हैं। उनकी दृष्टि अनेकांत दृष्टि है, जिसमें सभी दृष्टियों का तिरोभाव हो जाता हैं। इस रूप में भी उनके द्वारा निर्मित बिम्ब बहुत ही आकर्षक बन पड़े हैं।

वस्तुतः आचार्य महाप्रज्ञ संस्कृति साहित्य के मर्मज्ञ है, जिसका परिणाम यह हुआ कि उनके द्वारा रचित हिन्दी से संबंधित काव्य ग्रंथों का शरीर तो हिन्दी का ही है, किन्तु उसकी आत्मा में संस्कृत भी। जिसके कारण उनकी भाषा भी परिशुद्धता से परिपूर्ण हैं। भाषा का यह शुद्धिकरण कही न कही उनकी सम्यक दृष्टि, सम्यक ज्ञान एवं सम्यक चारित्र्य को प्रस्तुत करती है, जो किसी भी साधक की अक्षय निधि मानी जा सकती हैं।

'ऋषभायण' महाकाव्य पर जहाँ तक मैं जानती हूँ अभी तक कोई शोध कार्य नहीं हुआ हैं यह बात अलग है कि जतन लाल जी रामपुरिया ने 'अनुकृति' के द्वारा ऋषभायण पर भक्त दृष्टि अपनाते हुये उसके अध्यात्मिक पहलुओं को उजागर किया है, निश्चित उनका यह महत्वपूर्ण प्रयास हैं किन्तु बिम्ब की दृष्टि से इनमें कहीं भी जतनलाल जी रामपुरिया की खोजी दृष्टि नहीं दिखती और न ही महाकाव्य का सम्पूर्ण चित्रफलक ही उजागर होता है, हाँ उनका प्रारंभिक प्रयास आदरणीय है। कन्हैयालाल फूलफगर के सम्पादकत्व में आचार्य महाप्रज्ञ के साहित्य पर विविध विद्वानों के लेख 'महाप्रज्ञ का रचना संसार' कृति में निबंधित है, जिसमें 'आर्ष चेतना का स्रोत्र : ऋषभायण महाकाव्य' शीर्षक में डॉ. राजेन्द्र मिश्र के लेख को स्थान दिया गया है। इस लेख में लेखक ने लिखा है कि 'वस्तुतः मैं ऋषभायण महाकाव्य की सार्थकता, नामान्वर्थकता तथा महाकाव्य की लक्ष्य सिद्धि भी पंचमसर्ग तक ही मानता हूँ। एतावन्मात्र कथानक से भी महाकाव्य की सांगोपांगता में कोई कमी नहीं दिखाई देती। महाकाव्य की शेष गाथा ऋषभगाथा की बजाय संतति गाथा मात्र है, जिसका ऐतिहासिक महत्व निश्चय ही साभिनंदन एवं स्वीकारणीय है। महाकाव्य की लक्ष्य सिद्धि विद्वान लेखक के द्वारा पाँचवे सर्ग तक ठहराना क्या उचित है ? यदि पाँचवें सर्ग के बाद कथा विकसित न होती तो क्या 'ऋषभायण'

महाकाव्य कालजयी ग्रंथ बन पाता ? वस्तुतः महाकाव्य में एक बात विशेष रूप से परिलक्षित होती है, और वह है ऋषभ के द्वारा स्वयं आत्मोत्थान करते हुए परिजनों के आत्मोत्थान द्वारा भौतिक मानसिक दशा का मार्गान्तरीकरण करना, इस दृष्टि का विकास पाँचवे सर्ग के बाद अंतिम सर्ग तक दिखाई देता हैं, इसीलिए इस संदर्भ में आदरणीय मिश्र की दृष्टि एकांगी जान पड़ती हैं।

ऋषभायण एक कालजयी ग्रंथ हैं, जिसे विविध बिम्बों का भंडारगृह भी कहा जा सकता हैं। कवि की दृष्टि जहाँ भौतिक सत्य को बिम्बित करती है, वहीं उनकी सूक्ष्म दृष्टि मानसिक जगत, अध्यात्मिक जगत का दृश्य भी उपस्थित करती है। अकर्म युग से कर्म युग में प्रवेश संबंधी जहाँ युगलों के जीवन से संबंधित विविध समस्याओं एवं उत्कर्ष को उजागर किया गया है, वहीं ऋषभ के रूप में आत्मान्वेषण की सर्वोच्चता का भी निष्पादन किया गया है।

सात अध्यायों में विभक्त इस शोध प्रबंध के प्रथम अध्याय में समीक्षा के तत्वों के मानदंडों पर ऋषभायण की तथ्य परक विवेचना की गई हैं। 'कवि और काव्य' शीर्षक के अन्तर्गत कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व विशद चर्चा के साथ काव्य का लक्ष्य उद्घोषित किया गया है।

द्वितीय अध्याय में 'बिम्ब के स्वरूप' के अन्तर्गत बिम्ब को परिभाषित करने का प्रयास किया गया हैं, साथ ही साथ भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षा में बिम्ब के स्वरूप को उद्घाटित करते हुए कवि, काव्य, रस, अलंकार, प्रतीक, सूक्ति आदि से बिम्ब का संबंध स्थापित करते हुए, उसके प्रकारों का उल्लेख किया गया हैं।

तृतीय अध्याय ऐन्द्रिक बिम्बों पर आधारित है, जिसमें रूप, शब्द, गंध, आस्वाद्य एवं स्पर्श्य बिम्बों के आरेखन के साथ ही साथ एकल, संश्लिष्ट, गतिक एवं स्थिर परक बिम्बों की गहराइ से जांच की गई है।

चतुर्थ अध्याय में भाव बिम्बों का परीक्षण स्थायी एवं संचारी भावों के अन्तर्गत किया गया हैं। पंचम अध्याय मूर्त्तामूर्त्त बिम्बों से संबंधित है। छठवें अध्याय में अभिव्यक्ति विषयक–जैसे–अभिधा, लक्षणा, व्यंजना, लोकोक्ति, मुहावरे, प्रतीक, मानवीकरण, पौराणिक एवं महापुरूष चरित्र विषयक बिम्बों का प्रकाशन किया गया है। अंतिम अध्याय में, उपसंहार के अन्तर्गत कवि के समग्र विचारों के काव्य वैशिष्ट्य का आकलन किया गया हैं।

——00——

कृतज्ञता

विद्या की अधिष्ठात्री देवी माँ सरस्वती, कृपालु माँ पद्मावती, पुरूषार्थ बढ़ाने वाली माँ चक्रेश्वरी के प्रति नमन्। गणाधिपति गुरूदेव आचार्य श्री तुलसी की कृपावृष्टि की अनुभूति के लिए मैं अशब्द हो जाती हूँ, आँखें नम जाती हैं। साहित्य के मर्मज्ञ, विद्वर्य समाज में ख्यात् धर्मचक्रवर्ती, अणुव्रत, अनुशास्ता अहिंसा यात्रा के प्रवर्तक, ज्ञान यज्ञ के पुरोधा, आचार्य महाप्रज्ञ का प्रोत्साहन, वात्सल्य, मार्गदर्शन व अहैतुकी कृपा मुझे न मिला होता तो यह ग्रंथ कभी भी इस रूप में न आ पाता। गुरू के प्रति चरमभक्ति उनकी काव्य दृष्टि का समझने के लिए मुझे हमेशा प्रेरित करती रही हैं। वस्तुतः आचार्य वर द्वय की प्रेरणा का परिणाम है—यह शोध प्रबंध। अस्तु यह शोध प्रबंध मय गणाधिपति गुरूदेव आचार्य श्री तुलसी के श्री चरणों में समर्पित करती हूँ।

युवाचार्य महाश्रमण जी, साध्वीप्रमुखा महाश्रमणी जी की कृपा दृष्टि में मै आकंठ डुबती रही हूँ। मुनि महेन्द्र कुमार जी, मुनि किशन लाल जी, मुनि सुख लाल स्वामी जी, मुनि सुमेर मुनि जी, मुनि जयचंद लाल जी किन—किन का नाम स्मरण करूँ, सभी साधुगण वंदनीय हैं, बड़ा योगदान रहा। मुनि धनजंय कुमार जी ने कहा था चारों तरफ के कार्य में विभक्त शक्ति को एक तरफ केन्द्रित कर यह रिसर्च कार्य पूर्ण कर लो, आप भी प्रेरक है। साध्वी राजीमती जी, साध्वी संघमित्रा जी, साध्वी जयश्री, साध्वी विद्यावती जी, साध्वी कमल प्रभाजी, साध्वी रतन श्री जी, साध्वी जिन प्रभा जी, आदि साध्वीगण के अवितथ—कृपा का प्रसाद—पाथेय मिलता रहा हैं, वंदन!

साहित्य पुरस्कार से पुरस्कृत डॉ. हरिशंकर पाण्डेय अध्यक्ष, प्राकृत एवं जैनागम विभाग, संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणासी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना महज औपचारिकता होगी। मुम्बई निवासी प्रो. डॉ. ललिता बी. जोगड़, भीकमचंद जी कोठारी टाडगढ़, (नई मुंबई), डॉ. भागचंद जैन 'भास्कर' व डॉ. पुष्पलता जैन नागपुर, डॉ. आदित्य प्रसाद तिवारी सभी कार्य विकास हेतु प्रेरित कर उत्साहवर्धक बनते रहें। प्राचार्य डॉ. कृष्ण दत्त तिवारी, सतना, सी.एम.ए. विद्यालय, मध्यप्रदेश की सहजता, सरलता हमेशा लेखन में अपूर्णता से पूर्णता का स्पर्श कराती रही।

जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय लाडूनँ मनुष्य को संस्कार प्रदान करने वाला ऐसा विद्या स्थल है जो श्रेष्ठ साधको की साधना स्थली है, जहाँ अहिंसा व जीवन विज्ञान जैन दर्शन में पत्राचार से एम.ए. करने की व्यवस्था हैं। वाईस चांसलर समणी डॉ. मंगल प्रज्ञा जी प्रेक्षाध्यान पत्रिका संपादिका समणी मल्ली प्रज्ञा जी निर्देशिका समणी जी, समणी डॉ. कुसुम प्रज्ञा जी, समणी डॉ. स्थित प्रज्ञा जी, समणी डॉ. चैतन्य प्रज्ञा जी, समणी परम प्रज्ञा जी, आदि व्यक्ताव्यक्त समणी वृंद प्रणम्य हैं। डॉ. भट्टाचार्य सर, डॉ. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी, डॉ. बी.आर. दुगड़, डॉ. गौड़ सर, डॉ. संजीव गुप्ता, डॉ. भास्कर सर, डॉ. जिनेन्द्र जैन, जैन विद्या पुरस्कार से पुरस्कृत सुश्री वीणा जैन, मुमुक्षु डॉ. सुश्री शांता जैन का आशीष इस विद्या यज्ञ में काम आया।

पूज्य स्वर्गीय बालचंद जी नाहर (ससुर) व स्व. माँ साहब के व्यक्तित्व से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष अप्रत्याशित रूप से प्रेरणा मिलती रही है। डॉ. साहब के भ्रातृवृंद स्वर्गीय रतनलाल जी की सहृदयता मुझ पर बरसती रही। आदरणीय मदनलाल जी, तेजराज जी (बी.ई.), की स्नेह वृष्टि मेरे पथ का पाथेय रही। सभी जेठानियाँ मेरे उत्साह में प्रेरक रही। नंदोई सा. मुकुंदचंद जी गटागट, सौ.ताराबाई सा, अन्य नंदोई सा व बाई सा व पूरे परिवार के सदस्यों की प्रेरणा से मैं सिंचित होती रही। नाना जी सिद्धकरण जी वैद्य, सौ. रंचना चन्द्र प्रकाश वैद्य की सहृदयता से भी रोमांचित हूँ।

पूज्य पिता स्वर्गीय जोहारमल जी डाकलिया बचपन में छोटी–छोटी कहानियों से संस्कारित करने की कोशिश करते रहे। ममतामयी माँ श्रीमती सुशीला जैन के आँचल की छाया, महत्वाकांक्षी, प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उत्साही रहने का संदेश देने वाली की अनाविल व निर्द्वन्द्व आशीष काम आ रही है, क्योंकि वे उसी का अंश है। भाई सुशील का समर्पण, पुरूषार्थी सुधीर व सुरेन्द्र, भाभी सरोज, भतीजे चिंरजीव, सुशांत व भतीजी सहपरिवार का जिज्ञासु मन हमेशा अपनी उपस्थिति का एहसास कराते रहे हैं, जिसे मैं कभी भूल नहीं सकती।

मेरे पति डॉ. नंदकुमार नाहर से मैं कभी उऋण नहीं हो सकती, पग–पग पर उनका अवलम्ब मेरी मानसिक दशा के उत्थान का कारण रहा है। मैं उनकी जितनी भी प्रशंसा करूं, उतना ही कम है। पुत्र स्वप्निल, पुत्र केतन व पौत्र चैतन्य

(स्वर 11 माह की आयु वाला) मुझे पढ़ते समय, मंत्रोच्चार करते समय, देखता व शांत भाव से हलचल बंद कर केवल निहारता रहता ऐसे चैतन्य स्वर के मस्ती की थिरकन, मेरे हृदय के उत्साह को पुलकित करता रहता। उसे भी मेरा नमन्। सरदार शहर निवासी नागपुर प्रवासी सगा जी सा.छत्रमल जी दफ्तरी सपरिवार साध ुवाद के पात्र है, जिन्होंने अपनी पुत्री सौ. सोनिका का हाथ मेरे पुत्र के हाथ सौंप मुझे मानसिक समाधि बनाये रखने में सहयोग दिये। कुलेश्वर प्रसाद साहू, टायपिस्ट बिलासपुर (छ.ग.) की इस शोध प्रबंध में सहयोग के लिए आभारी हूँ। गजेन्द्र साहू का सहयोग भी सराहनीय रहा।

इस शोध प्रबंध को पूरा करने में जिन–जिन विद्वानों के ग्रंथों व लेखों से सहायता मिली है, उन विद्वानों के प्रति मैं श्रद्धावनत हूँ। दसों दिशाओं को प्रणाम। सभी भव्य व पूज्यात्माओं को प्रणाम। कमियाँ मेरी है, विशेषताएँ गुरूजनों की, सुधि ाजनों की। प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष आंशिक रूप से जो भी सहयोगी बने सबके प्रति कृतज्ञता। शोध प्रबंध यदि किंचित भी हिन्दी जगत की समृद्धि में सहायक बन सकी, तो मेरा श्रम सार्थक होगा। इसी अपेक्षा के साथ।

दिनांक–01/02/2010

शोधार्थी
सौ. सुनीला नंद नाहर
मेहकर (महा.)

तृतीय अध्याय - ऋषभायण में ऐन्द्रिक बिम्ब

- ऐन्द्रिक बिम्ब का स्वरूप एवं प्रकार
- ऋषभायण में चाक्षुष (रूप बिम्ब)
- श्रोत्र बिम्ब (शब्द)
- घ्राण (गन्ध) बिम्ब
- रस-बिम्ब
- त्वग् बिम्ब (स्पर्श बिम्ब)
- एकल ऐन्द्रिक बिम्ब
- संश्लिष्ट ऐन्द्रिक बिम्ब
- गतिक ऐन्द्रिक बिम्ब
- स्थित ऐन्द्रिक बिम्ब
- निष्कर्ष एवं अध्याय समीक्षा

चतुर्थ अध्याय - ऋषभायण में भावबिम्ब

- भाव का स्वरूप
- विभिन्न प्रकार के भाव बिम्बों का विवेचन
- वात्सल्य, भक्ति
- रति, शोक, मोह, स्पृहा
- जुगुप्ता, क्रोध, विस्मय
- हर्ष, प्रमाद, उत्साह
- निर्वेद, कृत्यकृत्यता
- शंका, इर्ष्या, मद
- श्रम आदि भाव
- बिम्बों का समीक्षण

पंचम अध्याय - ऋषभायण में मूर्त्तामूर्त्त बिम्ब

- मूर्त्त के द्वारा अमूर्त्त का उपस्थापना
- अमूर्त्त के द्वारा मूर्त्त की अभिव्यक्ति

षष्ठ अध्याय - ऋषभायण में अभिव्यक्ति प्रधान, बिम्ब

- ➲ अभिव्यक्तित विषयक बिम्बों का चित्रण
- ➲ अभिधा, लक्षणा, व्यंजना
- ➲ लोकोक्ति, मुहावरे, प्रतीक, मानवीकरण
- ➲ पौराणिक प्रसंग, महापुरुष चरित्र विषयक बिम्ब

सप्तम अध्याय - उपसंहार

ग्रंथानुक्रमणिका

--oo--

मध्यान्ह, मृगया, वन, पर्वत, सागर, संयोग–वियोग, नगर, युद्ध, पुत्र, जन्म, यज्ञ आदि का सांगोपांग वर्णन होना चाहिए।'[2]

महाकाव्य के उक्त लक्षणों के आधार पर जब हम 'ऋषभायण' का परीक्षण करते हैं तो प्रायः उसमें अधिकांश लक्षण मिलते हैं। 'सर्गबन्धों महाकाव्यम्' के अनुसार ऋषभायण महाकाव्य सर्गबद्ध है इसमें नायक ऋषभदेव हैं, जो कुलीन वर्ग से सम्बन्धित धीरोदात्त गुणों से मण्डित हैं। महाकाव्य में मूल रस, शांत रस की प्रधानता है, सहयोगी रस के रूप में वीर, वात्सल्स एवं अन्य रसों की भी योजना हुई है। 'सर्वे नाटक संधयः' के अनुसार महाकाव्य में संधियों की कड़ी बैठाना एक दुष्कर कार्य है क्योंकि ऋषभ एक योग पुरूष हैं, उनके जीवन में कोई विशेष कषाय नहीं है किन्तु ममता एक बन्धन है – (तोडूँ ममता का तटबंध) जिसे तोड़कर ही योग मार्ग के लिए प्रवृत्त हुआ जा सकता है। पाँचवें सर्ग से कथानक में नवीन मोड़ आता है और यहीं से महाकाव्य के दर्शन पक्ष के उद्घाटन के सूत्र मिलने लगते हैं। यहीं से फल प्राप्ति की आशा स्पष्ट हो जाती है। वैसे भी महाकाव्य में संधियों की प्रतिष्ठा या अप्रतिष्ठा से उसकी प्रभावान्विति पर कोई प्रभाव भी नहीं पड़ता है। महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक और पौराणिक दोनों है। ऐतिहासिक इसलिए कि यह कथा भारतीय संस्कृति के आदि सर्ग की कथा है, जिसका उत्तरोत्तर विकास यौगलिक युग से प्रारंभ होकर उन्नत दशा तक पहुँचता है। पौराणिक इसलिए कि ऋषभ पुराण पुरूष हैं। वे भागवत, विष्णु पुराण, वायु पुराण, अग्नि पुराण, मार्कण्डेय पुराण, वाराह पुराण, लिंग पुराण में अनेक रूपों में वर्णित हैं। आदि पुराण में इन्हें ब्रह्म स्वरूप कहा गया है। शिव पुराण में शिव का आदि तीर्थंकर के रूप में अवतार लेने का वर्णन है। श्रीमद् भागवत में तो अनेक प्रसंग है।[3] 'आदौ नमस्क्रिया शीर्वावस्तु निर्देश एव वा' के अनुसार आरंभ में 'मंगलवचनम्' से मंगलाचरण की योजना की गई है :–

अणंतमक्खरं णिच्चं
सासयं सासयासयं
उसभं पवरं वंदे
अत्तलीणं पवत्तगं।

ऋषभायण के छंदों में एकरसता भी है, वैविध्य भी है। प्रथम सर्ग में ही सृष्टि विकास से लेकर अंत तक किसी छंद के यदि प्रथम चरण में 13 मात्राएँ हैं तो किसी–किसी में 14–14 या 16–16 मात्राएँ, यह वैविध्य पूरे महाकाव्य में अंत तक दिखाई देता है, जैसे :–

भोक्ता चेतन, भोग्य अचेतन
दोनों से अन्वित है लोक ऋ.पृ.–4.
मिल रहे जन–जन परस्पर
हो रहा समवाय है। ऋ.पृ.–14

इस प्रकार की व्यवस्था प्रायः सभी सर्गों में हुयी है। सर्ग न तो अधिक बड़े हैं और न ही छोटे। सर्ग 3, 8, 11, 15 समान हैं अपेक्षाकृत अन्य सर्गों की तुलना में छोटे हैं। प्रथम सर्ग सबसे बड़ा है। सर्ग क्रमांक 7 एवं 14 में भी आकार प्रकार की दृष्टि से समानता है। शेष सर्ग भी आकार–प्रकार की दृष्टि से उन्नीस–बीस के अंतर से योजित हैं। इस प्रकार इसमें कुल अट्ठारह सर्ग हैं। कथा का सूत्रपात ही प्रकृति के साहचर्य से होता है, कल्पवृक्षों का वर्णन, जंगल एवं अयोध्या तथा तक्षशिला के रमणीक उद्यानों का दृश्य, वसंत वर्णन साथ ही पर्वत, नदी, सूर्य, दिन, रात, मध्यान्ह आदि का मनोहारी चित्रण किया गया है – जैसे बसंतोत्सव का निम्न दृश्य –

सुरभित उपवन का हर कोना, विहसित पुष्प पराग,
राग झांकता पूर्ण युवा बन, मीलित नयन विराग,
आया मधुमय वर मधुमास, कण–कण मुखर वसंत विलास। ऋ.पृ.–77

महाकाव्य का उद्देश्य निर्वाण अथवा मोक्ष की प्राप्ति है। इसका अंत सुखात्मक है। इस प्रकार ऋषभ स्वयं मोक्ष का वरण करते हुए माँ, पुत्रों तथा पुत्रियों के लिए भी मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

महाकाव्य के अंत में उपसंहार एवं प्रशस्ति (संस्कृत में) की योजना कवि की नई देन है। इसमें कवि ने स्पष्ट घोषणा की है :–

सत्य इतना ही नहीं, जितना कि मैं हूँ मानता
व्योम इतना ही नहीं, जितना कि मैं हूँ जानता
यह असीम इसे न अपने, सदन तक सीमित करो
पर सदन में भी गगन है, सत्य को स्वीकृत करो। ऋ.पृ.–304

प्राचीन आचार्यों ने महाकाव्य संबंधी आकलन में जो लक्षण बताएँ हैं, वे बाह्य स्वरूप हैं, जहाँ रसों की चर्चा की गयी है वहाँ आन्तरिक विशेषताओं पर अवश्य प्रकाश पड़ता है, जिसकी योजना महाकाव्य में अनिवार्य है, किंतु शेष लक्षणों का अक्षरशः उसी रूप में पालन संभव नहीं है। साहित्य इसका साक्षी है कि सत्रहवीं शती में रामचंद्र दीक्षित ने 'पंतजलि चरित' की रचना की है जिसके नायक पंतजलि मुनि है। कालिदास के 'रघुवंश' और क्षेमेन्द्र के 'दशावतार चरित' में कितने ही नायक हैं। श्री हर्ष के 'नैषध' में नल दमयंती का पूर्ण जीवन नही चित्रित किया गया है और भतृमेण्ट का 'हयग्रीव' वध ऐसा महाकाव्य है जिसमें नायक तो भगवान विष्णु हैं, किन्तु प्रतिनायक हयग्रीव का चरित्र ही प्रधान हो गया है। बंगाल के प्रसिद्ध कवि माइकेल मधुसूदन दत्त का 'मेघनाद' वध भी इसी प्रकार की रचना है। इन सब प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कितने ही कवियों ने आचार्यो द्वारा निर्धारित लक्षणों का अक्षरशः पालन नहीं किया है।'[4]

आज प्रबंध काव्य जीवन की व्याख्या नहीं करता, जीवन को व्यक्त करता है। जिससे उसका महत्व और बढ़ जाता है वास्तविकता यह है, कि समय के साथ महाकाव्य का रूप कहीं अन्य काव्यों की तुलना में तेजी से बदल रहा है। कवि व्यवहारिक अथवा कल्पना के धरातल पर ऐसे पात्रों को गढ़ता है, जिनका आदर्श व्यवहार, कार्य और चरित्र प्रत्यक्षतः समाज को प्रभावित करता है। इसलिए कुछ मान्य लक्षणों के आधार पर ही किसी महाकाव्य का मूल्यांकन करना उचित प्रतीत नहीं होता। उसका मूल्यांकन तो उसकी प्रभावान्विति पर होनी चाहिए। ऋषभायण में जीवन की सच्ची अभिव्यक्ति हुयी है, लोक में अलोक का जागरण हुआ है, फूल में सुगंध की तरह। इस संदर्भ में डॉ. शम्भूनाथ सिंह की मान्यता प्रभाव की दृष्टि से ज्यादा महत्व की जान पड़ती है। उसके अनुसार महाकाव्य वह छन्दोबद्ध कथात्मक काव्य रूप है जिसमें छिप्र कथा प्रवाह या अलंकृत वर्णन

अथवा मनोवैज्ञानिक चित्रण से युक्त ऐसा सुनियोजित सांगोपांग और जीवन्त लम्बा कथानक होता है, जो रसात्मकता या प्रभान्विति उत्पन्न करने में पूर्ण समर्थ होता है, जिसमें यथार्थ, कल्पना या संभावना पर आधारित, 'ऐसे चरित्र या चरित्रों के महत्वपूर्ण जीवनवृत्त का पूर्ण या आंशिक चित्रण होता है, जो किसी युग के सामाजिक जीवन का किसी न किसी रूप में प्रतिनिधित्व करते हैं और जिसमें किसी महत्प्रेरणा से परिचालित होकर किसी महत् उद्देश्य की सिद्धि के लिए किसी महत्वपूर्ण गंभीर' अथवा आश्चर्योत्पादक और रहस्यमय घटना या घटनाओं का आश्रय लेकर संश्लिष्ट और 'समन्वित रूप में व्यक्ति विशेष और युग–विशेष के समग्र जीवन के विविध रूपों, पक्षों, मानसिक अवस्थाओं अथवा नाना रूपात्मक कार्यों का वर्णन और उद्घाटन किया गया रहता है।'[5]

अंततः यह कहना सर्वथा उपयुक्त होगा कि ऋषभायण आत्मा के उत्थान का लोकोत्तर महाकाव्य है जिसमें जीवन का लोकपक्ष, दर्शनपक्ष एवं अध्यात्मपक्ष मुखरित हुआ है।

डॉ. भगीरथ मिश्र ने महाकाव्य के संदर्भ में सुस्पष्ट मत स्थापित करते हुए लिखा है कि "महाकाव्य विशाल जीवनानुभव, गंभीर हृदय मंथन और महान् प्रेरणा का परिणाम है। वह रचना के बाद निश्चयतः प्रशंसित और प्रख्यात होगा, इसमें कोई संदेह नहीं। पर यह तभी हो सकता है जब उसमें अभ्यांतर गुणों का समावेश हो केवल बाह्य लक्षणों की लकीर नहीं। ये गुण संस्कृति या जीवन के रहस्य उद्घाटन, गंभीर भाव प्रवाह, उत्कृष्ट कवित्व, उदात्त शैली और महान् चरित्र की उद्भावना में देखे जा सकते हैं। महाकाव्य लिखने के उद्देश्य के परिणाम सदैव महाकाव्य नहीं होते, पर इस उद्देश्य को सामने रखे बिना जो प्रतिभा संपन्न कवि, नवीन दृष्टिकोण से जीवन का स्वरूप और दर्शन तथा बहा ले जाने वाली भावों की गंभीर धाराओं को अपने काव्य में प्रवाहित करता हुआ महान् चारित्र्य की सृष्टि करता है, वह महाकवि और उसके इस प्रकार के प्रयत्न का परिणाम महाकाव्य होता है।"[6]

ऋषभायण जीवन के विस्तृत फलक पर अर्थ, धर्म, काम को निरूपित करते हुए 'मोक्ष' का दिव्य संदेश देता है।

➢ समीक्षा के तत्व

1. वस्तु पक्ष – कविर्मनीषी आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा प्रणीत 'ऋषभायण' महाकाव्य लौकिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक धारणाओं से संपृक्त आदिम संस्कृति के विकास की, कालचक्र के परिवर्तन की अद्‌भुत गाथा है। महाकाव्य का विभाजन अठ्ठारह सर्गों में किया गया है। प्रत्येक सर्ग के प्रारंभ और अंत में कवि द्वारा श्लोक की योजना की गयी है। ये श्लोक जैसे प्रत्येक सर्ग को मंत्रवत् संपुट में बाँध रहे हों। महाकाव्य की पीठिका में 'लोक' और 'अध्यात्म' से संबंधित विविध प्रश्नों को ज्ञापित किया गया है जिसका सहज, विस्तृत एवं व्यवस्थित रूपयण 'ऋषभायण' में मिलता है।

सर्ग का प्रारंभ 'यौगलिक युग' से होता है। यह कथा भारतीय संस्कृति के आदि सर्ग की कथा है। हिमालय के परिपार्श्व में यौगलिक अथवा आदिवासी युग का विकास हो रहा था। लोक और सृष्टि के इस विकास में पुद्‌गल की ही भूमिका है। 'गलन, मिलन स्वभाव के कारण पदार्थ को पुद्‌गल कहा गया है।'[7] सभी जीव, रूप, आकार, पुद्‌गल से निर्मित है। पुद्‌गल नश्वर है, सूक्ष्म से स्थूल और स्थूल से सूक्ष्म में रूपान्तरण की क्रिया पुद्‌गल से ही होती है।

समय निरंतर गतिमान है, इसकी सत्ता का निर्धारण दुष्कर है। जैनागमों के अनुसार कालखण्ड का निर्धारण छह रूपों में किया गया है जिनके नाम हैं – 1. सुषम–सुषमा, 2. सुषमा, 3. सुषम–दुषमा, 4. दुषम–सुषमा, 5. दुषमा और 6. दुषम–दुषमा। प्रथम से छठें तक अवनति की ओर चलने वाली कालचक्र की गति को 'अवसर्पिणी' तथा छठे से पहले की ओर उसके उत्कर्ष गामी प्रवाह को 'उत्सर्पिणी' काल कहा गया है। यह श्रृंखला इस जगत में अनादि–अनन्त प्रवहमान है। अवसर्पिणी के दूसरे कालखण्ड तक यौगलिकों का जीवन निस्पृह, निरामय था। सब निर्भय थे। न कोई शासक था, न कोई शासित। किसी में हिंसावृत्ति नहीं थी। पशु थे किंतु उनका उपयोग नहीं था। उनमें भी आपसी हिंसा नहीं थी। अकाल मृत्यु का लेश नहीं था। पीड़ा, दुखः बैर, प्रेम, क्रोध कुछ नहीं था। यदि कुछ था तो वह था प्रकृति का मनोमय, मनोहर प्रशांत रूप। युगलों का जीवन कल्पवृक्षों पर आधारित था। मृदांग, भृंग, त्रुटितांग, दीपांग,

ज्योतिअंग, चित्रांग, चित्ररस, मणिअंग, गेहाकार, अनग्न कल्पवृक्ष उनकी आवश्यकताओं को पूरा करते। यह निहायत 'अकर्म युग' था।

काल परिवर्तन ध्रुव सत्य है तीसरे काल चक्र से कल्पवृक्ष युगलों की आवश्यकताओं की पूर्ति में कार्पण्य करने लगे। कुछ अभाव की स्थिति बनने लगी। स्वत्वहरण, छीना–झपटी, अतिक्रमण आदि दुर्बल वृत्तियों का विकास होने लगा। युगल व्यवस्था के लिए चिंतित हुए और अभाव की पूर्ति हेतु 'कुलकर' व्यवस्था का जन्म हुआ। श्वेताम्बर जैन ग्रंथों में सात कुलकरों–विमल वाहन, चाक्षुषमान्, यशस्वी, अभिचंद्र, प्रसेनजित, मरूदेव और नाभि का नामोल्लेख किया गया है। ऋषभायण में इनका समुचित वर्णन है किंतु दिगम्बर परंपरा में चौदह कुलकरों की मान्यता है।[8] 'नाभि' को अंतिम कुलकर दोनों ने माना है। सभी 'कुलकरों' ने 'कुल' व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करने हेतु 'दण्डनीति' व्यवस्था विकसित की जिससे समाज में 'हाकार', 'माकार' एवं धिक्कार दण्डनीति समयानुक्रम से विकसित होती गयी।

द्वितीय सर्ग 'ऋषभावतार' से संबंधित है। प्रकृति दिव्य पुरूषों के अवतार की सूचना किसी न किसी रूप में देती ही है। माँ मरूदेवा का 'स्वप्न' इस संकेत का वाहक है। समय पर माँ मरूदेवा की कुक्षि से 'ऋषभ' और 'सुमंगला' का युगल रूप में जन्म हुआ। कवि की अवतारवाद की धारणा ऋषभ के अवतार से पुष्ट होती है। इधर काल अनुक्रम में 'अवसर्पिणी' का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। असमय काल अपनी बाँहे फैला रहा था। ताल के फल गिरने से नर बालक की अकाल मृत्यु युगलों के लिए बहुत पीड़ादायक थी क्योंकि वे कालमृत्यु से परिचित थे, अकाल मृत्यु से नहीं।

समय के साथ–साथ ऋषभ, सुमंगला युवा हुए। युगल परम्परा के अनुसार प्रारंभ में ये भाई बहन के रूप में होते थे, संयममय जीवन जीते थे, यौवनकाल में इनका रूपान्तरण पति–पत्नी के रूप में हो जाना था। उधर सुनन्दा जिसका युगल साथी असमय में ही मृत्यु का वरण कर लिया था, उसका एवम् सुमंगला का पाणिग्रहण संस्कार ऋषभ के साथ संपन्न हुआ। यहीं से समाज में बहुविवाह अथवा बहुपत्नीवाद परंपरा का जन्म हुआ। कालान्तर में सुमंगला

से अर्द्धशतक युगल जन्म लिए जिनमें प्रथम युगल भरत और ब्राह्मी तथा शेष उनपचास युगल नर शिशु थे। सुनन्दा 'बाहुबली' और 'सुंदरी' की माता बनी। इस प्रकार समाज में दादा–पोता का नया सम्बन्ध विकसित हुआ।

कालचक्र अबाधित गति से घूम रहा था, युगलों के स्वभाव भी बदल रहे थे। कलह, लोभ, आवेश, क्रोध आदि मनोवृत्तियाँ दृढ़ हो रही थी। कल्पवृक्ष से आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पा रही थी, जिस कारण कुलकर नाभि ने राजतंत्र की स्थापना कर 'ऋषभ' को युगलों का पहला राजा बनाया जिससे राजतंत्र व्यवस्था का सूत्रपात हुआ। राज्य की उत्पत्ति शासक और शासित के रूप को प्रकट करती है, इस संदर्भ में महाप्रज्ञ की प्रस्तुत पंक्तियां सटीक हैं :–

यदि कल्पवृक्ष कार्पण्य नहीं दिखलाते
मानव–मानव यदि बाँट–बाँट कर खाते
तो राजतंत्र बल से आरोपित शासन
न बिछा पाता मानव के सिर पर आसन। ऋ.पृ.–54.

'राज्य विकास' की प्रथम कड़ी में भोजन एवं नगर निर्माण की व्यवस्था हुयी। देवेन्द्र के निर्देश से कुबेर द्वारा निर्मित नगर में युगलों का प्रवेश हुआ। तरू की गोद में विश्राम करने वाले मानव ने चारदीवारी दुनियाँ में स्वयं को सीमित कर लिया। संयोग से जंगल में अग्नि अवतरण के साथ ही भोजन पकाने का मार्ग प्रशस्त हुआ। उक्त स्थितियों को तृतीय सर्ग में उद्घाटित किया गया है।

चौथा सर्ग 'समाज रचना' से संबंधित है। समाज रचना का दायित्व गुरूतर है। अविकसित समाज को विकास के पथ पर अग्रसर करना साधारण काम नहीं है। अतीन्द्रिय ज्ञान से मण्डित ऋषभ ने समाज रचना एवं दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कुंभकार, लोहकार, स्थपित, तन्तुवाय और क्षौर कर्म (नापित) श्रेणी का विकास किया, जिससे क्रमशः आहार, पेयपात्र, खेती के यन्त्र, गृह निर्माण, वस्त्र निर्माण तथा नख–केश कर्तन की समस्या समाप्त हुयी। युगल अकर्म युग से कर्मयुग में प्रवेश कर रहे थे। ऋषभ ने भोजन के लिए 'कृषि', सुरक्षा के लिए 'असि' तथा शिक्षा के लिए 'मसि' विधा का विकास किया। एक

राजा के रूप में ऋषभ का जीवन महान्, जनप्रिय, संयमी एवं कल्याणकारी था।

नारी शिक्षा के रूप में ऋषभ राज्य आज भी प्रासंगिक है। उन्होंने अपनी पुत्रियों को लिपि एवं गणित का ज्ञान देकर जहाँ शिक्षा का प्रचार प्रसार कर शिक्षा जगत में नारी का प्रदेय सुनिश्चित किया, वहीं पुत्रों को शब्द शास्त्र, छंद शास्त्र, मानव मणि, पशु लक्षण का ज्ञान देकर, शिक्षा का विस्तार किया। वर्तमान युग में अर्थ जगत का विकास होने के बावजूद भी नारी शिक्षा के क्षेत्र में पीछे हे, उसके साथ न्याय नहीं हो पा रहा है, जबकि मानवी एवं सृजन के मूल में होने के नाते शिक्षा का अधिकार उसे प्रथमतः होना चाहिए था। निश्चित ही 'नारी शिक्षा' एवं नारी जागरण के संदर्भ में पुरूष प्रधान समाज द्वारा उसके साथ न्याय नहीं हुआ। नारी अशिक्षा की इस पीड़ा को झेलती हुई पुरूष वर्ग के शोषण एवं अत्याचार को सहती रही।

पशु पक्षी शिक्षित हो सकते,
फिर नारी की कौन कथा,
दीर्घकाल अज्ञान तमस की,
झेली उसने मौन व्यथा। ऋ.पृ.–67

शिक्षा दीक्षा के पूर्ण प्रसार से लोगों में अपने पराए का भाव विकसित हुआ, जिससे समाज में अपनेपन की नवीनधारा बह चली :–

मम माता मम पिता सहोदय,
मेरी पत्नी मेरा पुत्र
मेरा घर है मेरा धन है
सघन हुआ ममता का सूत्र ऋ.पृ.–68.

एकाएक कल्पवृक्षों के असहयोग से क्षुधा की समस्या गहराई। ऋषभ ने युगलों को स्वावलम्बन की सीख देते हुए कर्म के लिए प्रेरित किया :–

कर्मभूमि का प्राण कर्म है,
आँकों इन हाथों का मूल्य। ऋ.पृ.–70

ऋषभ के कर्मवाद के उपदेश से युगलों का पौरूष जागृत हुआ। सब

हाथों का मूल्य समझ 'कर्म' के लिए तत्पर हुए। युगलों के कठिन परिश्रम से धरती पर चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिखाई देने लगी। श्रम सार्थक हुआ। भय और भूख की दुश्चिन्ताएँ समाप्त हुई। सबके होठों पर निर्भयता एवं पूर्णता की मुस्कान तैरने लगी। परिणाम सुखद रहा। इस प्रकार युगलों ने अकर्मयुग से कर्मयुग में प्रवेश किया।

इस अमूल्य वाणी ने फूँका, अभय और पौरूष का मंत्र।
हाथ और आजीव मध्य में, आस्थापित जीवन का तंत्र।
उसका फल पहना धरती ने, प्रवर हरित शाटी परिधान।
अतिक्रांत भय आज भूख का, सबके होठों पर मुस्कान। ऋ.पृ.—70

राजा का प्रथम दायित्व है राज्य की सुदृढ़ व्यवस्था करते हुए नागरिकों की समस्याओं का समाधान करना। ऋषभ ने राज्य व्यवस्था के संचालन हेतु उग्र भोज, राजन्य एवं क्षत्रिय श्रेणी का गठन कर लोककल्याणकारी राज्य की नींव रखी। यहाँ कवि ने ऋषभ की सुदृढ़ राज्य व्यवस्था के माध्यम से वर्तमान राज्य व्यवस्था समक्ष यक्ष प्रश्न खड़ा किया है .... साथ ही राजा में क्या गुण होने चाहिए, इसकी विशद व्याख्या की है। यदि राजा, प्रजा को आजीविका के साधन उपलब्ध करने में समर्थ नहीं होता और न ही जनकल्याणकारी योजनाएँ लागू करता है। तो वह राजा, प्रजा के लिए पीड़ादायक और राज्य के लिए भार स्वरूप होता है। वर्तमान संदर्भ में निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रासंगिक हैं :—

जनहित साधन में न निरत है
केवल ढोता पद का भार
वह क्या राजा, वह क्या नेता
उससे पीड़ित है संसार
जनता से अधिकार प्राप्त कर
नहीं कभी करता उपकार ऋ.पृ.—71.

स्वच्छ प्रशासन का सूत्रपात राजा द्वारा तभी किया जा सकता है जब वह स्वयं अनुशासित हो। बिना अनुशासन के प्रशासन शोषक, उच्छृंखल एवं निरंकुश होता है, जिससे जनता उपेक्षित एवं पीड़ित रहती है। ऋषभ का शासन

राज्य पर ही नहीं बल्कि प्रजा के मनोमय धरातल पर भी विकसित था। उस समय अतिक्रमण, छीनाझपटी के अतिरिक्त गंभीर अपराध नहीं होते थे, जिस कारण ऋषभ ने 'वाचिक' दण्ड का नियोजन किया था। कालान्तर में ज्ञान के क्षेत्र मे विकसित मानव ने आर्थिक युग में प्रवेश किया, अपराध बढ़े, जिसके नियमन हेतु उत्पीड़क दण्ड विधान का सृजन हुआ। उस समय अपराध शून्यता का कारण व्यक्ति का आत्मानुशासन अर्थात् मस्तिष्क पर हृदय का नियंत्रण था किंतु आज इस बौद्धिक युग में हृदय का दरवाजा ही बंद है। या यों कहें मस्तिष्क पक्ष सक्रिय है, हृदय पक्ष निष्क्रिय। मस्तिष्क की यह सक्रियता हृदय की संवेदनशीलता को शून्य कर स्वयं मानव–मानव के लिए मानसिक पीड़ा व मानसिक तनाव तथा अन्य असाध्य रोगों का कारण बनी हुई है :–

ह्री से धी अनुशासित होती,
श्री बढ़ती है अपने आप,
केवल बौद्धिक संवर्धन से,
बढ़ता है मानस संताप ऋ.पृ.–74.

वंसतोत्सव से पाँचवे सर्ग का प्रारंभ होता है 'भरतराज्याभिषेक' का दृश्य है। प्रकृति का चरम सौंदर्य आभाकारी है। पुष्प आभरणों से सुसज्जित बालाओं का सौंदर्य परमशांति का संदेश दे रहा है। मधु मंथर गति से अनिल प्रवहमान है। संपूर्ण परिवेश सुवासित एवं मांगलिक है। पूरा समाज सुख की सरिता में निमग्न है। ऐसे मनोमय परिवेश में पुष्प आभरण से सुशोभित ऋषभ ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे 'पुष्पवास' गृह में साक्षात वसन्त मूर्तित हो गया हो।

इस सर्ग में आचार्य महाप्रज्ञ ने कथा का विस्तार सामान्य रूप से करते हुए उसे दर्शन, अध्यात्म की ऊँचाई दी है। कथ्य में व्यवहार और दर्शन साथ–साथ चलते हैं। लौकिक तथा अलौकिक दृश्य समानान्तर किंतु द्रुतगति से विकसित हो, चिंतन का नया आकाश रचते हैं। जगत में एक ओर इन्द्रिय तृप्ति जन्य लोकेषणा है, तो दूसरी ओर आत्मा के उत्थान की संपूर्ण प्रक्रिया। यदि इंद्रिय सुख पौद्गलिक है तो आत्मानन्द अपौद्गलिक। पुद्गल नश्वर है, अपुद्गल अनश्वर है। इस पुद्गल सुख के लिए एक मानव के द्वारा दूसरे मानव का

शोषण घृणित है। वर्तमान युग की सच्चाई को बेनकाब करते हुए कवि कह उठते हैं कि :–

अमरबेल का आरोहण कर,
किया वृक्ष का शोष,
वह कैसा प्राणी जो करता,
पर शोषण निज पोष,
कितना हाय जुगुप्सित कर्म
लज्जित हो जाती है शर्म ऋ.पृ.–80.

महान् आत्माओं का अवतार सोद्देश्य होता है। भरत का राज्याभिषेक बाहुबली को बहली प्रदेश तथा शेष पुत्रों की राजा के रूप में प्रतिष्ठा, ऋषभ के महान्, त्याग तथा वैराग्य वृत्ति को व्यक्त करती है। राज्य का त्याग, त्याग की पराकाष्ठा है। इस चरित्र में आचार्य महाप्रज्ञ समाज को यह संदेश देना चाहते हैं कि एक अवस्था के पश्चात् अपना उत्तराधिकार सामर्थ्यवान पुत्रों को सौंप देना चाहिए, यह सामंजस्य है – पारिवारिक सामंजस्य, राजकीय सामंजस्य। ऋषभ का भरत को राजनीति का सम्बोध उनका सत्य और यथार्थ में जिया हुआ संबोध है। एक राजा अथवा राजप्रमुख को कैसा होना चाहिए, उसमें कौन–कौन से गुण होना चाहिए ? इसकी विशद विवेचना वर्तमान राजकीय व्यवस्था पर एक सशक्त आक्षेप है। ऋषभ का यह संदेश कि राजा को अहंकार मुक्त जनप्रिय एवं न्यायी होना चाहिए, उसे यह भी देखना चाहिए कि कोई सबल निर्बल को उत्पीड़ित न कर सके। राजा को स्वयं अर्थअल्पित एवं जितेन्द्रिय होना चाहिए। आवश्यकतानुरूप विवेक सम्मत निग्रह और अनुग्रह दोनों नीतियों का जनहित में प्रयोग करना चाहिए। भोगी या विलासी राजा इस धरती और जन के लिए भारस्वरूप होता है :–

अजितेन्द्रिय शासक विफल
अंकहीन ज्यो शून्य
संयत शासक प्राप्त कर
होती धरा प्रपुण्य। ऋ.पृ.–88

राजा को यह भी देखना चाहिए कि 'राज्य मंडल' से सम्बन्धित सचिव अथवा मंत्री लोभी न हो, जनता के प्रति उनके हृदय में संवेदना और सहानुभूति हों। यदि शासन द्वारा जनता की समस्याओं का समाधान नहीं होता तो वह शासन राज्य के लिए हानिप्रद है। ऋषभ के राजनीति संबोध और आज की राजनीति की तुलना करें तो वह ठीक इसके विपरीत सिद्ध होगी। ऋषभ का संबोध राजतंत्र में जनतंत्रात्मक शासन प्रणाली के विकास का दिव्य संदेश है।

छठवाँ सर्ग भोग और योग का अद्‌भुत आख्यान है। अतिशय भोग, सुख सुविधा से समाज में संघर्ष और कलह का जन्म होता है। भोग की वृत्ति योग मार्ग से ही संयमित हो सकती है। संयम और त्याग योग की प्रथम कड़ी है। भोग और योग का परिणाम निम्नलिखित उद्धरण में देखा जा सकता है।

इक्षुरसमय अनासेवित, सरसता सप्राण है,
और सेवित विरस बनता मात्र त्वक निष्प्राण है, ऋ.पृ.–97.
चेतना जागृत पुरूष वह देखता परिणाम को,
सुप्तमानव पुरूष केवलदेखता है काम को।

"ऋषभ दीक्षा" में केश लुँचन की प्रक्रिया बाह्य सौंदर्य के त्याग की प्रक्रिया है। बाह्य सौंदर्य जितना ही संकुचित होता जाता है, आन्तरिक प्रदेश में उतना ही निखार आता जाता है। निम्नलिखित पंक्तियों मे गंभीर संदेश है–

धर्म, संयम और मुनि का अर्थ पद अज्ञात है।
शब्द का संसार सारा अर्थ का अनुजात है। ऋ.पृ.–94.

योग एक आंतरिक प्रक्रिया है। 'आत्मा' का दर्शन अथवा उसकी दिव्य अनुभूति, 'चेतना' को उर्ध्वगामी करने से ही हो सकती है। पंतजलि ने भी योग की संपूर्ण व्याख्या की है। चेतना का उर्ध्वगमन 'योग' एवं अधोगमन 'भोग' है। संसार में रहते हुए सांसारिक धारणाओं से मुक्ति योग है। वस्तुतः यह शरीर योग और भोग दोनों का केन्द्र बिन्दु है। इन्द्रियाँ व्यक्ति को भोग की ओर प्रवृत्त करती हैं किन्तु साधक सतत इंद्रिय निग्रह एवं प्राणायाम की क्रिया से सहस्त्रार में स्थित सहस्त्र कमल दलों का स्पर्श कर आत्मानन्द की अनुभूति करने

लगता है। आत्मानन्द की उपलब्धि योग की चरम अवस्था है। आज की इस भौतिकवादी दुनियाँ में भोगवाद से पनपी व्यक्ति की लालसा, लिप्सा का शमन मात्र योग से ही संभव है।

चेतना की विमलता ने कमलदल को छू लिया।
आत्म वर्चस वेदिका पर जल उठा अविचल दिया। ऋ.पृ.–102

सातवें सर्ग में 'अक्षय तृतीया' के महत्व का निष्पादन किया गया है। इसमें ऋषभ की कठोर साधना एवं उनके शिष्यों की साधना से 'विचलन' का वर्णन किया गया है। इन्द्रियातीत मन भूख–प्यास, इंद्रिय सजगता से परे अन्तरात्मा का द्वार खोलता है। मन को साधने अथवा नियंत्रित करने की साधना योग से ही संभव है। योग में भूख–प्यास, नींद के लिए कोई स्थान नहीं, वह तो जागरण की अद्‌भुत प्रक्रिया है। उदरजीवि व्यक्ति के लिए साधना का पंथ अगम होता है, रोटी के प्रति आस्था, छद्‌म साधकों अथवा पाखंडियों का उत्स है, क्योंकि–

व्यथा भूख की वचन अगोचर, कर देती है श्रद्धा का खण्ड
रोटी से अभिभव आस्था का होता, तब चलता पाखंड। ऋ.पृ.–113.

वर्तमान परिवेश में उक्त कथन प्रासंगिक है। कच्छ, महाकच्छ सहित शेष मुनियों का योग मार्ग से विचलन ऐन्द्रिय प्रबलता के कारण ही होता है।

आत्म साक्षात्कार भौतिक जगत के त्याग एवं आंतरिक जगत के परिष्कार से ही सम्भव है। आत्म साक्षात्कार के पश्चात् प्रिय–अप्रिय का भेद तिरोहित हो जाता है :–

चाह नहीं है, राह वहीं है, सत्य कहीं अस्पष्ट नहीं।
शुद्ध चेतना के अनुभव में, प्रिय अप्रिय का कष्ट नहीं। ऋ.पृ.–115.

शरीर बाह्य रूप का प्रदर्शन है, तो आत्मा आन्तरिक रूप का। आत्म सत्ता के प्रकाशन के लिए शरीर सत्ता भी आवश्यक है, शरीर मार्ग है, आत्मा मंजिल। जीवनाधार के लिए शरीर आवश्यक है। शरीर की उपेक्षा अथवा शरीर

को पीड़ा देना ऐकान्तिक साधना है, जो हितकर नहीं। सत्य पारदर्शी होता है। शरीर भी सत्य है, आत्मा भी सत्य है। सत्य दोनों है, भेद उनकी स्थिति में है। श्रेष्ठ साधना वह है जो स्वयं जागृति की दशा में रहते हुए लोक को जागृत करे, इसके लिए शरीर का चलायमान होना आवश्यक है। धर्म चक्र का विकास लोक में तभी होगा। अनेकांतवाद मताग्रह से परे संतुलन एवं व्यवस्था का नाम है :–

केवल कृश करना वपु को है
प्रस्फुट ही ऐकांतिक वाद
पोषण और तपस्या में ही
अनेकांत संभव संवाद। ऋ. पृ. –116.

ऋषभ का 'आहार' के लिए चक्रमण आध्यात्मिक, सांस्कृतिक जागृति का चक्रमण है। यह त्याग से योग और योग से 'लोक' को जागृति देने का संदेश है। साधित विरक्त आत्मा सहज ही लोकासक्त जन की भावना को मोड़ सकती है। 'पारणा' तो एक बहाना है। सही मायने में यह 'पारणा' आत्मसाक्षात्कार के पश्चात् आत्मा का स्वागत है। दूसरी ओर धर्म प्रवर्तन का संकेत भी। आहार चक्रमण के समय नागरिकों द्वारा स्वर्ण, नाना प्रकार के मणि, अश्व, गज तथा स्निग्ध भोजन के समर्पण की ओर उनका कोई ध्यान नहीं। वे मौन व प्रशांत भाव से आगे बढ़ जाते हैं। वे निरवद्य अशन चाहते है। 'निरवद्य अशन' से शुद्ध एवं अहिंसक विचार पनपते हैं। भोजन से 'विचार' प्रभावित होते हैं, या यों कहें भोजन के अनुरूप विचार ढलते हैं इसलिए 'उद्दिष्ट' अशन भी वर्जित है। ये वर्जनाएँ अहिंसा के विकास के लिए आवश्यक हैं :–

जल, सुशीत अपक्व वर्जित, अशन जो उद्दिष्ट है।
पर अहिंसा साधना में दृष्ट पर अस्पृष्ट है।। ऋ.पृ.–119

स्वप्न दर्शन के पश्चात् श्रेयांस द्वारा ऋषभ की 'पारणा' हेतु इक्षुरस का दान महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह 'निरवद्य' है। यह 'पारणा' दिवस भविष्य में अक्षय तृतीया के पर्व के रूप में ख्यात हुआ। 'अक्षय तृतीया के नाम से विश्रुत वह महान् पर्व त्याग–तपोमय जैन संस्कृति का स्वयंभू साक्ष्य बना हुआ है। उस दिन वर्षीतप

करने वाले सैकड़ों हजारों भाई–बहिन अपने तप को सोत्साह संपन्न करते हैं और नव वर्ष के लिए तप अभिक्रम का संकल्प लेते हैं। बैशाख शुक्ला तृतीया का यह दिन भगवान ऋषभ की स्मृति को जीवन्त बनाए हुए हैं।'[9]

आठवें सर्ग में 'केवल ज्ञानोपलब्धि' का अंकन है। ऋषभ का तक्षशिला एवं अयोध्या के रमणीक उद्यानों में 'विहार' का उद्देश्य जनजागरण है। यह शुद्धाचरण के द्वारा धर्म प्रवर्तन की क्रिया है। मानव का उद्यानों, जंगलों से लगाव पर्यावरणिक उत्थान की दशा है। मानव के द्वारा प्रकृति का दिव्य स्वागत उसके प्रगाढ़ संबंधों का स्वागत है। प्राणी और पर्यावरण एक–दूसरे के पूरक हैं, मानव और तरू में स्थिति का भेद है और कोई भेद नहीं। मानव और तरू का संबंध सहज है। आज के परिवेश में जब वनों का क्षरण हो रहा हो तब आचार्य महाप्रज्ञ की निम्नलिखित पंक्तियां विचारणीय हो जाती है :––

मानव करता तरू से प्यार,
तरू उसका जीवन आधार
बोधि–उदय में सुतरू निमित्त
निर्मल लेश्या निर्मल चित्त ऋ.पृ.–141.

भविष्य में महावीर, महात्मा बुद्ध जैसे मनीषी वृक्ष की संगति से ही आत्मज्ञान के स्वामी हुए। वृक्ष आत्मज्ञान के वाहक हैं, उनकी छाया में निर्मल कर्म अथवा निर्मल लेश्या का प्रस्फुटन होता है, जिससे अंतःकरण की शुद्धि होती हैं। साधना के क्षेत्र में इंद्रियों का प्रत्याहार अनिवार्य है। काम, क्रोध, मद, लोभ, माया आदि मनोविकार साधना में बाधक है। इन मनोभावों के संयमित होते ही आत्मलोक का दर्शन होता है तथा आत्मा का पूर्ण प्रकाश फैल जाता है। कवि ने आत्म दर्शन के रहस्य को निम्न रूप से स्पष्ट किया है :–

आवरणों का विलय अशेष
अंतराय का रहा न लेश
सकल स्त्रोत हुआ चित्–स्त्रोत,
कण–कण से निकला प्रद्योत। ऋ.पृ.–144

नौवें सर्ग में 'आत्म–सिद्धांत' का प्रतिपादन किया गया है। इस सर्ग में माँ मरूदेवा के रूप में पुत्र के प्रति ममतामयी माँ का वात्सल्य रूप निखरा है। पुत्र के प्रति माता की चिंता सहज है, सभी भावों से अनूठा भाव मातृत्व भाव ही है :–

माँ बछड़े के पीछे चलती, माता केवल माता है।
नवजीवन के आदि काल में, एक मात्र वह त्राता है। ऋ.पृ.–149.

माता जीवन की निर्मात्री और उसके लोक दर्शन का महत्वपूर्ण कारण है। 'शकटमुख' उद्यान में ऋषभ की आभामंडल को देखकर गजारूढ़ माँ मरूदेवा के मन का लौकिक भ्रम जैसे टूट गया, वे तन्मय हो गयी, तत्क्षण उनकी आत्मचेतना जागृत हो गयी –

संबोधन निज को उद्‌बोधन अपना दर्पण अपना बिम्ब।
माया का दर्शन विस्मय कर, नभ में रवि जल में प्रतिबिम्ब।

यह धर्म प्रवर्तन का ही रूप है। यह योग की भाव दशा है। तन्मयता की इस स्थिति में चिन्मय परम आत्मानंद की दिव्य अनुभूति है, कैवल्य की चरम प्रतीति है। आत्मा के दर्शन से माँ मरूदेवा प्रथम केवली हुई। शरीर जड़वत् कर्मबंध से मुक्त वे प्रथम 'सिद्धा' के रूप में भी स्थापित हुई। धर्म प्रवर्तन का प्रभाव परिलक्षित हुआ। पश्चात् ऋषभ ने तत्वज्ञान का उपदेश दिया —

देह और विदेह तत्व दो, नश्वर देह अनंत विदेह,
देह जनमता, मरता है वह, अमृत अजन्मा सदा विदेह। ऋ.पृ.–157.

इस सर्ग में आत्म सिद्धान्त की विशद विवेचना कवि ने ऋषभ के द्वारा की है, 'आत्मा परमात्मा का उपादान सत्य, शिव और सुंदर है।' यह अतिसूक्ष्म परम चैतन्य है, 'मैं' 'हूँ' की अनुभूति आत्मा की परम सत्ता को व्यक्त करती है। इंद्रियाँ जहाँ अपने स्थूल स्वरूप में दृश्यजगत के विषय विकारों की ओर संकेत करती है, वहीं अमूर्त्त रूप में स्थापित आत्मा अपनी चैतन्य दशा का अवबोध देती है। कर्म, क्रिया और पुनर्जन्म का आत्मा से विशेष सम्बन्ध है।' (पृष्ठ–158–159)

सृष्टि में हिंसात्मक और अहिंसात्मक दोनों प्रवृत्तियां सक्रिय हैं। दोनों में संघर्ष चल रहा है। जहां हिंसा की प्रबलता से प्राणी का रक्त बहता है वहीं अहिंसा की वर्षा से मानव में प्राणिमात्र के प्रति करूणा, प्रेम, आस्था, विश्वास आदि सुकोमल वृत्तियों का विकास होता है। चक्ररत्न की उत्पत्ति जहां हिंसा का वाहक है, वहीं ऋषभ का संयम मार्ग अहिंसा का। शक्ति का प्रदर्शन हिंसा है, तो उसका मार्गान्तरीकरण अहिंसा।

दसवें, ग्यारहवें सर्ग में दिव्य चक्ररत्नों से सुसज्जित भरत का दिग्विजय अभियान चित्रित है। दिव्य अस्त्र–शस्त्र तथा विशाल सेना से सुसज्जित भरत की विश्वविजय की कामना महत्वाकांक्षी नरेश की कामना है, जो अनचाहे युद्ध को आमंत्रण दे अन्य की स्वतंत्रता बाधित कर रक्तपात करती है। गिरिजनों से युद्ध, नमि–विनमि एवं विश्व के अन्य राजाओं से युद्ध भरत के राज्य विस्तार की लिप्सा को प्रदर्शित करती है।

इतिहास साक्षी है। कालान्तर में विश्व स्तर पर जितने भी युद्ध हुए, रक्तपात या हिंसात्मक गतिविधियाँ हुयी हैं, उसके मूल में महत्वाकांक्षा की घोर लिप्सा ही रही है। मानव द्वारा यह हिंसक युद्ध आज भी जारी है। भीषण मारक यंत्रों का घटाटोप विश्व स्तर पर आयुध रत्नों की भाँति आज भी मानव की प्राण संजीवनी को सोख रहा है।

'महत्वाकांक्षा' तत्काल शांत नहीं होती। रिश्ते संबंध उसके समक्ष तुच्छ होते हैं। बारहवें सर्ग में अठानवे भाईयों को अपनी अधीनता कबूल करने के लिए भरत बाध्य करते हैं। उनकी दो शर्तें हैं – 'सेवा' अथवा 'युद्ध'। ऋषभ की प्रेरणा से अठानवें भाई युद्ध से विरत हो, परमपद साधना के लिए प्रेरित होते हैं, जिस कारण भाई–भाई में होने वाला विनाशक युद्ध थम जाता है। ऋषभ कहते हैं :–

संबुज्झह किं नो नो बुज्झह!
आंको तुम इस क्षण का मूल्य
नृप पद दुर्लभ बोधि सुदुर्लभ
क्या मणि मणि सब होते तुल्य ? ऋ.पृ.–197

'नृपपद' 'दुर्लभ' किंतु क्षणिक है। 'आत्मपद' 'सुदुर्लभ' किन्तु शास्वत है। 'आत्मस्थ' लोक में 'अबंधु' का रूपान्तरण 'बंधु' भाव में होता रहता है। जो प्राणि–प्राणि के प्रति समता के उदय का कारण बनता है :––

इस सुराज्य में बन जाता है, जो अबंधु वह सहसा बंधु।
लोकराज्य की महिमा देखो, कैसे बनता बंधु अबंधु ? ऋ.पृ.–200

लोक में 'भोग' है, अलोक में 'त्याग'। भोग में 'शेष' है यानी सांसारिक तृष्णा है अभाव है किंतु त्याग में 'अशेष' है, पूर्णता है। आत्म संतुष्टि है। कवि की यह तात्विक दृष्टि प्रशंसनीय है :–

परम अस्त्र है त्याग अनुत्तर, प्रश्न न कोई रहता शेष
भोग शेष की गंगोत्री है, जग में केवल त्याग अशेष ऋ.पृ.–202.

तेरहवें सर्ग में सुंदरी दीक्षाग्रहण तथा भरत के 'आत्मालोचन' की तात्विक विवेचना की गयी है। इस सर्ग में आत्मा के चैतन्य स्वरूप की मीमांसा तथा भरत के आत्म चिंतन को उभारा गया है।

चौदहवें सर्ग के प्रारंभ में भरत द्वारा किये गये आत्मलोचन का प्रभाव दिखाई देता है किंतु इधर चक्ररत्न की नगर में बाहर स्थिर रहने की स्थिति युद्ध की नयी पीठिका तैयार कर रही है। भरत युद्ध नहीं चाहते किंतु सेनापति सुषेण की कूटनीति उन्हें युद्ध करने के लिए तत्पर करती है। भाई से भाई के युद्ध की धारणा कितनी दाहक होती है, उसे इस सर्ग में देखा जा सकता है। बाहुबली स्वतंत्रता के पक्षधर, पराक्रमी व गौरवशाली परम्परा के वाहक हैं, तो भरत–विनाशक भूमि के सर्जक। दूत प्रेषण में यदि एक में अधीनता स्वीकार न करने के बदले युद्ध की पूर्व पीठिका निर्मित हो गयी।

पंद्रहवे सर्ग का प्रारंभ बाहुबली के दूत सुवेग के प्रवेश एवं भरत के आत्मनिरीक्षण से प्रारंभ होता है। भरत की बालपन की स्मृति उन्हें बाहुबली की शक्ति से आंतकित कर देती है, वे सोचते हैं –

है कौन बाहुबली के बल का विज्ञाता,
भ्रूभंग दशा में कौन बनेगा त्राता ?

अनुभूत सत्य को कैसे मैं झुठलाऊँ ?
कैसे मैं सबको मन की बात बताऊ ? ऋ.पृ.–246.

भरत का अंतर्द्वंद्व और भी सघन होता है, स्वयं को युद्ध का कारण मानते हुए वे इस सत्य को स्वीकार करते हैं –

यदि भरत मनस में रण का बीज न बोता
तो समर भूमि में बहलीश्वर क्यों होता ?
अब फसल काटने की होगी तैयारी
है तीन लोक से रण की मथुरा न्यारी
जब भाई–भाई के शोणित का प्यासा
तब सेना से क्या हो मैत्री की आशा ?
मानव मानव को घायल कर खुश होता
मानवता घायल होती भूधर रोता ऋ.पृ.–250.

यह बलवान के मन में उससे भी अधिक बलवान का भय है, साथ ही एक संदेश भी कि युद्ध में मानवता का ही संहार होता है, जिससे अचल हिमालय भी प्रकंपित हो जाता है।

सोलहवें सर्ग में 'भरत बाहुबली युद्ध' वर्णित है। दोनों भाईयों की सेनाएँ आमने–सामने युद्ध के लिए सन्नद्ध है। एक ओर चक्ररत्नों का सुरक्षाकवच तो दूसरी ओर विद्याधरों की संहारक विद्या। भयानक युद्ध हुआ। दोनों पक्षों के असंख्य सैनिक मारे गए। इस भीषण संग्राम में कभी भरत की सेना विचलित होती तो कभी बाहुबली की। इस समरांगण में, विजयश्री का वरण कौन करेगा? कहना मुश्किल था। ऐसा ही युद्ध कालान्तर में 'महाभारत' के नाम से जाना गया, वह युद्ध भी एक ही वंश के मध्य लड़ा गया था। युद्ध की संस्कृति एवं मान्यता ही अलग है जिसे निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है :––

वध करने वाला अपराधी, माना जाता है सर्वत्र।
युद्ध भूमि में शत–शत घाती, बन जाता वीरों का छत्र। ऋ.पृ.–262

और यह भी –

युद्ध शास्त्र के शब्दकोश में, करूणा पद का निपट अभाव।
उतना यश जितना वैरी के, उर में होता गहरा घाव। ऋ.पृ.–264.

सत्रहवें सर्ग मे अहिंसक युद्ध की घोषणा होती है। यह अहिंसक युद्ध प्राकारान्तर से ऋषभ की प्रेरणा का प्रतिफल हैं। यह अहिंसक युद्ध द्वन्द्व युद्ध ही है। जिसका मापदण्ड है–दृष्टि, मुष्टि, सिंहनाद, बाहु एवं यष्टि युद्ध। इस सर्ग में उक्त युद्ध का विशद् वर्णन है जिसमें भरत की पराजय होती है।

पूर्ण पराजय व्यक्ति की आत्मा को मथ देता है। ग्लानि, मानसिक पीड़ा की स्थिति में वह नीति, अनीति को नहीं देखता। वैसे भी युद्ध नीतियों पर नहीं महत्वाकांक्षाओं पर लड़ा जाता है। पराजित भरत द्वारा युद्ध समाप्ति के पश्चात् बाहुबली पर चक्ररत्न का प्रक्षेपण उनकी 'कुंठा' और 'पराजयबोध' की पीड़ा को व्यक्त करती है। अंततः चक्ररत्न द्वारा बाहुबली की प्रदक्षिणा एवं कुछ समय के लिए उनके दक्षिण कर में उसकी स्थिति विजयी के प्रति पूर्ण समर्पण है। शक्ति के द्वारा शक्ति का यह नूतन अभिनंदन है। पुनः भरत के कर में चक्र की प्रतिष्ठा उसकी मर्यादा का उत्स है। बदले में बाहुबली का भरत के प्रति घातक मुष्टि प्रहार के लिए दौड़ना क्रिया की प्रतिक्रिया है, जो देवों के हस्तक्षेप से रोकी जा सकी। देवों के तात्विक कथन से बाहुबली का मन उपशांत हो गया :–

'अमृत तत्व में पले पुसे हो
फिर कैसे मारक आवेश ?
X X X
मुक्ता का आंकाक्षी होगा
मानस सरवर का वर हंस।' ऋ.पृ.–288.

बाहुबली में चिंतन की दिशा बदल गयी, वे समरभूमि त्याग आत्ममंथन हेतु जंगल की राह लिए। 'स्थाणुवत' उन्होंने घोर तपस्या की। अहंकार की समाप्ति के पश्चात् ऋषभ की कृपा से उन्हें आत्मतत्व का ज्ञान हुआ।

इधर बंधु विहीन राज्य भरत को भी उत्पीड़ित करने लगा। ऋषभ के संबोध से उन्होंने भी आत्मा का साक्षात्कार किया :–

आत्मा का साक्षात् हुआ है, उदित हुआ है केवल ज्ञान,
सहज साधना सिद्ध हुयी, अनासक्ति का यह अवदान। ऋ.पृ.–301

आसक्ति बंधन है और अनासक्ति मुक्ति –
छूट गया साम्राज्य सकल अब, नहीं रहा जन का सम्राट।
टूट गये सीमा के बंधन, प्रगट हुआ है रूप विराट। ऋ.पृ.–301.

सांसारिक दुश्चिंताओं, बंधनों की मुक्ति के पश्चात् ही आत्मा के विराट रूप का दर्शन संभव है। अंततः ऋषभ के निर्वाण के साथ ही अट्ठारहवें अंतिम सर्ग का समापन होता है।

निष्कर्षतः महाकाव्य का वस्तुपक्ष लोक दर्शन एवं अध्यात्म की पूर्ण चेतना से मंडित है। कवि पग–पग पर लोकव्यवहार के साथ दर्शन पक्ष को उद्घाटित कर लोक की नित्यता एवं आत्मा की पूर्णता को व्यक्त करते हैं। युद्ध के बाद विरक्ति, बाह्य जगत से अंतर्जगत् में प्रवेश करने को प्रक्रिया है। संकटापन्न स्थितियों से उबारते हुए ऋषभ द्वारा पूरे परिवार का आत्मसाधना के केन्द्र में उपस्थित कर परमशांति की उपस्थापना कवि की विचार सरणि का उद्देश्य है।

➢ नेता और रस

महाकाव्य में नेता अथवा नायक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, वह केंद्रीय पात्र होता है। यही कथानक को विभिन्न स्थितियों के माध्यम से अंतिम फल या कार्य की ओर ले जाता है। अंतिम फल की उपलब्धि भी इसी से होती है। प्राचीन आचार्यों ने इसके स्वरूप और कार्य की प्रकल्पना भी अत्यन्त उदात्त रूप से की है। आदर्श प्रधानता के कारण नायक के जिन आदर्श गुणों की कल्पना की गयी है, वे इस प्रकार हैं – नायक नम्र, सुंदर, त्यागी, कुशल, प्रियभाषी, भाषण–पटु, शुद्ध स्वभाव, लोकप्रिय, स्थिर चित्त, कुलीन, युवा, साहसी, बुद्धिमान, कलाकार, शूरवीर, तेजस्वी, धीर स्वभाव, तीव्र स्मृति, धार्मिक, शास्त्रज्ञ और सुरूचि सम्पन्न होना चाहिए।

पाश्चात्य नाट्य शास्त्र में नायक के लिए ऐसा कोई बंधन नहीं है, वह कोई भी व्यक्ति हो सकता है। उसके चरित्र में धीरे–धीरे स्वतः ही मानवीय गुणों का विकास होता है। वह भारतीय नायकों की भाँति अपराजेय नहीं होता।

नाट्य शास्त्र के प्रणेता आचार्य भरत ने नायक के चार भेद माने हैं – धीर ललित, धीर प्रशस्त, धीरोदात्त तथा धीरोद्धता। धीरोद्धत नायक संस्कृत नाटकों में प्रायः सर्वश्रेष्ठ माना गया है। महानता, गंभीरता, स्वभाव की स्थिरता, ऊर्जस्विता, क्षमावत्ता, महाप्राणत्व और आत्मप्रशंसा से विरति आदि इसके प्रमुख गुण है। विनम्रता और निश्चय की दृढ़ता इसके स्वभाव की अनिवार्यता है। आचार्य धनंजय ने 'दशरूपक' में धीरोदात्त नायक के विशिष्ट गुणों के रूप में निम्नलिखित श्लोक लिखा है :––

महासत्वो अति गंभीर, क्षमावान विकत्थनः।
स्थिरो निगूढ़ा हँकारो धीरोदात्तो दृढ़ व्रतः।।

'ऋषभायण' महाकाव्य के महानायक ऋषभदेव हैं। कथा का संपूर्ण विकास विविध घटनाओं, दृश्यों के माध्यम से उनमें ही अन्तर्भूत होता है। यौगोलिक समाज के विकास के वे आधार स्तम्भ तथा निस्पृह भाव से राज्य व्यवस्था के कुशल शिल्पी एवं मार्गदर्शक हैं। महाकाव्य में उनका व्यक्तित्व निरहंकारी, त्यागी, संयमी, आत्मलोक के सजग प्रहरी तथा भरत बाहुबली, माँ मरूदेवा, ब्राह्मी, सुंदरी तथा अट्ठानवे पुत्रों को आत्मा के चिन्मय स्वरूप का साक्षात्कार कराने वाले योगी हैं। उनके अलौकिक व्यक्तित्व की संपूर्ण छाप ऋषभायण महाकाव्य में आसानी से देखी जा सकती है।

ऋषभायण में ऋषभ के चरित्र में नायक की तुलना में महानायकत्व की आभा झलकती है। इनका तटस्थ जीवन दर्शन एक मार्ग प्रदर्शक के रूप में अभिव्यक्त हुआ हैं। संपूर्ण कथा इनके इर्द–गिर्द ही घूमती है। राग, द्वेष, पूर्वाग्रह जैसा कोई भी भाव इनमें दिखाई नहीं देता। हर कोण से इनका समुचित जीवन संयमपथ का उदाहरण है – पुत्रों के युद्ध से इनमें कहीं भी रंचमात्र विचलन की स्थिति नहीं बनती, बल्कि पुत्रों की दिग्भ्रमित, उद्भ्रान्त मन को शांत कर उनके सच्चे जीवन पथ का प्रदर्शन करते हैं।

ऋषभायण में ऋषभ के जीवन दर्शन को मूलतः दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है, जिसमें पहला है कर्मयोगी का रूप और दूसरा है योगी का रूप। दोनों रूप विकास की ही दशा को बताते हैं। प्रथम रूप समाज एवं राज्य उत्थान से संबंधित है तो दूसरा रूप आत्म उत्थान से। प्रथम रूप में लोक दर्शन है तो दूसरे रूप में आत्मदर्शन। यहाँ इस आधार पर हम कह सकते हैं कि कर्मयोग योग में प्रवेश करने का मार्ग है। जीवन में संभूत क्षणों को जीने तथा अपने संपूर्ण दायित्वों के निर्वाह के बाद जब सहज वैराग्य का जन्म होता है, तभी वह आत्मसाक्षात्कार और आत्मानन्द का कारण बनता है। ऋषभ का वैराग्य सहज था, जिस कारण ही वे लोगों को मुक्तिमार्ग दिखलाने में सफल हुए हैं।

महाकाव्यों में अनेक रसों की योजना होती है किन्तु मूल रस के रूप में श्रृंगार, वीर अथवा शांत रस में से किसी एक रस की प्रधानता होती है। अन्य रस मूल रस के सहयोगी होते हैं। कवि जब किसी एक रस को स्थायी बना उसमें अन्य रसों को समाहित करता है तो वे रस मुख्य रस को दबा नहीं पाते–

रसान्तर समावेशः प्रस्तुतस्य रसस्य यः।
नोपहन्त्यड.नतां सोऽस्य स्थायित्वे नाव भासिनः।[10]

मूल रस की महाकाव्य में चरम व्याप्ति रहती है। अन्य रसों से अवान्तर कथा का विकास होता है। ऋषभायण में मुख्य रस के रूप में शान्त रस की प्रतिष्ठा हुई है। वीर एवम् अन्य रस शांत रस को पुष्ट करते हैं। प्रधान रस का नायक के साथ प्रत्यक्षतः सम्बन्ध रहता है, प्रबंध काव्य की कथावस्तु में मूलतः नायक के कार्य व्यापार और उपलब्धियों का ही वर्णन रहता है।[11]

आचार्यो ने महाकाव्य में रस निर्धारण के संबंध में विरोधी रसों की ओर भी संकेत किया है। वीर, श्रृंगार, रौद्र, हास्य, भयानक रस, शांत रस के विरोधी हैं। एक ही नायक में इनकी योजना दोषपूर्ण मानी जाती है। ऋषभायण में नायक ऋषभ का संपूर्ण चरित्र शांत रस से मंडित है, विरोधी रसों का परिपाक उनमें नहीं हुआ है। युद्ध के क्षणों में भरत बाहुबली तथा अन्य पात्र उत्साह स्थायी भाव से मंडित है। माँ मरूदेवा का ऋषभ के प्रति चिंता वात्सल्य रस से परिपूर्ण है। इस प्रकार

ये सभी रस मूल रस को सहयोग प्रदान करते हैं। फलागम की स्थिति में वीर परक भावों का मार्गान्तरीकरण शांत रस के रूप में हो जाता है।

➢ पात्र चित्रण

महाकाव्य में पात्रों की भूमिका अहम् होती है। पात्रों का सृजन मूलकथा को ध्यान में रख कर ही किया जाता है। पात्र जितने ही जीवन्त होगें पाठक पर उसका उतना ही प्रभाव पड़ेगा। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'जीवन्त पात्र केवल श्वास–प्रश्वास ही नहीं लेते, सिर्फ हमारी भाँति नाना प्रकार की संवेदनाओं का ही अनुभव नहीं करते बल्कि वे आगे बढ़ते हैं, पीछे हटते हैं। अपनी उदात्तवाणी और स्फूर्ति प्रद क्रियाओं से हमारे अंदर ऊपर उठने का उत्साह भरते हैं, हमें साथ ले चलते हैं, उमंगते हैं और सन्मार्ग पर ले चलने में जो विघ्न बाधाएँ आती हैं, उन्हें जीतने का प्रयास करते हैं।'[12]

आचार्य महाप्रज्ञ ने पात्रों के माध्यम से मानव मन के सुख–दुख, उत्थान–पतन, राग–विराग, संकल्प–विकल्प आदि स्थितियों की तर्कमय विवेचना करते हुए मानव जगत को उत्थान का एक दिव्य संदेश दिया है। पात्रों का चित्रण निम्नानुसार किया जा सकता है :–

(1) ऋषभ :–

ऋषभ आदि तीर्थंकर तथा कर्मयुग के सिंह द्वार को खोलने वाले पहले पुरूष हैं। वे महाकाव्य के महानायक हैं। इनका व्यक्तित्व विराट एवं विशाल है। अतीन्द्रिय ज्ञान से मण्डित इनका स्वभाव सहिष्णु, प्रजावत्सल, कारूणिक एवं विरागी है। ये युगपुरूष, तटस्थ तथा आत्मप्रदेश के अन्वेषक हैं। संपूर्ण महाकाव्य में इनके व्यकितत्व की चरम व्याप्ति है। परिवार, नगर, समाज, राज्य के नवोत्थान एवं नवनिर्माण में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। 'नेता और रस' शीर्षक के अंतर्गत ऋषभ के चरित्र को रेखांकित किया जा चुका है जिसके कारण विस्तार का संवरण करना ही उचित होगा।

(2) भरत :–

भरत ऋषभ के ज्येष्ठ पुत्र हैं तथा महाकाव्य में सहनायक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। ये कोमल गात्र के स्वामी तथा अयोध्या के राजा है। शौर्य, साहस तथा दिव्य आयुध रत्नों से मण्डित चक्रवर्ती नरेश बनने की इनकी मनोकामना ही विश्वयुद्ध का कारण है। युद्ध और अशांति एक–दूसरे के पूरक हैं। विश्व के नरेशों को पराजित करने के पश्चात् भाईयों से भरत का युद्ध जहाँ उनकी भर्त्सना का कारण है, वहीं युद्ध से विरत होने का भाव भी है ––

ऋषभ–पुत्रों में कलह हो, मान्य मुझको है नहीं।
चक्र रूठे, रूठ जाए, बन्धु तो वह है नहीं। पृ.–224.

भरत राजनीति, कूटनीति, व्यवहार नीति में निष्णात है। उनकी ख्याति एक प्रजापालक नरेश के रूप में है किंतु युद्ध के क्षणों में उनके द्वारा हिंसा का प्रसार, रक्तपात, विश्व विजय के उन्माद में उनके आक्रामक स्वरूप को व्यक्त करता है। भरत के चरित्र का सबसे दुर्बल पक्ष वहाँ देखने को मिलता है जब बाहुबली से युद्ध में पराजित होने के पश्चात् उन पर वे चक्ररत्न से प्रहार करते हैं। अन्ततोगत्वा पिता ऋषभ के प्रभाव से वे संयम मार्ग ग्रहण कर राजपाट से विरत हो साधना के मार्ग पर अग्रसर होते हैं इस प्रकार महाकाव्य में ऋषभ के पश्चात् भरत का व्यक्तित्व उभरा है, इनमें पूर्णरूपेण नायकत्व के दर्शन होते हैं।

(3) बाहुबली :–

बाहुबली ऋषभ के द्वितीय पुत्र एवं 'बहली' देश के नरेश के रूप में प्रतिष्ठित हैं। ये शूरवीर, कर्मवीर, प्रजापालक, राष्ट्रप्रेमी, स्वाभिमानी तथा विराट व्यक्तित्व के स्वामी हैं। दूरदर्शिता इनमें सहज रूप में परिलक्षित होती है। भरत से युद्ध में उनका शौर्य उस समय देखते ही बनता है जब उनके लोहदण्ड के प्रहार से भरत आकंठ जमीन में धँस जाते हैं :––

मग्न भूमि में भरत कंठ तक
संभ्रम विभ्रम की आवाज
लुप्त हो रहा है भरतेश्वर
बहलीश्वर पहनेगा ताज ऋ.पृ.–283.

खानदान के प्रति ममत्व, अनुराग का भाव उनमें आसानी से देखा जा सकता है युद्धभूमि में भतीजे सूर्ययशा की सुरक्षा को ध्यान में रख कर वे कहते हैं :–

उभर रहा है प्रेम नयन में,
कर में है प्रियता का रक्त
शस्त्र बना है कोमल धागा
हो जाओ सहसा अव्यक्त। ऋ.पृ.–266

भरत से भी बाहुबली युद्ध नहीं करना चाहते हैं, पिता की 'दोहाई' देते हुए वे कहते हैं कि :–

अग्रज! सोचो व्यर्थ हो रहा, कितना कितना नर संहार।
इसीलिए क्या लिया ऋषभ ने, सत्य अहिंसा का अवतार। ऋ.पृ.–269.

स्वाभिमान, स्वतंत्रता के प्रतिकूल वे रंचमात्र भी समझौता करने के लिए तत्पर नहीं है इसीलिए 'बहली' देश का प्रत्येक नागरिक 'परतंत्र' शब्द से ही चिढ़ता है :–

स्वाधीन चेतना का पलड़ा है भारी,
परतंत्र शब्द से चिढ़ता हर नर–नारी
जैसा शासक जनता भी वैसी होती
दीपक से दीपक की प्रगटी है ज्योति। ऋ.पृ.–245.

बाहुबली राजनीति और कूटनीति में पण्डित है। एक प्रशासक के रूप में उनमें समत्व भाव है। लिप्सा, लोभ के भाव से वे मुक्त भी हैं। युद्ध में भरत को पराजित करने के पश्चात् चक्रवर्ती बनने की कोई भी लालसा उनमें शेष नहीं, बल्कि वे मानसिक रूप से परिवर्तित हो ऋषभ के प्रभाव से आत्मदर्शन करते है। महाकाव्य में बाहुबली का प्रभावशाली व्यक्तित्व सहनायक के रूप में उभरा है। पाठक के मन पर भरत की तुलना में बाहुबली का प्रभाव अधिक पड़ता है। बाहुबली प्रसंग से ही कथा को एक अद्‌भुत गति भी मिलती है।

(4) माँ मरूदेवा :–

माँ मरूदेवा ऋषभ की ममतामयी माँ है। पुत्र के प्रति एक सहज वात्सल्य या समर्पण भाव जो एक माँ में होता है वह समर्पण इनमें देखा जा सकता है। राज्यत्याग के पश्चात् संयम पथ का राही बनने के पश्चात् ऋषभ के प्रति माँ की ममता देखने योग्य है :–

पदत्राण नहीं चरणों में, पथ में होंगे प्रस्तर खंड
तपती धरती, तपती बालू, होगा रवि का ताप प्रचंड। ऋ.पृ.–148.

पुत्र को वे उलाहना भी देती है :–

माता की आंखो में आँसू, पुत्र निठुर हो जाते हैं।
विस्मृत माँ का पोष हंस शिशु, पंख उगे उड़ जाते हैं। ऋ.पृ.–149.

'स्वप्न' दर्शन के प्रति उनकी निष्ठा एक सहज मानवी की निष्ठा है। वे पतिपरायण एवं करूणा की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। पुत्र के देदीप्यमान आभामंडल से प्रभावित हो वे वीतरागता की स्थिति में पहुँच जाती है और 'प्रथम सिद्धा' के रूप में प्रतिष्ठित हो कैवल्य की प्राप्ति करती हैं। महाकाव्य में इनका वर्णन न्यून है किन्तु प्रभाव की दृष्टि से महत् संदेशों से परिपूर्ण है।

(5) नाभि :–

नाभि ऋषभ के पिता हैं। महाकाव्य में इनकी प्रतिष्ठा कुलकर व्यवस्था के अंतिम कुलकर के रूप में की गई है। वे एक आदर्श पिता, आदर्श पति तथा आदर्श कुलकर के रूप में स्थापित हैं। करूणा की भावना से उनका संपूर्ण व्यक्तित्व ओतप्रोत है। अनाथ सुनंदा का पाणिग्रहण संस्कार अपने पुत्र ऋषभ से कराकर वे समाज में आदर्श परंपरा की नींव तो रखते ही हैं, साथ ही अपने सजह एवं विनम्र स्वभाव का परिचय भी देते हैं। भविष्यदर्शी, आशावादी, स्थिर तथा चैतन्य मति उनके व्यक्तित्व की विशेषता है। महाकाव्य के ऐसे केन्द्र में इनकी योजना हुयी है, जहाँ से एक व्यवस्था का अंत एवं दूसरी व्यवस्था राज्य व्यवस्था का जन्म होता है।

(6) नमि–विनमि :–

नमि और विनमि ऋषभ के पालित पुत्र हैं। जिस समय ऋषभ अपने पुत्रों को राज्य व्यवस्था का दायित्व सौंप रहे थे उस समय ये दोनों यात्रा पर थे। दोनों में सहजता और सरलता है। सहजता, सरलता और स्वाभिमान के भाव से ये मण्डित हैं। ऋषभ के प्रति उनमें आस्था एवं परिपूर्ण विश्वास है। राज्य की कामना है, किन्तु वे राज्य भरत से नहीं ऋषभ से प्राप्त करना चाहते हैं। उलाहना के स्वर में साधनारत ऋषभ से वे कहते हैं :–

दो संविभाग ओ! कैसे हमें विसारा ?
कैसे बदला यह आकाशी ध्रुवतारा ? ऋ.पृ.–122.

गौरी और प्रज्ञप्ति विद्या से मंडित नमि और विनमि विद्याधर भी है। धरण द्वारा प्रदत्त विद्याओं के बल पर हिमालय पर ये अपना साम्राज्य स्थापित करते हैं। स्वतंत्रता के ये पक्षधर हैं जैसा कि भरत द्वारा भेजे गये युद्ध के प्रस्ताव पर नमि–विनमि कहते हैं –

'अपनी स्वतंत्रता लगती सबको प्यारी
क्या दावानल में खिलती केशर क्यारी ?'

भरत के प्रति उनके हृदय में सम्मान भाव है, किंतु स्वाभिमान के खिलाफ वे समझौता नहीं करना चाहते और युद्ध में प्रवृत्त होते हैं। युद्ध में नमि और विनमि की पराजय भले ही होती है, किंतु विद्या मण्डित उनका शौर्य प्रदर्शन अद्‌भुत है। अपने राज्य को नमि और विनमि ने अथक परिश्रम से विकसित राज्य के रूप में निर्मित किया है। कथा में इनकी योजना एक महत्वपूर्ण पात्र के रूप में हुई है जो 'आहव संस्कृति' से प्रभावित तो होते हैं, किंतु अपनी राजनीति व कूटनीति से भरत से संधि कर राज्य का संचालन करते हैं।

(7) ब्राह्मी एवं सुंदरी :–

ब्राह्मी एवं सुंदरी ऋषभ की पुत्रियाँ हैं, जो सर्वगुण सम्पन्न है। सादगी, त्याग से मण्डित इनका जीवन दैदीप्यमान है। दोनों क्रमशः 'लिपिन्यास' एवं 'गणित शास्त्र' की विदुषी हैं। राज्य में विद्या के प्रचार–प्रसार एवं जनजागृति में इनकी

महत्वपूर्ण भूमिका है। पितृभक्ति की भावना से ये पूर्ण रूपेण मण्डित हैं। जप, तप का सौंदर्य ही इनके जीवन का सौंदर्य है। अन्ततोगत्वा ऋषभ से दोनों दीक्षा लेकर अध्यात्म मार्ग पर कदम बढ़ाती हुयी आत्मसाक्षात्कार करने में सफल होती है।

(8) अट्ठानबे पुत्र :–

ऋषभ के अट्ठानबे पुत्रों की कथानक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका हैं। पिता का पूर्णरूपेण प्रभाव इन पर दिखाई देता है। भरत द्वारा अयाचित युद्ध का संकट उपस्थित हो जाने पर वे पिता के संबोध से युद्ध से विरत हो आत्मज्ञान की साधना में लीन हो जाते हैं।

इस प्रकार उक्त पात्रों के अतिरिक्त कच्छ, महाकच्छ, कुबरे, मुनिगण, धरण, श्रेयांस, उद्यानपाल यायक, आयुधशाला, रक्षक–शमक, पनिहारिन, मेघमुख, नियोगी, सूर्ययशा, इन्द्र, सेनापति–सुषेण, मंत्री, दूत, प्रहरी आदि पात्रों की योजना महाकाव्य में हुयी है, जो अपनी प्रस्तुति से कथानक को शीर्ष तक पहुँचाने में अपना महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान करते हैं। इस महाकाव्य में मेघमुख, कुबेर, इन्द्र, लोकन्तिक देव आदि दैवी पात्रों की योजना इस बात को बताती है कि आत्म साधना में लीन ऋषभ की सेवा में ये दैवी मात्र रत हैं, जिस कारण जैन धारणाओं की भी पुष्टि होती है।

➢ संवाद

संवाद नाटक का प्रमुख तत्व है। संवादों के द्वारा जहाँ एक ओर कथानक को गति मिलती हैं। वहीं दूसरी ओर पात्रों के चारित्रिक गुण–दोषों, आचार–व्यवहार, मनोभावों, सामाजिक स्थिति एवं वातावरण की जानकारी भी मिलती है। 'नाटक' महत् उद्देश्य को ध्यान में रख कर सृजित होता है। महाकाव्य का लक्ष्य भी विराट एवं महान होता है। दोनों जीवन की संपूर्णता को व्यक्त करते हैं। नाटक में संवाद के निम्नलिखित चार कार्य होते हैं :–

(1) कथावस्तु को अग्रसर करना।

(2) चरित्र–चित्रण में सहायक होना।

(3) वातावरण की सृष्टि करना।

(4) लेखक के उद्‌देश्य की अभिव्यक्ति करना।[13]

ऋषभायण महाकाव्य में संवादों की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसमें प्रयुक्त संवाद कथासूत्र को गतिमयता ही प्रदान नहीं करते, तथ्यों एवं समस्याओं को उजागर कर उसका निदान भी करते हैं। संवादों के द्वारा कवि की वैचारिक अवधारणा पाठक पर अपनी अमिट छाप छोड़ती हुई भविष्य का अद्‌भुत संकेत देती है। ऋषभ जन्म के पूर्व स्वप्न वृत्त के परिप्रेक्ष्य में माँ मरूदेवा और नाभि का वार्तालाप, कुतूहल एवं जिज्ञासा से परिपूर्ण है। स्वपन दर्शन के पश्चात् हर्षित पत्नी को उपस्थित देखकर नाभि पूछते हैं :–

बोलो क्यों आई हो इस क्षण,
हर्ष तरंगित कण–कण में
कल्पवृक्ष क्या उग आया है,
जीवन के नव प्रांगण में! ऋ.पृ.–33.

माँ मरूदेवा मानस पटल पर अंकित स्वप्न बिम्ब को प्रस्तुत करना चाहती है, किन्तु उस दिव्य स्वप्न बिम्ब को वे वाणी के द्वारा व्यक्त करने में असमर्थ हैं – माँ मरूदेवा कहती है :–

अनुभव को उपलब्ध न वाणी, वाणी अनुभव शून्य सदा,
कैसे व्यक्त करूं अनुभव को, यह क्षण आता यदा–कदा। ऋ.पृ.–34

अनुभूति को शब्दों के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि अनुभव का संबंध आन्तरिक प्रदेश से है, मर्म से है। वाणी से बाह्य प्रदेश का व्याख्यान होता है। इसलिए जिस दृश्य या भाव की अनुभूति होती है, उसे हूबहू उसी रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। जहाँ नाभि और मरूदेवा के संवाद क्रमशः उनकी जिज्ञासा और हर्ष को व्यक्त करते हैं, वहीं दाम्पत्य जीवन की प्रियता का संदेश भी देते हैं। मृत्यु शाश्वत है, सनातन है प्रियजनों के महावियोग की पीड़ा हृदय के संपूर्ण बांधों को तोड़ महाशोक की अजस्त्र धारा प्रवाहित कर देती है। नर युगल की मृत्यु के पश्चात् सुनन्दा पिता से कहती है : –

मुरझाया सुम नहीं खिलेगा, तात् मृत्यु का अर्थ यही,
या उन्मेष–निमेष–चक्र है? क्या यह धारा सदा बही। ऋ.पृ.–41.
एक पुष्प खिलनेको आतुर, बिना खिले ही चला गया,
पिता! कहां अब मेरा भाई? मुझे छोड़ क्यों चला गया? ऋ.पृ.–41.

मेरा भाई कहाँ है ? वह मुझे छोड़ क्यों चला गया? यह प्रश्न संबंधों की प्रियता का प्रश्न है। यद्यपि सुनन्दा मृत्यु का आशय समझती है कि 'जो फूल मुरझा गया वह दुबारा नहीं खिलेगा' फिर भी वह 'तात् मृत्यु का अर्थ यही' कथन पर बल दे मृत्यु के रहस्य से पूर्णतः अवगत हो जाना चाहती है। यहाँ कवि की दार्शनिकता व्यक्त हुई है। पिता द्वारा जन्म–मृत्यु के रहस्य का उद्‌घाटन अभूतपूर्व है :–

लहर सिन्धु में उठती–मिटती, फिर उठती फिर मिट जाती।
जन्म मृत्यु की यही कहानी, जलती–बुझती है बाती। ऋ.पृ.–42.

संवादों में जहाँ जहाँ भी वैचारिक तथ्य का उद्‌घाटन हुआ है वहाँ–वहाँ पात्रों के वार्तालाप के बीच कवि की सहज उपस्थिति देखी जा सकती है। दुःख और सुख सिक्के के दो पहलू हैं। दुखात्मक अनुभूति से सुख का मार्ग प्रशस्त होता है। लहरों की उत्पत्ति जन्म और लहरों का विनाश मृत्यु है। यह प्रकृति की नैमित्तिक क्रिया है। जन्म सुखात्मक है और मृत्यु दुखात्मक। जीवन में दोनों का क्रम अनिवार्य है–यही परिवर्तन है और यही जीवन की क्षणभंगुरता।

अशरण को शरण देना भारतीय संस्कृति की विशेषता है, किंतु एक नारी द्वारा अन्य नारी को अपने पति से विवाह की अनुमति देना अनूठा है। अनाथ सुनन्दा की दुर्वह अवस्था को देखकर युगलगण उसे ऋषभ की पत्नी के रूप में नाभि से स्वीकृति चाहते हैं। यहाँ युगलगण, नाभि और सुमंगला के वार्तालाप में सामाजिकता दायित्व निर्वाह एवं कल्याण की भावना दिखाई देती है

युगलगण– अनुनय–विनय हमारा प्रभुवर! बाला आज शरण्य बने,
पारसमणि का स्पर्श प्राप्त कर, मिट्‌टी पुण्य हिरण्य बने।
बने ऋषभ की प्रवरा पत्नी, एक नया आयाम खुले। ऋ.पृ.–44.

नाभि – है सुन्दर प्रस्ताव तुम्हारा, सचमुच मन को भाता है।

x x x x

बोलो, जटिल समय में कैसे, इस उलझन को प्रश्रय दें। ऋ.पृ.–45.

x x x x

स्वस्ति–स्वस्ति, पर एक समस्या, युगल हमारा जीवन है।
सहजन्मा है सुमंगला यह, देखें, इसका क्या मन है ? ऋ.पृ.–46.

सुमंगला– पिता! परम संतोष मुझे यदि, इस बाला का मंगल हो।
उसको पार लगाना होगा, जिसके सम्मुख जंगल हो। ऋ.पृ.–46.

मानवता की दृष्टि से उक्त संवाद उन्नयनकारी है। नारी की प्रकृति नारी के प्रति ईष्यालु होती है किन्तु यहाँ तो जीवन के विकट मार्ग को सरल बनाने हेतु करूणा, सहानुभूति का मार्दव भाव सुमंगला में दिखाई देती है। संपूर्ण आगत् जगत के लिए सुमंगला के त्याग का यह अनुपम संदेश है।

भोग और त्याग, 'लोक' और 'अध्यात्म' जीवन के भाग हैं। भोग, लोक की ओर और त्याग अध्यात्म की ओर प्रवृत्त करता है। ऋषभ और जनप्रतिनिधि का संवाद भोग और त्याग के पक्ष को रूपायित करता हुआ त्याग में ही विश्राम पाता है जिसे निम्नलिखित संवाद में देखा जा सकता है :—

ऋषभ :– चाहते तुम राज्य की, अनुशास्ति मैं करता रहूँ। ऋ.पृ.–94.

जनप्रतिनिधि :– है जहां प्रभु छत्रछाया, कुशल–मंगल है वहीं। ऋ.पृ.–95.

ऋषभ :– भोग बढ़ता जा रहा है, और सुविधावाद भी।
जानता कोई नहीं जन, त्याग का अनुवाद भी।
नियति है यह भोग की, उसका जहाँ उत्कर्ष है।
प्रकृति की लीला वहां पर, जनमता संघर्ष है। ऋ.पृ.–95.

जनप्रतिनिधि :–भोग मानव की प्रकृति है, फिर वहाँ संघर्ष क्यों ? ऋ.पृ.–95.

ऋषभ :– प्रकृति में 'अति' विकृति लाती, यह चिरन्तन सत्य है।
रोध 'अति' का त्याग से ही, यह सुनिश्चित तथ्य है।। ऋ.पृ.–96

जनप्रतिः— सरसता है भोग में, क्यों रोग मानें आर्यवर!
त्याग नीरस है निषेधक, हंत! कैसे हो प्रवर ? ऋ.पृ.—96.

ऋषभ :— इक्षु रसमय अनासेवित, सरसता सप्राण है।
और सेवित विरस बनता, मात्र त्वक् निष्प्राण है। ऋ.पृ.—97
भोग की सम्मोहिनी से, चक्षु की द्युति रूद्ध है।
आवरण को दूर करने, चेतना प्रतिबुद्ध है। ऋ.पृ.—96.

ऋषभ और जनप्रतिनिधि के संवाद से इस विचार को पुष्टि मिलती है कि भोग की वितृष्णा से योग का जन्म होता है। पातंजलि के अनुसार — 'चित्तवृत्ति निरोधः योगः' — अर्थात् चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं। रोध 'अति' का त्याग से कथन का आशय भी प्राकारान्तर से यही है कि जब तक विषय, वासना, ईच्छा की अति का संयम से, त्याग से अवरोध नहीं होगा, तब तक योग का जन्म संभव नहीं।

मनुष्य की मति और गति पर नियति का नियंत्रण है या युक्ति का, कोई नहीं जानता। जो शब्द श्रेय का संदेश देते हैं, वे ही प्रेय में प्रीति जगा देते हैं। भरत और मंत्री के मध्य इस छोटे से संवाद ने ममत्व को अहं से आवृत्त कर दो भाइयों को युद्ध भूमि में लाकर खड़ा कर दिया।[14] यहाँ मंत्री और भरत का संवाद दृष्टव्य है :—

मंत्री :— सत्य कहना चाहता पर, प्रेम में विश्वास है।
बन्धुता में विघ्न बनना, कुटिलता का पाश है।

भरत :— बाहुबलि है अजित मंत्री! क्यों यही तात्पर्य है।
बंधुवर से युद्ध करना, क्या नहीं आश्चर्य है?
ऋषभपुत्रों में कलह हो, मान्य मुझको है नहीं।
चक्र रूठे, रूठ जाए, बन्धु तो वह है नहीं। ऋ.पृ.—224.

यदि मंत्री राजनीति, कूटनीति में दक्ष नहीं होगा तो राज्य विकास में उसका योगदान नगण्य होगा। राजनीति अथवा कूटनीति मधुर से मधुर सम्बन्धों को तोड़ उसे शत्रुता में परिवर्तित कर देती है। मंत्री द्वारा बाहुबली का नाम लिए बिना बंधुता में अवरोध बनने की बात कहना उसकी वाणी कौशल

का परिचायक है। दूसरी ओर भातृत्व भाव संसार के सभी सम्बन्धों से श्रेष्ठतम है। भरत–बाहुबली से युद्ध नहीं चाहते। भातृत्व भाव को वे दांव पर नहीं लगाना चाहते। मंत्री उनके मनोभावों को समझ कूटनीति का कुटिल पाशा फेंकता है, जिससे भरत टूट जाते हैं, अन्ततः युद्ध को आमंत्रण मिलता है :–

मंत्री :– देश और विदेश में यह, बात अति विख्यात है।
भरत से भी बाहुबलि का, बाहुबल अवदात है।
जनपदों को जीतने में, शक्ति का व्यय क्यों किया?
क्या जलेगा चक्रवर्ती, पीठ का स्नेहिल दिया?
बाहुबलि को जीतने का, स्वप्न क्यों देखा नहीं?
शेष सब नृप बिंदु केवल, एक है रेखा यही। ऋ.पृ.–225.

भरत :– बाहुबलि की नम्रता में, उचित ही संदेह है
उचित है आरोप तेरा, एकपक्षी स्नेह है
ज्येष्ठता का भूमि–नभ में, सर्वदा सम्मान है।
अनुज के व्यवहार में तो, झलकता अभिमान है। ऋ.पृ.–226

\+ + +

समर चरम विकल्प उसको, स्थान यदि पहला मिले।
तो मधुर संबंध–तरू पर, सुरभि सुम कैसे खिले ?
दूत जाए बाहुबलि के, पास मम संदेश ले
सुलझ जाए गांठ यदि वह, बात पर ही ध्यान दे। ऋ.पृ.–227.

भरत का मन भातृत्व प्रेम से मण्डित है किंतु राजनीतिक परिस्थितियाँ और मंत्री की मंत्रणा उनके स्नेह पर भारी पड़ती है, और वे चाहते हैं कि बाहुबलि शरणागत हों–इसलिए दूत भेजते हैं। यहां राजा के रूप में भरत का कमजोर पक्ष उजागर हुआ है। इसके पूर्व भी भरत की महत्वाकांक्षा अट्ठानबे भाईयों एवं मुँह बोले भाई नमि–विनमि के प्रति व्यक्त हो चुकी है। महत्वाकांक्षा से व्यक्ति अंधा हो जाता है, रिश्ते टूटे या बने महत्वाकांक्षी के लिए उसका कोई स्थान नहीं। जिसने भी भयावह महत्वाकांक्षा पाली, उसका पतन सुनिश्चित है। हुआ भी यही।

उत्थान के बाद पतन और पतन के बाद उत्थान नैसर्गिक धर्म है। पराजय के पश्चात् भरत के मन में ग्लानि का सूत्रपात हुआ। विजयी बाहुबली द्वारा योग की ओर बढ़े कदम जैसे भरत के ज्ञान को भी खोल दिए और एक समय आया कि भरत भी भाई व पिता के पद चिन्हों पर चलने के लिए आतुर हो उठे। अंत में ऋषभ के संबोध से भरत की जीवनदशा ही परिवर्तित हो गयी। जिसे भरत–ऋषभ संवाद में देखा जा सकता है –

भरत :– प्रभुवर! मेरे बंधु प्रवर ने, आत्म–राज्य में किया प्रवास,
केवल मेरा ही है स्वामिन्! भौतिकता में अटल निवास।
कब वह शतक बनेगा पूरा? कब होगा मेरा सन्यास?
कब होगी आत्मा की गति–मति? अंतस्तल का अमल प्रकाश। ऋ.पृ.–297.

इस कृशानु को शांत करे वह, सलिल मिले, दो प्रभु! आशीष।ऋ.पृ.–298.

भरत परिवार के संपूर्ण सदस्यों को भक्तिमार्ग, योग मार्ग पर अग्रसर होते देख व्याकुल हो उठते हैं उन्हें साम्राज्य अब सुख सुकून न देकर उनकी चिन्ता को बढ़ा रहा है। वे भी उसी मार्ग पर जाना चाहते हैं। उनकी संपूर्ण उद्विग्नता को शांत करते हुए ऋषभ कहते हैं :–

आत्मा का संबोध मिला है, फिर क्यों भरत! बने हो दीन ?
विपुल जलाशय में रहकर भी, हंत! प्यास से आकुल मीन।
अनासक्ति की प्रवर साधना, बढ़े शुक्ल का जैसे चंद्र।
जल से ऊपर जलज निरंतर, रवि रहता नभ में निस्तंद्र। ऋ.पृ.–298.

अंततः भरत भी योग मार्ग को स्वीकार कर राज्य की आसक्ति से मुक्त हो जाते हैं।

आत्मजागरण की अवस्था में महत्वाकांक्षा का स्वमेव उपशमन हो जाता है। भरत द्वारा अपने भाईयों के भक्तियोग मार्ग को स्वीकार कर उसी राह पर चलना संयम और त्याग के कारण ही संभव हो सका है।

साधना में अहंकार, क्रोध, माया, मोह, मद, लोभ बाधक है। ये ऐसे मनोविकार हैं, जिनके उत्पन्न होते ही मन की चंचलता और निरंकुशता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। इससे चित्तवृत्तियों में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। साधक

संयम के द्वारा, त्याग के द्वारा इंद्रियनिग्रह के द्वारा, योग के द्वारा इन मनोविकारों का शमन कर परमानन्द की अनुभूति करता है। ऋषभ को आत्मानंद की अनुभूति हो जाने के पश्चात् – अहं, क्रोध, माया, मोह–मति को संकेत कर अमूर्त रूप से जो वार्तालाप करते हैं, उससे यह प्रमाणित होता है कि साधक के मन में उक्त कषायों के रहते हुए चिन्मय–दीप नहीं जल सकता।

किया अहं ने घोर विरोध, और किया मति से अनुरोध।
क्यो जागृत करती हो आज, सुप्त सिंह को हे अधिराज!
जाग गया यदि परमानन्द, हो जाओगी तुम निस्पंद।
सार नहीं होगा संसार, अहं बनेगा सिर का भार।
अतिक्रांत है मेरा क्षेत्र, उद्घाटित अभ्यंतर नेत्र।
प्रज्ञा का है अपना देश, वर्जित उसमें अहं–प्रवेश।
क्रोध! बंधुवर! सुन लो मान!, खोजो अपना–अपना स्थान।
माये! देवि! सुनो आह्वान, कृपया शीघ्र करो प्रस्थान। ऋ.पृ.–142.

क्रोध मौन हो गया अरूप, अहंकार ने बदला रूप।
माया का अस्तित्व विलीन, फिर भी लोभ रहा आसीन। ऋ.पृ.–143

सेनानायक मोह कराल, सारा उसका मायाजाल।
शेष हो गया अंतर्द्वन्द्व, अंतर्जगत् हुआ निर्द्वन्द्व। ऋ.पृ.–144.

इंद्रिय मन पर पूर्ण विराम, अन्तश्चित् सक्रिय अविराम।
शब्द अगोचर अनुभव–गम्य, केवल की है कथा अगम्य। ऋ.पृ.–145.

उक्त मनोविकारिक संवाद से जैन मत के 'कैवल्य ज्ञान' की धारणा पुष्ट होती है। 'केवल ज्ञान' की उपलब्धि योग की एक जटिल प्रक्रिया के पश्चात् होती है। इस अवस्था में स्थापित होने पर सभी पदार्थों के ज्ञान की क्षमता आ जाती है। केवल ज्ञान के संबंध में आचार्य तुलसी लिखते हैं कि – 'इन्द्रियों और मन की सहायता के बिना आत्मा के द्वारा मूर्त और अमूर्त सभी पदार्थों की सब पर्यायों का साक्षात्कार करना केवलज्ञानोपयोग है।'[15]

केवल ज्ञान हो जाने पर मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है। अन्तश्चित् अहर्निश

सक्रिय रहता है। मन तथा इंद्रियों पर हमेशा–हमेशा के लिए पूर्ण विराम लग जाता है।

इस प्रकार आचार्य महाप्रज्ञ ने नाभि–मरूदेवा संवाद, ऋषभ–जनप्रतिनिधि संवाद, सुनंदा–पिता संवाद, युगल गण–नाभि संवाद, धरण, नमि–विनमि संवाद, मरूदेवा–पनिहारिन संवाद, देव–गिरिजन संवाद, भरत–नियोगी संवाद, ऋषभ–भरत संवाद, सुषेण–भरत संवाद, मंत्री–भरत संवाद, बाहुबली–दूत संवाद, भरत–सुवेग संवाद, बाहुबली–सूर्ययशा संवाद, भरत–बाहुबली संवाद के द्वारा कथानक को गति देते हुए जीवन के श्रेष्ठतम उद्देश्य निर्वाण की महत्ता का प्रतिपादन किया है।

➢ रस

रस काव्य का प्राण तत्व है। काव्य का जन्म ही रस दशा में हुआ था, अतः रसवाद के बीज वाल्मीकि रामायण में ही मिल जाते हैं। संपूर्ण जातीय जीवन का महाकाव्य होने के कारण स्वभावतः उसमें नाना परिस्थितियों का और उससे उत्पन्न मानव दशाओं का चित्रण हैं, अतएव समस्त रस भावादि की प्रभु सामग्री वहाँ सहज ही प्राप्त है। महाभारत के विषय में भी यही सत्य है, महाभारत ही क्यों? ऋग्वेदादि में, ब्राम्हण ग्रंथों में भी संयोग–वियोग, शांत, अद्भुत, रौद्र, वीभत्स और भयानक आदि के अपूर्व वर्णन मिलते हैं।[16]

भारतीय मनीषियों ने 'रसै वै सः' कथन से रस को परमात्म रूप में ही मान्यता दी है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार–'जिस प्रकार मामूली ईंट पत्थर के टुकड़ों से शिल्पकार उत्तम महल बना देता है। उसी प्रकार साधारण शब्दों और भावों की सहायता से कवि अलौकिक रस की सृष्टि करता है।'[17]

रस से दिव्य लोकोत्तर आनंद की अनुभूति होती है। इससे चेतना का दिव्य रूप में परिष्कार होता है। रस के क्रिया व्यापार में विभाव, अनुभाव, संचारी भाव की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, ये ही स्थावी भाव को पुष्ट कर उसे रसदशा तक पहुँचाते हैं। आचार्यो ने स्थायी भावों की स्थिति रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, आश्चर्य, निर्वेद एवं अपत्य स्नेह के रूप में माना है। ये

मूलभाव एक प्रकार से काव्य की चौहद्दी (घेरा) होते हैं।

यदि काव्य रचना की प्रवृत्ति पर विचार करें तो वर्तमान समय में आदर्श परक, यथार्थपरक एवं दर्शन अध्यात्म से संबंधित काव्य दृष्टिगोचर होते हैं जिसमें आवश्यकतानुरूप कवि द्वारा रस की योजना की जाती है। ऋषभायण एक दार्शनिक एवं आध्यात्मिक काव्य है, जिसमें प्रसंगवश विविध रसों की योजना की गई है–

शांत रस :–

ऋषभायण महाकाव्य में अंगी रस के रूप में शांत रस की चरम व्याप्ति है। 'शम' अथवा निर्वेद स्थायी भाव से शांत रस की उत्पत्ति होती है। आध्यात्मिक, दार्शनिक तथा भक्तिमय काव्य का रूपांकन शांत रस के द्वारा ही किया जाता है। आत्मानन्द की अनुभूति हो जाने पर सुख–दुख से संबंधित जितनी भी संवेदनाएं हैं वे स्वमेव परिशांत हो जाती हैं। निर्गुण आत्मानंद का स्वरूप प्रतिक्षण दिखाई देने लगता है, जैसे –

सुख दुख की संवेदना, से होता है मंद,
वह संवेदन से परे, आत्मा का आनंद।
निर्गुण आत्मानन्द में, हुए प्रतिक्षण लीन,
जैसे सलिल निमग्न हो, महासिंधु का मीन। ऋ.पृ.–107–108.

आत्मा ही सत्य है, शिव है, सुंदर है, परमात्मा की अनुभूति आत्मा के स्फुरण से ही संभव है। यहाँ परमात्मा का आशय किसी ईश्वर से नहीं अपितु परम+आत्मा यानी आत्मा के श्रेष्ठ स्वरूप से है। उसका रूप अतिसूक्ष्म है। योगियों के लिए जहाँ सतत अभ्यास से उसे समझना सहज है, वहीं अन्य के लिए दुर्लभ भी, जैसे :–

आत्मा सत्यं शिवम् सुंदरं
आत्मा मंगलमय अभिधान
उपादान है परमात्मा का
संयम है उसका अवदान

सूक्ष्म तत्व है इसीलिए वह
कहीं गम्य है कहीं अगम्य
किंतु चेतना सर्वविदित है
सहज रम्य प्रति व्यक्ति प्रणम्य। ऋ.पृ.–158.

हृदय में जब समता स्थापित हो जाती है तब राज्य, वैभव, मान, प्रतिष्ठा सब झूठे प्रतीत होने लगते हैं। दृढ़ निश्चय आत्मानन्द में प्रवेश करने की पहली सीढ़ी है :–

निर्विकल्प हम भगवन्! केवल
आत्म–साधना एक विकल्प
आत्मा की गरिमा के सम्मुख
राज्य हमें लगता है अल्प
आत्मा का साक्षात् करेंगे
दृढ़–निश्चय है, दृढ संकल्प
पूर्ण समर्पण ही होता है
कल्पवृक्ष चिंतामणि कल्प। ऋ.पृ.–202

वीर रस :–

उत्साह स्थायी भाव से वीर रस की व्युत्पत्ति होती है। ओज इसका प्रधान गुण है। महाकाव्य में जहाँ–जहाँ युद्ध का वर्णन किया गया है। वहाँ–वहाँ आसानी से उत्साह भाव को देखा जा सकता है। शांत रस के बाद महाकाव्य में वीर रस को अधिक महत्व दिया गया है, जैसे–गिरिजनों से युद्ध, भरत बाहुबली युद्ध प्रकरण में ओजगुण की जीवंत झांकी देखी जा सकती है। बाहुबली जब अपने पौरूष बल पर युद्ध में भरत को 'कन्दुक' के समान आकाश में उछाल देते हैं तब वहाँ उपस्थित सभी जनों में हाहाकार सा मच जाता है। जैसे :–

क्रीड़ा कंदुकवत चक्रीश्वर, महाशून्य में हुआ विलीन।
हाहाकार किया धरती ने, बहलीश्वर का विक्रम पीन। ऋ.पृ.–279

भरत के शीश पर बाहुबली द्वारा लोहदण्ड के प्रहार से धरती पर 'गर्त'

का निर्माण हो जाता है :—

लोहदण्ड ले भरत शीष पर, किया बाहुबलि ने प्रतिघात।
हुआ प्रकम्पित भू का आशय, गर्ता का निर्माण अखात। ऋ.पृ.—282.

भयानक रस :—

युद्ध में मात्र व्यक्ति के पौरूष का ही प्रदर्शन नहीं होता, अपितु अदृश्य शक्तियां भी अपने उपासकों के सहयोग के लिए बादल का रूप धारण कर विरोधी सेना के लिए महामारी का दृश्य उपस्थित कर देती है भरत और गिरिजनों के युद्ध में, गिरिजनों की ओर से 'मेघमुख' के प्रलयंकारी आक्रमण से भरत की सेना में 'भय' का वातावरण छा जाता है। जैसे –

सहसा श्यामल अंभोधर की, घटा गगन में छाई
चमक चमक पीतिम बिजली ने, अपनी छटा दिखाई
मुसल सदृश वर्षा की धारा, कांप उठा सेनानी
आंदोलित सेना का मानस, किसने लिखी कहानी ? ऋ.पृ.—175

रौद्र रस :—

क्रोध स्थायी भाव से रौद्र रस का प्रकाशन होता है। इस भाव के उत्पन्न होते ही सम्पूर्ण स्नायुयों में कठोर आवेगों का संचरण होने लगता है। अपमान, तिरस्कार, कटुवाणी आदि के द्वारा प्रतिपक्षी को आहत किया जाता है। भरत जब मर्यादा का अतिक्रमण कर चक्ररत्न से बाहुबली पर आघात करते हैं तब उसके प्रतिउत्तर में बाहुबली क्रोध से परिपूर्ण हो अपनी प्रतिक्रिया निम्नलिखित रूप में व्यक्त करते हैं :—

उठा हाथ, तन गई मुष्टि भी, दौड़ा भरतेश्वर की ओर,
रौद्र मूर्ति से लगी टपकने, साध्वश की धारा अति घोर। ऋ.पृ.—287.

बाहुबली के पुत्र सिंहरथ जब रणाङ्गन में प्रवेश करते हैं, तब क्रोधावेश में उनके सिंहनाद से भरत की सेना प्रकम्पित हो जाती है। यहाँ भरत की सेना को ऐसा लगता है जैसे युद्ध के मैदान में बाहुबली अथवा इंद्र उपस्थित

हो गये हों। देखिए, क्रोध का प्रचण्डतम रूप :–

सिंहनाद से हुआ प्रकम्पित, भरतेश्वर का सेना–चक्र।
किया पलायन योद्धागण ने, कौन? बाहुबलि अथवा शक्र। ऋ.पृ.–255

युद्ध के मैदान में अपने विद्या के प्रभाव से महामारी फैला रहे अनिलवेग के प्रति सेनापति सुषेण का क्रोध निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त हुआ है :–

मौन करो अब अनिल वेग! तुम, बहुत अनर्गल किया प्रलाप,
छलना की वैतरणी में रे! कैसे धुल पाएगा पाप ? ऋ.पृ.–257.

प्रसंगवश रणक्षेत्र में अन्य स्थलों पर भी रौद्र रस को देखा जा सकता है।

वीभत्स रस :–

घृणा, जुगुप्सा स्थायी भाव वीभत्स रस के स्फुरण का कारण होता है। ऋषभायण में वीभत्स रस के उदाहरण कम ही मिलेंगे युद्ध के परिप्रेक्ष्य में भरत का चिंतन उद्धृत किया जा सकता है :–

निज अहं को पुष्ट करने, की महेच्छा युद्ध है।
रक्त–रंजित भूमि नर की क्रूरता पर क्रुद्ध है। ऋ.पृ.–220

करूण रस :–

शोक, स्थायी भाव से करूण रस की उत्पत्ति होती है। वाल्मीकि ने 'रामायण' की रचना करूण रस को ही आधार बनाकर किया है। ऋषभायण में करूण रस की झलक यत्र–तत्र देखी जा सकती है। बाहुबली द्वारा ऋषभ के दर्शन न होने पर उनके द्वारा करूण विलाप हृदय को छू जाता है :–

कितने सपने, कितने भाव! कितने चिंतन के अनुभाव!
कौन सुनेगा? दीनदयालु! मुझ पर थे तुम सदा कृपालु। ऋ.पृ.–138.

बाहुबली के मन में अनुताप का उबाल निम्नलिखित करूण विलाप में देखा जा सकता है :–

बाहुबली का करूण विलाप, उबल रहा मन का अनुताप।
बोला मृदु वच सचिव सुधीर, क्यों प्रभु इतने आज अधीर। ऋ.पृ.–139.

ऋषभ द्वारा दीक्षा ग्रहण एवं गृहत्याग के पश्चात् पिता के प्रति भरत की करूण भावना निम्नलिखित पंक्तियों में वर्णित है :—

करूणा कर हे! करूणा करके, इक बार निहार निहाल करो।
यह बंधन है पुर–वास प्रभो! तुम मुक्त हुए सुख से विचरो। ऋ.पृ.–104.

अद्‌भुत रस :–

विस्मय भरा आश्चर्य स्थायी भाव से अद्‌भुत रस की व्युत्पत्ति होती है। इस रस में अलौकिक अथवा आश्चर्योत्पादक वस्तु के कार्य की ओर इंगित किया जाता है। ऋषभ द्वारा साधना में भोजन का त्याग आश्चर्य बोधक है।

चक्र चला वार्ता का क्या प्रभु, इतने दिन भूखे प्यासे?
किसने फेंके ये मायावी, इंद्रजाल भावित पाशे ? ऋ.पृ.–132.

वात्सल्य रस :–

पुत्र अथवा छोटों के प्रति स्नेह, ममत्व से वात्सल्य रस की उत्पत्ति होती है। महाकाव्य के नौवें सर्ग में पुत्र ऋषभ के प्रति माँ की चिंता वात्सल्य भाव से परिपूर्ण है। माँ द्वारा पुत्र को भोजन कराते समय जिस वात्सल्य की अनुभूति होती है। उसकी स्मृति का रेखांकन करती हुयी माँ मरूदेवा भरत से कहती है :–

याद आ रहे हैं वे वासर, भोजन स्वयं कराती थी।
अपने हाथों से परोसती, मैं दीपक, मैं बाती थी। ऋ.पृ.–148.

पुत्र की चिंता से माँ मरूदेवा विव्ह्ल हो जाती हैं, उनकी विव्ह्लता का वर्णन निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है :–

आज अकेला कौन दूसरा, सुख–दुख में उसका साक्षी ?
पदचारी, पहले रहता था, चढ़ने को प्रस्तुत हाथी। ऋ.पृ.–148.

और भी – भूमी शैय्या, वही बिछौना, नींद कहां से आएगी!

रात्रि जागरण करता होगा, स्मृति विस्मृति बन जाएगी। ऋ.पृ.–149.

इस प्रकार ऋषभायण महाकाव्य में उक्त रसों की योजना प्रसंग वशात् की गयी है। किंतु शांत रस, वीर रस एवं वात्सल्य रस का प्रसार अन्य रसों की तुलना में अधिक है।

➢ अलंकार

अलंकार शब्द का अर्थ है 'आभूषण'। जिस प्रकार किसी व्यक्ति को आभूषणों से सुसज्जित कर देने पर उसकी सुंदरता बढ़ जाती है, उसी प्रकार अलंकारों से विभूषित काव्य भी अधिक सुंदर ज्ञात होने लगता है। काव्यादर्श में आचार्य दंडी ने अलंकार को पारिभाषित करते हुए लिखा है कि 'काव्यशोभाकरात् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते'[18] अर्थात् काव्य के शोभाकर धर्म को अलंकार कहते हैं।

अलंकार वस्तुतः बोलने अथवा लिखने की एक शैली है। किसी बात को श्रोता या पाठक के मन मे भलीभाँति बैठा देने के लिए बोलचाल में यह आवश्यकता होती है कि बात कुछ बनाकर कही जाय। इस प्रकार बात को सजाने में जो चमत्कार आ जाता है, उसे साहित्य ग्रंथो में अलंकार के नाम से पुकारते हैं। अलंकारों की उपयोगिता के संबंध में सुमित्रानन्दन पंत ने लिखा है कि 'अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए ही नहीं है, वरन् भाव की अभिव्यक्ति के भी विशेष द्वार हैं, भाषा की पुष्टि के लिए, राग की पूर्णता के लिए, आवश्यक उपादान है। वे वाणी के आचार, व्यवहार रीति–नीति हैं। पृथक स्थितियों के पृथक–पृथक स्वरूप भिन्न–भिन्न अवस्थाओं के भिन्न–भिन्न चित्र हैं।'[19]

काव्य में अलंकारों का सहज प्रयोग उसकी भाव प्रवणता में बाँकपन लाता है। इसलिए कवि का प्रथम दायित्व होता है कि वह अलंकारों के बलात् प्रयोग से कविता को मुक्त रखे। इस संदर्भ में लोंजाइनस का कथन यहाँ तक है कि काव्य में अलंकारों का प्रयोग इस रूप में हो कि श्रोता या पाठक को उसके

प्रयोग का पता ही न चले। आचार्य महाप्रज्ञ ने सहज में ही शब्दालंकार एवं अर्थालंकारों से संबंधित विविध अलंकारों, जैसे :– अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण, उदाहरण, विरोधाभास, अर्थान्तरन्यास, विशेषोक्ति, पुनरूक्ति प्रकाश, व्यतिरेक, स्वभावोक्ति आदि अलंकारों की योजना की है। जिसका परीक्षण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है।

(1) अनुप्रास :–

अनुप्रास कवि का प्रिय अलंकार है। पूरे महाकाव्य में शब्द सौंदर्य की छटा इसके माध्यम से देखी जा सकती है। जैसे :–

1) तरू–तरू तरूणीफल आभास, तरूणों के स्वर में उपहास। ऋ.पृ.–78.

यहाँ 'त' वर्ण की आवृत्ति से नाद सौंदर्य की उत्पत्ति हुई है।

2) समान वर्ण लयात्मकता एवं संगीतात्मकता का भी सृजन करते हैं–
लीलालीन ललित ललना की, पादाहति से रूष्ट। ऋ.पृ.–79.

3) अपनेपन के विस्तार–बन्धन में अनुप्रास की छटा अद्‌भुत है :–
मम माता, मम पिता सहोदर, मेरी पत्नी, मेरा पुत्र।
मेरा घर है, मेरा धन है, सघन हुआ ममता का सूत्र। ऋ.पृ.–68.

(2) यमक :–

जहाँ एक शब्द की आवृत्ति दो या दो से अधिक बार हो और प्रत्येक का अर्थ अलग–अलग हो, वहाँ यमक अलंकार होता है।

1) उत्सुक नयनों में द्रुत प्रतिबिम्ब वाणी,
श्री <u>नाभि–नाभि</u> से उत्थित वर कल्याणी।

उक्त उदाहरण में प्रथम नाभि का अर्थ ऋषभ के पिता से और द्वितीय नाभि का अर्थ शरीर के केंद्र से है जहाँ से यौगिक क्रियाएँ प्रारंभ की जाती है।

2) बाहु–बाहु में बल विकसित है, मल्ल युद्ध देगा आमोद।ऋ. पृ.–279.

यहाँ प्रथम बाहु का अर्थ बाहुबली से तथा द्वितीय बाहु का अर्थ भुजा से है।

(3) पुनरूक्ति प्रकाश :–

जहाँ केवल सौंदर्य सृजन के लिए शब्दों की आवृत्ति हो वहाँ पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार होता है, जैसे :–

1) बिन्दु–बिन्दु का सघन समुच्चय। ऋ.पृ.–20.

2) महामहिम के अंग–अंग पर, यौवन सहसा लहराया। ऋ.पृ.–38.

3) कण–कण दृष्ट करूण साकार, शाखा–शाखा कंप विकार। ऋ. पृ.–79

यहाँ बिन्दु–बिन्दु, अंग–अंग, कण–कण शब्दों की आवृत्ति अर्थ को और भी गहन कर उसके सौंदर्य का कारण बनती है। इस अलंकार का कवि ने अत्याधिक उपयोग किया है।

(4) उपमा :–

उपमा के द्वारा सहधर्मता के कारण एक वस्तु की दूसरे वस्तु से तुलना की जाती है। उपमेय, उपमान, वाचक, साधारण धर्म उपमा के अंग हैं। दिनकर के अनुसार सही अर्थों में मौलिक कवि वह है, जिसके उपमान मौलिक होते हैं। यह मौलिकता ऋषभायण में देखी जा सकती है, जैसे :–

1) माता भी मरूदेवा स्तम्भित, मौन मूर्ति सी खड़ी रही। ऋ.पृ.–106.

2) चार दंत वाला हिमगिरि–सा, श्वेत समुन्नत गज आया। ऋ.पृ.–15.

3) शांत–सिंधु सा मौन भरत नृप, चिंतन की मुद्रा अभिराम। ऋ.पृ.–263.

उक्त उदाहरण में क्रमशः 'मूर्ति', 'हिमगिरी' एवं 'सिंधु' का प्रयोग उपमान के रूप में किया गया है। जिससे क्रमशः उपमेय की स्थिति बिम्बित हुयी है।

(5) रूपक :–

जहाँ उपमेय और उपमान में केवल सादृश्य ही नही अपितु दोनों को एक बना दिया जाता है, तब रूपक अलंकार होता है, जैसे :––

1) इस लोभ–अग्नि में सब कुछ होता स्वाहा। ऋ.पृ.–21.

यहाँ यह बताया गया है कि लोभ (उपमेय) रूपी अग्नि (उपमान) से सब कुछ नष्ट हो जाता है। अर्थात् उपमेय पर उपमान का आरोप प्रमाणित है।

2) पता नहीं क्यों आज अहेतुक, 'हर्ष–वीचि' उत्ताल हुई ? पृ.–34.

उक्त उदाहरण में हर्ष (उपमेय) भाव पर वीचि (उपमान) का आरोप किया गया है अर्थात् हर्ष रूपी लहरें उत्ताल रूप में तरंगायित होने लगी।

3) वलि वर्जित वपु, श्यामलतम कच
लोचन–कुवलय विहँस रहे।

ऋषभ के यौवन का वर्णन है, जिसमें लोचन (उपमेय) पर कुवलय (उपमान) का आरोप किया गया है अर्थात् ऋषभ के नेत्र कमलवत है।

(6) उत्प्रेक्षा :–

जहाँ उपमेय की उपमान रूप में सम्भावना की जाय, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है – जैसे :–

1) आत्मा के चिन्मय स्पंदन में, स्फुरित हुआ सहसा उल्लास।
देखा सम्मुख <u>भरतेश्वर</u> को, मूर्त हुआ <u>मानो</u> आभास।। ऋ.पृ.–214

उक्त उदाहरण में भरत का चिंतन मुखरित हुआ है जिसमें उपमेय (भरतेश्वर) में उपमान (आत्मा का चिन्मय स्पंदन) की संभावना की गयी है। यहाँ उत्प्रेक्षा की अभिव्यक्ति सूक्ष्मरूप में की गयी है।

2) तरूवासी जग का संप्रवेश नगरी में,
मानो <u>सागर</u> का सन्निवेश <u>गगरी</u> में। ऋ.पृ.–56

यहाँ सागर (उपमेय) के सन्निवेश की संभावना गगरी (उपमान) के रूप में की गयी है। अर्थात् वृक्षों की गोद में निवास करने वाले, विस्तृत स्वच्छंद रूप से जीने वाले युगलों का प्रवेश नगर के सीमित दायरे में हुआ।

अन्य उदाहरण :–

3) आगमन तव भूत क्षण को, कर रहा प्रत्यक्ष है।
हो रहा साक्षात मानो, प्रभु ऋषभ का कक्ष है।। ऋ.पृ.–236.

4) पवन वेग सा आया मानो, होगा रण का उपसंहार। ऋ.पृ.–261.

5) रस पल्लव इठलाते मानो, थिरक रही मीनाक्षी हो। ऋ.पृ.–148.

(7) मानवीकरण :–

प्रकृति चेतना में मानवीय चेतना का आरोपीकरण मानवीकरण है, जैसेः–

1) सुरभि–पवन संगीत गा रहा,
पल्लव–रव की शहनाई,
किंशुक कुंकुम रूप हो गया,
पुष्पों ने ली अंगड़ाई। ऋ.पृ.–35.

उक्त उदाहरण में 'पवन के संगीतमय गायन' एवं 'फूलों की अंगड़ाई लेने' की क्रिया में मानवीकरण है।

2) इतने में उस महाकाल ने, अपना पंजा फैलाया। ऋ.पृ.–42.

महाकाल अदृश्य है, उसके द्वारा 'पंजा फैलाने' की क्रिया में मानवीकरण है क्योंकि पंजा फैलाना मानव की क्रिया है।

अन्य उदाहरण :––

3) अनिल वेग आहत जीवन में, उत्थित एक तरंग।
सक्षम वात, किंतु जल कैसे, सह सकता है व्यंग ? ऋ.पृ.–79.

किसी पर व्यंग्य करना मानवीय क्रिया है। इस प्रकार 'जल' का 'व्यंग्य' के लक्ष्य से मानवीकरण है।

4) मंद–मंद समीरण सुरभित कर–कर विटपि–स्पर्श,
आगे बढ़ता लगता तरू को, इष्ट वियोग प्रकर्ष। ऋ.पृ.–79.

उक्त उदाहरण में 'समीर' व 'विटप' का मानवीकरण किया गया है।

(8) विरोधाभास :–

जहाँ वास्तविक विरोध न होते हुए भी विरोध के आभास का वर्णन किया जाय वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है। जैसे :–

1) तोड़ू ममता का तटबंध, जिससे बनता <u>सनयन अंध।</u> ऋ.पृ.–82.

उक्त उदाहरण में बताया गया है कि ममता के प्रभाव से 'सनयन' भी 'अंधा' हो जाता है, यहाँ विरोध का आभास तो हो रहा है। प्रत्युत कथन का समर्थन इस रूप में हो रहा है कि 'ममता' का बंधन अटूट होता है।

2) मरूदेवा मर अमर हो गयी, दोहराया अपना विश्वास। ऋ.पृ.–157.

उक्त कथन में माँ मरूदेवा के 'मरने' के पश्चात् 'अमर' होने के विरोध का आभास होता है किंतु कथन का समर्थन इस रूप में हुआ है कि मरूदेवा 'सिद्धि' प्राप्त करने से हमेशा–हमेशा के लिए ख्यात हो गयी।

(9) अर्थान्तरन्यास :–

जहाँ सामान्य का विशेष से और विशेष का सामान्य से समर्थन किया जाय वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। जैसे :–

1) अमरबेल ने आरोहण कर, किया वृक्ष का शोष।
वह कैसा प्राणी जो करता, पर–शोषण, निज पोष। ऋ.पृ.–80.

यहाँ अमरबेल के द्वारा वृक्ष के शोषण से (सामान्य) शोषक वृत्ति के व्यक्तियों की ओर संकेत किया गया है। इस प्रकार दोनों कथन एक–दूसरे का समर्थन करते हुए प्रतीत होते हैं।

2) चुम्बक में अपना आकर्षण, लोहा–खिंचता जाता।
कौन सहायक दुर्बल जन का? कौन अबल का त्राता? ऋ.पृ.–177.

चुम्बक का सामान्य गुण है, लोहे को आकर्षित करना। इस सामान्य कथन से शक्तिशाली द्वारा दुर्बल व अबल जन को पराजित करने का भाव है। अस्तु सामान्य विशेष के समर्थन से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

(10) विशेषोक्ति :–

जहाँ संभूत कारण होते हुए भी कार्य की व्युत्पत्ति न हो वहाँ विशेषोक्ति अलंकार होता है, जैसे :–

विपुल जलाशय में रहकर भी, हंत! प्यास से आकुल मीन। ऋ.पृ.–298.

जलाशय में रहने वाली 'मीन' संभूत जल के रहते हुए भी प्यासी है। पर्याप्त कारण के होते हुए भी कार्य नहीं हो पा रहा है।

(11) व्यतिरेक :–

जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय की श्रेष्ठता व्यंजित हो, वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है। जैसे :–

1) सुरपथ रवियुत मुदिर विहीन, फिर भी भूतल सम्मुख दीन।

सूर्य के आलोक से आलोकित बादल विहीन 'सुरपथ' (उपमान) को 'भूतल' उपमेय के सम्मुख दीन बताकर उपमान की न्यूनता व्यंजित की गयी है।

2) दूत का जिज्ञासितं सुन, गांव के जन ने कहा,
बाहुबलि का तेज अतुलित, सूर्य यह पीछे रहा। ऋ.पृ.–231.

यहाँ 'बाहुबलि' (उपमेय) के तेज के सम्मुख 'सूर्य' (उपमान) को पीछे बताकर उसकी न्यूनता दर्शित की गयी है।

(12) स्वाभावोक्ति :–

जहाँ किसी वस्तु का स्वाभाविक वर्णन होता है, वहाँ स्वाभावोक्ति अलंकार होता है, जैसे :–

जेठ मास की तपी दुपहरी, तप्त धूलि धरती भी तप्त।
तप्त पवन का तपा हुआ तन, मन कैसे हो तदा अतप्त। ऋ.पृ.–198.
यहाँ जेठ माह की ताप का स्वाभाविक वर्णन किया गया है।

'ऋषभायण' में अलंकारों की छटा अनुपम है। उनके द्वारा प्रयुक्त अलंकार भाव, भाषा एवं लय का संस्कार करते हुए प्रतीत होते हैं। अलंकारों का सहज प्रयोग काव्य सौंदर्य में वाहक के रूप में दृष्टिगत होता है। काव्य में कहीं भी अलंकार चमत्कार प्रदर्शन का कारण नहीं बना है,उनका सहज प्रयोग भाव उत्कर्ष का कारण अवश्य बना है।

➢ प्रतीक

प्रतीक शब्द की व्युत्पत्ति प्रति+इण (गतो) से मानी गयी है, जिसके अनुसार प्रतीक का अर्थ वस्तु है, जो अपनी मूल वस्तु में पहुँच सके अथवा वह चिन्ह जो मूल का परिचायक हो।[20] प्रतीक की आधुनिक अवधारणा के अनुसार–प्रस्तुत

को वाच्य बनाकर अप्रस्तुत की ओर संकेत किया जाता है। यानी, प्रतीक विधान एक ऐसी अभिव्यक्ति शैली है, जिसमें विचारों और अनुभूतियों को सीधे–सीधे वर्णित न करके उनका संकेत किया जाता है और पाठक के मस्तिष्क में अव्याख्यायित प्रतीकों के माध्यम से उनका उद्‌बोधन कराया जाता है।[21] डॉ. नित्यानंद शर्मा ने प्रतीक को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि – अप्रस्तुत, अप्रमेय, अगोचर अथवा अमूर्त्त का प्रतिनिधित्व करने वाले उस प्रस्तुत या गोचर वस्तु–विधान को प्रतीक कहते हैं, जो देशकाल एवं सांस्कृतिक मान्यताओं के कारण हमारे मन में अपने चिर साहचर्य के कारण किसी तीव्रभाव बोध को जागृत करता है।[22]

प्रतीकों का प्रयोग मानव विकास के साथ ही अति प्राचीन है। वेदों में प्रतीक का उल्लेख मिलता है। सृष्टि में मानव का अस्तित्व जब से प्रकाश में आया तब से ही प्रतीकों में अभिव्यक्ति की शुरूआत हुई। भाषा विकास के पूर्व सांकेतिक चिन्हों अथवा हाव–भाव के प्रतीकों के द्वारा आदिम मानव अपनी भावनाओं को व्यक्त करता था। प्रतीकों का निर्माण मानव की मौलिक विशेषता है। उसकी आत्म चेतना के विकास में प्रतीकों का महत्वपूर्ण योग रहता है। मनुष्य ने अपनी भाषा का विकास प्रतीक शक्ति से ही किया है। शिपली की मान्यता है कि भाषा स्वयं ही एक प्रतीक है। प्रत्येक कला एक तरह की भाषा ही होती है। इसका अर्थ हुआ कि प्रत्येक कला एक प्रतीक होती है।[23]

अज्ञेय के अनुसार –'जन साहित्य सदा से और सबसे अधिक प्रतीकों और अन्योक्तियों के सहारे ही अपना प्रभाव उत्पन्न करता है। यह बीज हम संस्कृत में पाते हैं। वेदों से लेकर वाल्मीकि तक और वाल्मीकि से लेकर कालिदास तक भी। संस्कृत से वह शक्ति अपभ्रंशो और फिर लोक साहित्य में चली गयी।'[24] केदारनाथ सिंह ने भी प्रतीकों की प्राचीनता स्वीकार करते हुए लिखा है कि 'प्रतीकों का प्रयोग उतना ही पुराना है, जितना स्वयं समाज। आदिम मनुष्य ने शताब्दियों पहले अपनी मौलिक एकता की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का आविष्कार कर लिया था। आज उनकी वे प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियाँ हमारे पास गाथा अथवा पुराण के रूप में सुरक्षित है। वस्तुतः इतिहास के अंधकार युग में वह आदिम मनुष्य ही था, जिसने प्रतीकों की सृष्टि करके भावी मानव सभ्यता की नींव रखी।'[25]

को वाच्य बनाकर अप्रस्तुत की ओर संकेत किया जाता है। यानी, प्रतीक विधान एक ऐसी अभिव्यक्ति शैली है, जिसमें विचारों और अनुभूतियों को सीधे–सीधे वर्णित न करके उनका संकेत किया जाता है और पाठक के मस्तिष्क में अव्याख्यायित प्रतीकों के माध्यम से उनका उद्‌बोधन कराया जाता है।[21] डॉ. नित्यानंद शर्मा ने प्रतीक को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि – अप्रस्तुत, अप्रमेय, अगोचर अथवा अमूर्त्त का प्रतिनिधित्व करने वाले उस प्रस्तुत या गोचर वस्तु–विधान को प्रतीक कहते हैं, जो देशकाल एवं सांस्कृतिक मान्यताओं के कारण हमारे मन में अपने चिर साहचर्य के कारण किसी तीव्रभाव बोध को जागृत करता है।[22]

प्रतीकों का प्रयोग मानव विकास के साथ ही अति प्राचीन है। वेदों में प्रतीक का उल्लेख मिलता है। सृष्टि में मानव का अस्तित्व जब से प्रकाश में आया तब से ही प्रतीकों में अभिव्यक्ति की शुरूआत हुई। भाषा विकास के पूर्व सांकेतिक चिन्हों अथवा हाव–भाव के प्रतीकों के द्वारा आदिम मानव अपनी भावनाओं को व्यक्त करता था। प्रतीकों का निर्माण मानव की मौलिक विशेषता है। उसकी आत्म चेतना के विकास में प्रतीकों का महत्वपूर्ण योग रहता है। मनुष्य ने अपनी भाषा का विकास प्रतीक शक्ति से ही किया है। शिपली की मान्यता है कि भाषा स्वयं ही एक प्रतीक है। प्रत्येक कला एक तरह की भाषा ही होती है। इसका अर्थ हुआ कि प्रत्येक कला एक प्रतीक होती है।[23]

अज्ञेय के अनुसार –'जन साहित्य सदा से और सबसे अधिक प्रतीकों और अन्योक्तियों के सहारे ही अपना प्रभाव उत्पन्न करता है। यह बीज हम संस्कृत में पाते हैं। वेदों से लेकर वाल्मीकि तक और वाल्मीकि से लेकर कालिदास तक भी। संस्कृत से वह शक्ति अपभ्रंशो और फिर लोक साहित्य में चली गयी।'[24] केदारनाथ सिंह ने भी प्रतीकों की प्राचीनता स्वीकार करते हुए लिखा है कि 'प्रतीकों का प्रयोग उतना ही पुराना है, जितना स्वयं समाज। आदिम मनुष्य ने शताब्दियों पहले अपनी मौलिक एकता की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का आविष्कार कर लिया था। आज उनकी वे प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियाँ हमारे पास गाथा अथवा पुराण के रूप में सुरक्षित है। वस्तुतः इतिहास के अंधकार युग में वह आदिम मनुष्य ही था, जिसने प्रतीकों की सृष्टि करके भावी मानव सभ्यता की नींव रखी।'[25]

अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता एवं गहनता का जब प्रश्न उपस्थित होता है, तब अभिधामूलक शब्दावली अपूर्ण प्रतीत होती है। यों वस्तु का विशिष्ट रूप एवं भाव मनुष्य के मस्तिष्क में प्रतीकात्मक रूप में ही उपस्थित रहता है। भाव व्यंजनामें स्थूल यथार्थ से मुक्ति दिलाकर उसे सूक्ष्म व्यंजक शक्ति से भर देने का कार्य प्रतीक करता है। 'प्रतीक विशिष्ट अर्थो में बोध के वे चिन्ह है, जो अपने युग, देश, संस्कृति और मान्यताओं से प्रभावित होने के कारण सन्दर्भानुसार परिवर्तनीय एवं भाव गुणादि से सम्बद्ध सत्य का अन्वेषण करने के लिए प्रयुक्त होते हैं।'[26]

जीवन का क्षेत्र विशद् है, जिसकी अभिव्यक्ति लौकिक तथा आध्यात्मिक रूपों में होती है। काव्य में जीवन के दोनों पक्षों का उद्‌घाटन हुआ है। संतों ने जहाँ कविताओं में आध्यात्मिक प्रतीकों को महत्व दिया है, वहीं अन्य कवियों ने प्रतीकों का लौकिक रूप में उपयोग किया है। 'जब तीव्र अभ्यान्तर अनुभूति चाहे वह भावात्मक हो या कल्पनात्मक–सूक्ष्म और सघन होकर अभिव्यक्ति के हेतु छटपटाने लगती है, तब बाह्य जीवन और पदार्थों के माध्यम से वह साकार हो जाती है तभी बाह्य जीवन के रूप और पदार्थ प्रतीक बन जाते हैं।'[27]

कवियों की अनुभूति या तो दार्शनिक क्षेत्र में भक्ति भावों में रमी है या लौकिक क्षेत्र में प्रेम या करूणा के भावों में अथवा राष्ट्रीयता के भावों में। अतएव हम प्रमुख प्रतीकों को आध्यात्मिक प्रतीक, श्रृंगारिक प्रतीक, करूणा के प्रतीक और राष्ट्रीय प्रतीक इन रूपों में देख सकते हैं। ये या तो शास्त्रीय हैं या भावात्मक। एक ही प्रतीक विभिन्न भावों का प्रतीक बन सकता है। अतः इस प्रकार का वर्गीकरण कुछ विशेष ठोस आधार नहीं पा सकता।'[28]

प्रतीकों का उपयोग विशेष लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही किया जाता है। डॉ. महेन्द्र कुमार के अनुसार – प्रतीक प्रयोग के मुख्यतः तीन प्रयोजन हैं:—

1. भावना को मूर्त्त रूप देने के लिए।
2. कुतूहल और विस्मय उत्पन्न करने के लिए।
3. गोपनीय को दूसरे से गुप्त रखने के लिए।[29]

आचार्य महाप्रज्ञ सन्त हैं, उनका संपूर्ण जीवन अध्यात्म एवं दर्शन का

अद्‌भुत संगम है, जिस कारण उनके भाव, विचार एवं अनुभूति में गहनता है। वे लौकिक जगत के महान् पथ प्रदर्शक भी हैं इसलिए ऋषभायण महाकाव्य में आध्यात्मिक एवं लौकिक जगत से संबंधित विविध प्रतीकों को स्थान मिला है। प्रकृति के उपादान 'प्रतीक' के विशेष सहचर है। पर्वत, नदी, सागर, सरोवर, वृक्ष, पुष्प, आकाश, तारा, सूर्य, चन्द्र, बादल आदि जहाँ अपना आध्यात्मिक अर्थ देते हैं, वहीं लौकिक अर्थ के भी वाहक बनते हैं।

यदि संसार कामनाओं का पुंज है तो अतिक्रमण व्यक्ति की प्रवृत्ति। 'अतिक्रमण' मर्यादाहीनता का दूसरा नाम है। मानव की अतिक्रमण प्रवृत्ति का निरूपण कवि ने 'कामवीचि' प्रतीक से किया है। लहरों (वीचि) में उन्माद होता है, प्रवाह होता है। उफान पर ये लहरें तटबंधों को तोड़ देती हैं, अतिक्रमणकारी भी नीति, नियमों को ताक पर रख देता है, ठीक वैसे ही जैसे 'कामी' पुरूष संपूर्ण लज्जा का परित्याग कर देता है :—

'काम वीचि से उद्वेलित जन देता, ज्यों लज्जा को त्याग।' ऋ.पृ.—27.

एक ही प्रतीक विविध संदर्भों में विविध अर्थ दिशाओं की ओर संकेत करते हैं। यहाँ 'वीचि' प्रतीक से भरत की 'आह्‌लादकारी कल्पना' की अभिव्यकित हुई है।

भाव वीचि माली में सहसा, एक वीचि का नभ में स्पर्श। ऋ.पृ.—214.

व्यक्ति के जीवन में भाव ही मूल है। भावना के अनुरूप ही दृश्य अपना प्रभाव छोड़ते हैं। कवि ने भरत के चिंतन की अभिव्यक्ति, उर्मि, सागर, गागर, सितारा उपमान के द्वारा व्यक्त की है। ये उपमान प्रतीक रूप में अपना अर्थ भी खोलते चलते हैं। पूरी कविता में प्रतीकों के प्रभाव का बहुत ही सहज प्रयोग हुआ है :—

आनन्द—उर्मि उत्ताल भाव—सागर में,
किसने देखा है सागर को गागर में,
द्रुत गति से होगा विकसित राष्ट्र हमारा,
चमकेगा मानव का सौभाग्य—सितारा। ऋ.पृ.—184.

'पथराई आँखों' एवं 'सरिता' प्रतीक उस सयम बहुत सार्थक प्रतीत होता है, जब भरत का आगमन अपने राज्य अयोध्या में होता है। उस समय जनता में एक प्रसन्नता की लहर सी दौड़ जाती है।

'पथराई आँखों में नवजीवन लहरी'
अन्तस् की सरिता हुई प्रवाहित गहरी। ऋ.पृ.–186.

यहाँ 'उदास' तथा 'विषाद' भाव के लिए 'पथराई आँखें' तथा 'हर्ष' एवं 'आह्लाद' के प्रतीक के रूप में 'सरिता' का प्रयोग किया गया है।

'सरोवर', 'शतदल', 'तमस' प्रतीक का प्रयोग परंपरा से होते आया है, जिसका प्रतीकार्थ क्रमशः मन या हृदय, कोमलता तथा अज्ञान या निराशा है। कवि ने उक्त उपमानों का प्रस्तुतिकरण परम्परागत रूप में किया है :–

मन सरवर में जब शतदल खिल जाता है।
तब सघन तमस का आसन हिल जाता है। ऋ.पृ.–186.

तृष्णा व्यक्ति को भटकाती है। वैभव की तृष्णा तो उसकी संपूर्ण चेतना को झकझोर देती है। यहाँ तृष्णा की अभिव्यक्ति ऋषभ के पुत्रों के स्वप्न वृत्त से की गयी है :––

तालाबों का, सरिताओं का, आखिर अंभोनिधि का नीर।
पिया चित्र! फिर भी है प्यासा, तृष्णा का लंबा है चीर। ऋ.पृ.–199.

यहाँ 'तालाब', 'सरिता', 'अंभोनिधि' प्रतीक का प्रयोग तृष्णा के लिए तथा 'चीर' का प्रयोग 'विस्तृत क्षेत्र' के लिए किया गया है। जिस प्रकार उक्त जलाशय क्रम से अपने विस्तृत रूप को व्यक्त करते हैं, उसी प्रकार 'तृष्णा' भी बढ़ते–बढ़ते असीम हो जाती है। यहां तृष्णा के प्रारंभ और चरमोत्कर्ष की अभिव्यक्ति प्रभावशाली है।

'समुद्र' और 'कूप' प्रतीक का प्रयोग प्रारंभ से ही विविध रूपों में होता आया है। पारम्परिक रूप से समुद्र–विशालता या गंभीरता के रूप में तथा 'कूप' सीमित क्षेत्र के रूप में प्रयुक्त होता रहा है। दूत द्वारा 'भरत' एवं बाहुबली की तुलना उनकी उपाधि के साथ उनकी सीमा का रेखांकन करती है :–

चक्रवर्ती चक्रवर्ती, भूप आखिर भूप है।
सिंधु का विस्तार अपना, कूप आखिर कूप है। ऋ.पृ.—239

जल में तरलता है, वात्सल्य में ममता। प्राकारान्तर से ममता भी तरल होती है। उसका स्पर्श कोमल एवं मन में विनय को जन्म देने वाला होता है यदि सलिल से लताएँ, वनस्पतियाँ पल्लवित होती हैं, तो वात्सल्य से श्रद्धायुत प्रेम अथवा मानवता। बाहुबली से युद्ध का कारण स्वयं को मानते हुए भरत सोचते हैं कि :—

वात्सल्य सलिल की धारा यदि बह जाती।
तो विनयबेल का अभिसिंचन कर पाती।। ऋ.पृ.—245.

यहाँ 'सलिल' का प्रयोग 'स्नेह' तथा 'बेल' का प्रयोग खुशहाल जीवन के प्रतीक के रूप में किया गया है।

महाशक्ति के रूप में 'रवि' एवं 'उडुपति' प्रतीक का नवीन प्रयोग प्रशंसनीय है। यह प्रतीक बाहुबली से युद्ध के संदर्भ में भरत के अंतर्द्वन्द्व के साथ उभरता है और परिणाम के रूप में विनाश की ओर संकेत करता है :—

संघर्ष परस्पर रवि उडुपति में होगा,
नक्षत्र और ग्रह तारा का क्या होगा?
नभ की शोभा क्या अविकल रह पाएगी,
शस्त्रों की ज्वाला माला बन पाएगी। ऋ.पृ.—248.

यहाँ 'रवि' और 'उडुपति' के अतिरिक्त नक्षत्र, ग्रह और 'नभ' भी अपना जटिल प्रतीकात्मक अर्थ देते हैं। यहां नक्षत्र ग्रह के रूप में 'सामान्य जन' एवं 'नभ' के प्रतीक के रूप में 'पृथ्वी' का अर्थ ग्रहण करना समीचीन प्रतीत होता है। जिसका स्पष्ट आशय है कि जब दो महाशक्तियाँ (भरत और बाहुबली) आपस में टकराएँगी तब जन धन की हानि के साथ संपूर्ण पृथ्वी पर हिंसा एवं अशांति व्याप्त हो जाएगी।

'रवि', 'तेजस' अथवा 'ज्ञान' का भी प्रतीक हैं। साधनात्मक स्तर पर ज्ञान का प्रादुर्भाव होते ही जीवन की संपूर्ण आसक्तियाँ स्वमेव तिरोहित हो जाती हैं :—

अनासक्ति की प्रवर साधना, बढ़े शुक्ल का जैसे चंद्र,
जल से ऊपर जलज निरंतर, रवि रहता नभ में निस्तंद्र। पृ.–298.

यहाँ 'जल–आसक्ति', 'जलज–अनासक्ति', तथा 'नभ–आध्यात्मिक' परिवेश के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

चरित्र की शुद्धता के लिए 'कमल' उपमान का प्रतीक प्रशंसनीय है। कमल जल में रहते हुए भी उससे ऊपर ही स्थित रहता है। नियोगी का सुंदरी के लिए निम्न लिखित कथन चरित्र की शुद्धता की ओर ही संकेत करता है, जो राजवैभव में पलकर भी विलासभाव से सर्वथा मुक्त है :—

क्षमा करो हे भगिनि देवते! कमलोपम तव अमल चरित्र। ऋ.पृ.–210.

साधनात्मक रूप में 'सूर्य' का प्रतीकात्मक प्रयोग कवि ने अत्यधिक किया है। 'सूर्य' आध्यात्मिक जगत में परंपरा से 'ज्ञान' अथवा 'आलोक' के रूप में प्रयुक्त होता रहा है, जिसकी झलक निम्नलिखित उदाहरणों में देखी जा सकती है :–

– चिदाकाश में चिन्मय रवि का, व्याप्त हुआ अविराम प्रकाश। ऋ.पृ.–207.
– एक रश्मि रवि की कर देती, सघन निचिततम तम का नाश। ऋ.पृ.–207.
– सूर्यविकासी कमल अमलतम, सूर्योदय के सह उन्मेष। ऋ.पृ.–209.
– रश्मिजाल की ज्योति प्रचण्ड, खंड हो गया आज अखण्ड।
ज्ञेय हुआ जो था अज्ञेय मूर्त्त–अमूर्त्त सकल विज्ञेय। ऋ.पृ.–144
– कमल कोश से मधुकण मधुकर, और नहीं अब ले सकता।
रवि अदृश्य उन्मेष नहीं वह, कमलाकर को दे सकता। ऋ.पृ.–113.

उक्त उदाहरण में चित्त–आकाश का। रवि–चैतन्य या ज्ञान का, तम–अज्ञान का, कमल–उत्थान का, कमल कोष आवश्यकताओं की पूर्ति अथवा वैभव के, प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

लौकिक प्रतीक के रूप में 'सूर्य' प्रतीक के साथ अन्य प्रतीकों की छटा देखते ही बनती है – निम्नलिखित उदाहरण में 'सूर्य' चारण के प्रतीक के रूप में भरत का यशोगान करता हुआ प्रतीत होता है :—

'सूरज की उज्जवल किरणों ने, गीत विजय का गाया।' ऋ.पृ.–163.

रत्नो की तेजस्विता 'सूर्य' के प्रतीक के रूप में देखते ही बनती है–

'रत्न प्रवर मणि और काकिणी, सूर्य सदृश्य तेजस्वी।' ऋ.पृ.–165.

'सूर्य' का प्रयोग कवि ने 'सबलता' के लिए और 'बादल' का प्रयोग 'निर्बल जन' के लिए तथा 'धागा' का प्रयोग 'अवरोध' प्रतीक के रूप में कियाहै। युद्ध में भरत की ओर से देवगण मेघमुख को चेतावनी देते हुए युद्ध से विरत कर देते हैं :–

मैत्री का दायित्व निभाया, किंतु सूर्य के आगे,

बादल कब तक बुन सकता है, अंधकार के धागे। ऋ.पृ.–176.

'सूर्य' एवं 'बादल' से संबंधित अन्य उदाहरण भी दृष्टव्य है :–

– बादल रवि के रश्मिजाल से, निर्हेतुक टकराया। ऋ.पृ.–177.

– सूरज के सम्मुख कब घन तम ने देखा ? ऋ.पृ.–179.

– उत्सुकता का सूर्य उदित है, चेता प्रमुदित और प्रशांत। ऋ.पृ.–189.

– अरी रात! तुम क्यों आओगी? उदित हुआ है भू पर सूर्य। ऋ.पृ.–190.

– द्वन्द्व उपस्थित चांद–सूर्य में, यह दोनों हाथों का द्वन्द्व। ऋ.पृ.–197.

उक्त उदाहरण में 'सूर्य', 'बादल', 'तम' और 'चंद्र' का नवीन (प्रयोग) प्रतीक के रूप में प्रयोग हुआ है। यहाँ 'सूर्य', 'महातेज' और 'शक्ति' का प्रतीक है तो बादल अपेक्षाकृत अशक्ति का। तीसरे उदाहरण में 'सूर्य', 'उत्सुकता' के रूप में तथा चौथे उदाहरण में 'पूर्ण प्रकाश' के रूप में उभरा है। सूर्य के साथ चाँद की उपस्थिति 'भाई–भाई' के प्रतीक को मुखर करती है। इस प्रकार पूरे महाकाव्य में 'सूर्य' के साथ अन्य प्रतीक अपना प्रासंगिक अर्थ देते हुए प्रतीत होते हैं।

काव्य में प्रायः पर्वत, निर्झर, मीन, सिंह, चीता, हाथी, मधुकर, मृग, तरू, वानर, कोयल, केका, उद्यान, काँटा आदि का प्रतीकात्मक प्रयोग प्रारंभ से ही होता रहा है। आचार्य महाप्रज्ञ ने आवश्यकतानुसार उक्त प्रतीकों को ऋषभायण महाकाव्यमें परम्परागत एवं नवीन संदर्भो से जोड़ा है जिससे भाव प्रवाह में गहनता आ गयी है, जैसे :–

– शक्ति परम गुरू की गुरू होती, निर्झर गिरि से झरता। ऋ.पृ.–163.

– क्यों जागृत करती हो आज, सुप्त सिंह को हे अधिराज! ऋ.पृ.–142.

– किया पलायन जैसे मृग ने, देख लिया हो चीता। ऋ.पृ.–171.

– पर अचल हिमालय अपनी बात कहेगा। ऋ.पृ.–181.

– हर तरू परिचित सा लगता है पग–पग पर,
परिकर–सा लगता तरू–तरूगामी वानर,
कोयल का कलरव अनजाना–सा प्रण है,
केका का कोई कोमल आमंत्रण है। ऋ.पृ.–185.

– सलिल सुलभ सबको नां कोई, प्यासी है पानी में मीन। ऋ.पृ.–200.

– बड़ा मत्स्य छोटी मछली से, कब करता है मन से प्यार। ऋ.पृ.–201.

– भरत! तुम्हारा कैसा जीवन, तरूवर जैसे शाखा हीन। ऋ.पृ.–211.

– है स्थूलकाय गज किन्तु भीत मृगपति से। ऋ.पृ.–246.

– प्रणत सिंह रथ बोला, यह तो, चींटी पर गज का अभियान। ऋ.पृ.–211.

– कलभ यूथपति गजवर के पद,–चिन्हों पर चलता है नाथ! ऋ.पृ.–266.

– बंधो! उतरो, गज से उतरो, उतरो अब। ऋ.पृ.–294.

उक्त उदाहरण में क्रमशः गिरि–अचलता का, झरना–गति का, सुप्त सिंह–परमानन्द का, मृग–निर्बलता अथवा सीधे–सादे मनुष्य का, चीता–हिंसा अथवा सबल का, अचल हिमालय–गिरिजनों का, तरू, वानर, कोयल, केका–मधुर साहचर्य का, मीन–संतुष्टि का, बड़ा मत्स्य–शक्ति का, छोटी मछली–निर्बलता का, शाखाहीन तरूवर–खण्डित जीवन का, स्थूलकाय गज–शक्ति प्रदर्शन का, मृगपति–शौर्य का, चींटी–तुच्छ अथवा अशक्त जन का, गज–श्रेष्ठता का और पुनः गज–अहंकार के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि नेएक ही उपमान को कई प्रतीकों के रूप में व्यक्त किया है।

'चातक' और 'चकोर' काव्य में 'उत्कट प्रेमी' के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं। आचार्य महाप्रज्ञ ने इनका उपयोग पारम्परिक रूप से करते हुए नवीन अर्थ प्रदान किया है :–

चातक की आशा है भोर! शशधर में अनुरक्त चकोर। ऋ.पृ.–85.

यहाँ 'चातक' एवं 'चकोर' प्रतीक का प्रयोग भरत के लिए तथा 'भोर' एवं 'शशधर' प्रतीक का प्रयोग ऋषभ के लिए किया गया है। पिता के चरणों में पुत्र की आसक्ति स्वभाविक है। इस आसक्ति एवं समर्पण का प्रस्तुतिकरण अनूठा है।

दूसरी ओर युद्ध के परिदृश्य में 'चकोर' और 'चातक' 'चन्द्र' और 'भोर' बाहुबली और भरत के परिप्रेक्ष्य में नया ही अर्थ देते हैं – 'दोनों प्रीतिभाव से नहीं शत्रुभाव से युद्ध के मैदान में एक दूसरे के आमने–सामने होते हैं।' :––

न च चकोर का मिलन चंद्र से, नहीं मिली चातक को भोर। ऋ.पृ.–276.

'चकोर' का 'चंद्र' से और 'चातक' का 'भोर' से प्रीति स्वाभाविक है किन्तु यह भी कैसी विडम्बना है कि प्रेमी अपने प्रियपात्र से नहीं मिल पाते। भरत ज्येष्ठ है और बाहुबली कनिष्ठ। इसलिए यहाँ पर 'चकोर' और 'चातक' के रूप में बाहुबली तथा 'चंद्र' और 'भोर' के प्रतीक के रूप में भरत को रूपायित किया गया है। प्रतीक के क्षेत्र में यह विशुद्धतः नवीन प्रयोग है।

कहीं कहीं तो लोकजीवन में व्यवहृत सामग्री को कवि ने स्वाभाविक रूप से प्रतीकों के रूप में गढ़ा है, वहाँ कवि की दक्षता का लोहा मानना पड़ता है, जैसे :–

विद्या साधित गदा मथानी, चक्री–सेना मंथन पात्र।
किया बिलौना हुआ विलोड़ित, योद्धा गण का उर्जित गात्र। ऋ.पृ.–261.

विद्याधर रत्नारि के युद्ध कौशल का वर्णन है जिसमें गदा को मंथानी, चक्रीसेना को 'पात्र' तथा योद्धाओं के मथित शरीर को बिलौना के प्रतीक से व्यक्त किया गया है। यह 'बिलौना' ही प्रतिपक्षियों के शरीर की वह ऊर्जा है जिसे रत्नारि अपने भंयकर आक्रमण से निःसत्व कर प्राणान्त कर देता है।

जिस प्रकार 'मछली' पानी से बाहर होने पर तड़पने लगती है, वैसे ही बाहुबली की सेना के सामने भरत की सेना व्याकुल है जिसे कवि ने 'जल' से निर्वासित 'मीन' के प्रतीक से व्यक्त किया है। यह प्रयोग परम्परागत है :––

और हमारी सेना प्रभुवर! है जल से निर्वासित मीन। ऋ.पृ.–262.

'बाज' और 'विहग' क्रमशः 'सबल' और 'निर्बल' के प्रतीक के रूप में व्यक्त हुए हैं, यहाँ भरत पुत्र शार्दुल का पराक्रम विवेचित हुआ है :—

'झपटा जैसे बाज विहग पर, किया सुगति के सिर का छेद।' ऋ.पृ.—264.

मनोभावों का विस्तार असीमित है। आक्रोश, करूणा, प्रीति, बैर, श्रद्धा एवं अन्य मनः स्थितियों का भी प्रतीकात्मक वर्णन प्रशंसनीय है :—

'अग्नि के आताप में क्या, फसल बढ़ती है कभी ?
आक भी हिमदाह—बल से, पलक में जलते सभी।' ऋ.पृ.—241.

यहाँ अग्नि का आताप—आक्रोश, फसल—संबंध, आक—धैर्य, हिमदाह—आक्रमण तथा जलना—विनाश के प्रतीक का वाहक है।

'श्रद्धा भाव' से जहाँ सम्बन्ध जुड़ते हैं वहीं 'संशय भाव' से संबंधों में खटाई भी पड़ जाती है :—

श्रद्धा ने हिम के कण—कण को जोड़ा है।
संशय ने मन के कण—कण को तोड़ा है। ऋ.पृ.—245.

आज समाज में दो धाराएँ दिखाई दे रही हैं जिसमें एक है – शोषक और दूसरा है – शोषित। शोषक के प्रतीक के रूप में 'अमरबेल' और शोषित के प्रतीक के रूप में 'वृक्ष' का प्रयोग हुआ है। यह कथन शासक के हवाले से किया गया है जो नीतिगत है :—

– अमर बेल ने आरोहण कर, किया वृक्ष का शोष।
वह कैसा प्राणी जो करता, पर—शोषण, निज पोष।। ऋ.पृ.—80.

– जनता के कंधे पर चढ़कर, चलने का अधिकार न हो।
सहजीवन में अमरबेल बन, फलने का अधिकार न हो। ऋ.पृ.—89.

राजनीति का यह तकाजा है कि वह शासक शासन के योग्य नहीं होता जो जनता को पददलित करता है, यहाँ पर भी 'अमरबेल' प्रतीक से ऐसे शासकों की निन्दा की गयी है :—

मनुज महत्वाकांक्षी पर पर, निज अधिकार जमाता।
अमरबेल—सा शोषक पर की, सत्ता पर इठलाता।। ऋ.पृ.—162.

'समत्व दृष्टि' के रूप में 'पारस' पत्थर का गुणगान हमेशा से होता रहा है। पारस के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है। सूर ने भी लिखा है कि 'पारस गुन अवगुन नहीं, चितवै कंचन करत खरो।'

आचार्य महाप्रज्ञ रत्नकाकिणी के संदर्भ में लिखते है कि –

'पारस का पा स्पर्श लोह की, काया ही बदलेगी।' ऋ.पृ.–170

और :– 'पारसमणि का स्पर्श प्राप्त कर, मिट्टी पुण्य हिरण्य बने।' ऋ.पृ.–44.

यहाँ कवि ने 'पारस' के आधिक्य गुण को व्यक्त किया है। पारस के स्पर्श से 'लोहा' स्वर्ण के रूप में परिवर्तित होता है किन्तु उक्त पंक्ति में 'मिट्टी' को स्वर्ण परिवर्तन के रूप में दिखाकर पारस को विस्तृत प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने कहीं–कहीं संख्यावाची प्रतीकों का भी प्रयोग किया है जो लोकजीवन में आये दिन व्यवहृत होते हैं। युद्ध के परिप्रेक्ष्य में निम्नलिखित कथन प्रयोजनीय है :–

'जय का निश्चय है सबको सोलह आना।
निश्चित होगा सार्थक केसरिया बाना।' ऋ.पृ.–181.

यहाँ 'सोलह आना' परिपूर्ण विश्वास एवं 'केसरिया बाना' शौर्य को व्यक्त करता है, जिसका व्यवहार समाज में परंपरागत है।

उक्त 'प्रतीकों' के अतिरिक्त सामान्य, परम्परागत एवं लोक प्रचलित प्रतीकों का आचार्य महाप्रज्ञ ने खूब प्रयोग किया है, जैसे :–

पशु–(मूर्खता)–शिक्षा–दीक्षा–शून्य मनुज पशु। ऋ.पृ.–68.

छुई–मुई–(मुरझाना)–बनी मनःस्थिति छुई–मुई। ऋ.पृ.–41.

असि को म्यान–(मर्यादित जीवन)

मर्यादा से निश्रित सब जन, प्राप्त हुआ है असि को म्यान। ऋ.पृ.–69

मध्यान्ह–(जीवन का पूर्ण विकास)–बहूत दूर मध्यान्ह है,

प्रभात–(जीवन का प्रारंभ)–चाक्षुष अभी प्रभात। ऋ.पृ.–99.

चिंतामणी–चिंताओं का शमन करने वाली–

धन्य है हम रत्न, चिंतामणि अहो प्रत्यक्ष है। ऋ.पृ.–127.

'समत्व दृष्टि' के रूप में 'पारस' पत्थर का गुणगान हमेशा से होता रहा है। पारस के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है। सूर ने भी लिखा है कि 'पारस गुन अवगुन नहीं, चितवै कंचन करत खरो।'

आचार्य महाप्रज्ञ रत्नकाकिणी के संदर्भ में लिखते है कि –

'पारस का पा स्पर्श लोह की, काया ही बदलेगी।' ऋ.पृ.–170

और :– 'पारसमणि का स्पर्श प्राप्त कर, मिट्टी पुण्य हिरण्य बने।' ऋ.पृ.–44.

यहाँ कवि ने 'पारस' के आधिक्य गुण को व्यक्त किया है। पारस के स्पर्श से 'लोहा' स्वर्ण के रूप में परिवर्तित होता है किन्तु उक्त पंक्ति में 'मिट्टी' को स्वर्ण परिवर्तन के रूप में दिखाकर पारस को विस्तृत प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने कहीं–कहीं संख्यावाची प्रतीकों का भी प्रयोग किया है जो लोकजीवन में आये दिन व्यवहृत होते हैं। युद्ध के परिप्रेक्ष्य में निम्नलिखित कथन प्रयोजनीय है :–

'जय का निश्चय है सबको सोलह आना।
निश्चित होगा सार्थक केसरिया बाना।' ऋ.पृ.–181.

यहाँ 'सोलह आना' परिपूर्ण विश्वास एवं 'केसरिया बाना' शौर्य को व्यक्त करता है, जिसका व्यवहार समाज में परंपरागत है।

उक्त 'प्रतीकों' के अतिरिक्त सामान्य, परम्परागत एवं लोक प्रचलित प्रतीकों का आचार्य महाप्रज्ञ ने खूब प्रयोग किया है, जैसे :–

पशु–(मूर्खता)–शिक्षा–दीक्षा–शून्य मनुज पशु। ऋ.पृ.–68.

छुई–मुई–(मुरझाना)–बनी मनःस्थिति छुई–मुई। ऋ.पृ.–41.

असि को म्यान–(मर्यादित जीवन)

मर्यादा से निश्रित सब जन, प्राप्त हुआ है असि को म्यान। ऋ.पृ.–69

मध्यान्ह–(जीवन का पूर्ण विकास)–बहूत दूर मध्यान्ह है,

प्रभात–(जीवन का प्रारंभ)–चाक्षुष अभी प्रभात। ऋ.पृ.–99.

चिंतामणी–चिंताओं का शमन करने वाली–

धन्य है हम रत्न, चिंतामणि अहो प्रत्यक्ष है। ऋ.पृ.–127.

सितारा–(सौभाग्य)–महापुरूष की जन्म–कुंडली, संगत सभी सितारे।
किनारा–(उपलब्धि)–भाग्योदय की शुभवेला में, मिलते सभी किनारे। ऋ.पृ.–164.

गरल–(त्याज्य), आक्रोश–कर देता निर्वीर्य गरल को,
सुधा–(ग्राह्य), शांति–एक सुधा का प्याला। ऋ.पृ.–165.

प्यासा–(लिप्सा)–सब कुछ पाकर भी मानव मन, रहता प्रतिपल प्यासा। ऋ.पृ.–165.

ध्वज–(राष्ट्रीय गौरव)–विजय–ध्वज फहराओ। ऋ.पृ.–166.

कवच–(सुरक्षा)–अचल अकंप अभेद्य कवच युत शत्रुपक्ष शंकित है। ऋ.पृ.–166.

गुफा तमिस्त्रा–(दुर्गम स्थल)
गुफा तमिस्त्रा का अतिशय दृढ़, द्वार आज तुम खोलो। ऋ.पृ.–167.

माला–एकता–एक सूत्र के आलंबन से, माला मनुज पिरोता। ऋ.पृ.–174.

चुम्बक–आकर्षण–चुम्बक में अपना आकर्षण, लोहा–खिंचता जाता। ऋ.पृ.–177.

दावानल–(विनाश)–क्या दावानल में खिलती, है केशर क्यारी? ऋ.पृ.–180.

(शांति)–केशर क्यारी ऋ.पृ.–180.

नीड़–(आश्रय)–प्रस्तुत की है मन की पीड़ा, आवश्यक पंछी को नीड़। ऋ.पृ.196.

कांटा–(जागृति)–चिरजीवी है चुभन जगत में, कांटा जागृति बन जाता।ऋ.पृ.201.

कूप मंडूक–(सीमित दायरा)–हुआ कूप–मंडूक समान। ऋ.पृ.–255.

पतझड़–(दुख)–पतझड़ का अब अंत हुआ है। ऋ.पृ.–276.

बसंत–(सुख)–देखो कितना रूचिर बसंत। ऋ.पृ.–276.

आग–(क्रोध)–अन्तस्तल में भीषण आग। ऋ.पृ.–285.

दीक्षा–(दृढ़ निश्चय)–दीक्षा लेना शक्य नहीं है। ऋ.पृ.–210.

आचार्य महाप्रज्ञ एक सन्त हैं। संतों की भाषा विशिष्ट प्रतीकों से मण्डित होती है। ये प्रतीक जीव, जगत के संदर्भ में गहन अर्थ देते हैं। 'दर्शन' और 'अध्यात्म' जीवन का एक जटिल पक्ष है जिसकी अभिव्यक्ति हमेशा से प्रतीकों के माध्यम से होती रही है। कबीर, जायसी का साहित्य इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। दर्शन और अध्यात्म के क्षेत्र में आचार्य महाप्रज्ञ भी उनके सामानांतर चलते हुए प्रतीत होते हैं। निम्न उदाहरण दार्शनिक मान्यताओं से पुष्ट है :–

उद्घाटित नव द्वार, पंजर में बैठा विहग,
अद्भुत रस साकार, विस्मय नहीं प्रयाण में। ऋ.पृ.–23.

यहां नवद्वार शरीर के वे स्थान जहां से प्राण का उत्सर्ग होता है। विहग–प्राण, अद्भुत रस–आत्मसाक्षात्कार, आत्मानन्द, प्रयाण–निर्वाण, मृत्यु।

साधना में भाववृत्तियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। भाववृत्तियां जितना ही अंतर्मुखी होती है, चेतना में, ज्ञान में उतना ही निखार आता है, – यही नहीं धरती और अंबर की दूरी भी समाप्त हो जाती है, रहस्य का आवरण उठ जाता है, जैसे :–

अन्तर्मानस की उंगली से, हत्–तंत्री का तार।
झंकृत हो कर देता अभिनव, मंजुलतम झंकार।
धरती अम्बर सहज समीप, जलता है जब चिन्मय दीप। ऋ.पृ.–91.

यहाँ धरती–लौकिक जगत, अम्बर–अलौकिक जगत (ब्रह्मरंध्र), चिन्मय–दीप–ज्ञान के आलोक के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। साधक द्वारा साधना की संपूर्ण श्रेणियों को पार कर लेने के पश्चात् चिन्मयानंद की अनुभूति होती है। कबीर ने 'सहस्त्रार' ब्रह्मरंध्र, सुन्न–महल, सुरति महल, गगन मंडल का प्रयोग पर्याय रूप में ही किया है, जिसकी स्थिति मस्तक में ही है। मस्तिष्क में ज्ञान का चिन्मय–दीप जल जाने पर समत्व दृष्टि के विकास के साथ लोक (धरती) और परलोक (अंबर) का भेद मिट जाता है, लौकिक जगत से अलौकिक जगत में प्रवेश का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

इस प्रकार ऋषभायण महाकाव्य में प्रतीकों की गंगा–जमुना धारा प्रवाहित हुई है। परम्परागत एवं नवीन प्रतीक कवि के अनुभूति सत्य को व्यक्त करते हुए, भाषा के प्रभाव को धारदार बनाते हैं। प्रतीक उक्ति वैचित्र्य के साधन हैं जिससे भावों में चमत्कारिक रूप से वृद्धि होती है। प्रतीकों का विपुल संसार सहजता से महाकाव्य में देखा जा सकता है।

➢ ऋषभायण में रूपक तत्व

डॉ. नगेन्द्र ने रूपक की विस्तृत व्याख्या करते हुए लिखा है कि रूपक के हमारे साहित्य शास्त्र में दो अर्थ हैं। एक तो साधारणतः समस्त दृश्य काव्य को रूपक कहते हैं, दूसरे 'रूपक' एक साम्यमूलक अंलकार का नाम है, जिसमें अप्रस्तुत का प्रस्तुत पर अभेद आरोप रहता है। इन दोनों से भिन्न रूपक का तीसरा अर्थ भी है, जो अपेक्षाकृत अधुनातन अर्थ है और इस नवीन अर्थ में 'रूपक' अंग्रेजी के एलिगरी का पर्याय है। 'एलिगरी' एक प्रकार के कथारूपक को कहते हैं। इस प्रकार की रचना में प्रायः एक द्विअर्थक कथा होती है जिसका एक अर्थ प्रत्यक्ष और दूसरा गूढ़ होता है।.... कथा रूपक में एक कथा का दूसरी पर अभेद आरोप होता है। वहां भी एक कथा प्रस्तुत और दूसरी अप्रस्तुत रहती है। प्रस्तुत कथा स्थूल भौतिक घटनामयी होती है। और अप्रस्तुत कथा सूक्ष्म सैद्धांतिक होती है। यह सैद्धांतिक कथा दार्शनिक, नैतिक, राजनीतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक आदि किसी प्रकार की हो सकती है। परन्तु इसका अस्तित्व मूर्त्त नहीं होता। वह प्रायः प्रस्तुत कथा का अन्य अर्थ ही होता है, जो उससे ध्वनित होता है, किसी प्रबंध काव्य की प्रासंगिक कथा की भाँति जुड़ा हुआ नहीं होता।[30]

'ऋषभायण' महाकाव्य की मूल कथा यौगलिक जीवन का अकर्म युग से कर्मयुग में प्रवेश की कथा है, जिसके केन्द्र में हैं अतीन्द्रिय ज्ञान के स्वामी 'ऋषभदेव'। समाज, शिक्षा, शिल्प, राजनीति, दर्शन, विज्ञान आदि का निस्पृह रूप से विकास एवं स्वस्थ सामाजिक जीवन की रूपरेखा उनकी देन है। इस प्रकार 'ऋषभ' का विराट व्यक्तित्व 'पुरूषार्थ' का प्रतीक है, जिससे 'समता' की स्थापना होती है। इस 'समता' दृष्टि के कारण वे निष्काम भाव से राजा के रूप में अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करते हुए अर्थ, धर्म, काम की संपूर्णता को प्राप्त कर आत्म–साधना के द्वारा 'मोक्ष' का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

जैन धर्म के अनुसार जगत के दो रूप हैं – एक है पदार्थ जगत् और दूसरा है आत्मा का जगत्। पदार्थ जगत् से आशय संसार की उन संपूर्ण वस्तुओं से है जिसका संबंध किसी न किसी रूप में मानव से है। जहां पदार्थ है वहां विषमता है, वहाँ भोग है, वहाँ कलह हैं, वहां आपत्ति है। यानि पदार्थ समस्या

का कारण है, किन्तु आत्मजगत् में मात्र 'समता' का व्यवहार है। 'समता' का संबंध त्याग, अहिंसा, करूणा, चरित्र आदि वृत्तियों से है। ये वृत्तियां 'आत्मा' को परमात्मा के रूप में रूपायित करती हैं। आत्मा का परिष्कृत रूप 'परमात्मा' है जो अमूर्त्त है, जिसकी दिव्य अनुभूति सम्यक ज्ञान, सम्यक दर्शन एवं सम्यक चारित्र्य से की जा सकती है, जिसकी स्थिति बाहर नहीं भीतर ही है। ऋषभ की अन्तर्यात्रा 'आत्मा' की अर्न्तयात्रा है, जहाँ स्थिरता है, आह्लाद है।

कर्म के प्रति आसक्ति कर्म बंधन का कारण है, यह आसक्ति ही बंधन है। इस आसक्ति से मुक्ति कर्म बन्धन से मुक्ति है। 'ऋषभ' अनासक्त भाव से अपने नियत कर्म का संपादन करते हैं इसीलिए वे कर्मबंधन से मुक्त हो आत्मसाधना में लीन हुए। व्यक्ति जब तक 'पदार्थ' को ही सत्य मानता है तब तक वह आत्मा के द्वार तक नहीं पहुंच पाता। विषमताएँ उसका मार्ग अवरूद्ध कर लेती है। इस दृष्टि से 'ऋषभ' में 'पुरूषार्थ' का सांकेतिक अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

ऋषभायण के अन्य पात्र भी मूल अर्थ के साथ अपना सांकेतिक अर्थ देते हैं जिसमें माँ मरूदेवा कर्मबन्ध से मुक्त भक्ति का प्रतीक है। भरत ऐश्वर्य, लिप्सा एवं महत्वाकांक्षा के प्रतीक हैं। बाहुबली अहंकार, ब्राह्मी और सुन्दरी ज्ञान एवं करूणा, अट्ठानबे पुत्र विनयशीलता एवं समर्पण, कच्छ महाकच्छ एवम् साथी अस्थिर मन, नमि–विनमि लोकैषणा, लोकांतिक देव–प्रेरणा, हिमालय–तपोस्थली तथा दिव्य आयुध, विज्ञान के उत्कर्ष का प्रतीक है। उक्त प्रतीकों की संगति बैठाने से मूलकथा का ध्वन्यार्थ होता है कि व्यक्ति जब तक ऐश्वर्य लिप्सा महत्वाकांक्षा के झूले पर झूलता रहता है तब तक उसे जगत का पदार्थ सत्य ही दिखाई देता है। एक का पदार्थ सत्य दूसरे के पदार्थ सत्य को चुनौती नहीं दे सकता। भरत की महत्वाकांक्षा बाहुबली के अंहकार से टकराती है जिसका परिणाम युद्ध, विषमता, अशान्ति एवं कलह होता है किन्तु लोकान्तिक देव की आकाशवाणी की प्रेरणा से बाहुबली का अहंकार शमित होता है, वे मानसिक संघर्ष से मुक्त हो युद्ध से विरत आत्मसाधना के लिए प्रस्थान करते हैं। फिर भी अहंकार का सूक्ष्म रूप उनमें विद्यमान रहता है। 'समत्व' की दृष्टि प्राप्त हो जाने पर उन्हें

'आत्मा' के आह्लादक रूप का साक्षात्कार होता है – साधनालीन बाहुबली को अहंकार से मुक्त करने के लिए ब्राह्मी और सुन्दरी कहती हैं :—

बंधो! उतरो, गज से उतरो, उतरो अब
भूमि की मिट्टी का अनुभव होगा तब,
गज आरोही प्रभु सम्मुख पहुँच न पाता,
आदीश्वर, ईश्वर समतल का उद्गाता। ऋ.पृ.–294.

साधना में अहंकार, मान, मद, मोह, छोटे बड़े का भेद आदि कषाय बाधक है। जब तक भाव जगत परिशुद्ध नहीं होगा, कषायों से मुक्त नहीं होगा, पूर्वाग्रह का थोड़ा भी अवशेष रहेगा, तब तक आत्मा का साक्षात्कार असंभव है। 'समत्व' दृष्टि मिल जाने पर आत्मानन्द की उपलब्धि सहज हो जाती है, दर्शन पथ स्पष्ट हो जाता है :–

आत्मा का दर्शन, दर्शन आदीश्वर का,
साक्षात् हुआ भगिनी का, अपने घर का
सब एक साथ ही दर्शन पथ में आए,
मधुमास मास में कुसुम सभी विकसाए। ऋ.पृ.–296

भरत के शेष अट्ठानबे भाई पिता के प्रति विनयशीलता एवं समर्पणभाव से परिपूर्ण है। भरत की अधीनता संबंधी प्रस्ताव से वे विचलित नहीं होते। वे युद्ध करने में भी समर्थ हैं, किन्तु पिता से दिशा निर्देश आवश्यक है। भरत तो सांसारिक तृष्णा से तृषित है और यह तृष्णा ऐसी है जो व्यक्ति को भटकाती ही रहती है, कभी यह तृप्त नहीं होती। भरत के संबंध में यह कथन कितना सार्थक है जो उसे उन्मत्त किए हुए हैं :—

इतनी नदियों का जल लेकर, नहीं हुआ यह सागर तृप्त।
दर्प बढ़ा है पा पराग रस, मधुकर आज हुआ है दृप्त।। ऋ.पृ.–193.

जहाँ सर्मपण है वहीं भक्ति और जहाँ भक्ति है वहीं मुक्ति। ऋषभ अंगारकार के दृष्टांत से व्यक्ति की अतृप्त इच्छा की ओर संकेत कर 98 पुत्रों को विराट अलौकिक राज्य की ओर उन्मुख करते हैं–जहाँ न कोई द्वन्द्व है और

न युद्ध, वहाँ मात्र 'समता' है, उस राज्य में सांसारिक लिप्सा का कोई स्थान नहीं–

मेरा राज्य विराट् अलौकिक, जहाँ न इच्छा का लवलेश।
युद्ध और संघर्ष विवर्जित, नहीं क्लेश का कहीं प्रवेश।
ममता समता से परिवृत्त है, नहीं दृष्ट सुख–दुख का द्वन्द्व।
रात दिवस का चक्र नहीं है, सारी घटनाएँ निर्द्वन्द्व। ऋ.पृ.–200.

पुरूषार्थ अन्य को भी पुरूषार्थी बनाता है। पुरूषार्थ का कार्य है स्वयं का कल्याण करते हुए जनकल्याण। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इसके सोपान हैं। मन, वाणी, कर्म से समर्पित व्यक्ति ही इस मार्ग पर चल सकता है। अट्ठानबे भाईयों द्वारा अलौकिक मार्ग का वरण इसी समर्पण भाव के कारण हो सका है।

'लोकेषणा' व्यक्ति में बलवती होती ही है। 'नमि' और 'विनमि' अंत तक इस लोकेषणा को त्याग नहीं पाते। युद्ध में पराजित होने के बाद संधि के पश्चात् वे राज्य लिप्सा में ही रत रहते हैं, जिसका आशय यह है कि सामान्य मानव पदार्थ जगत से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाता। परिणामतः संसार के संपूर्ण क्लेशों विषमताओं को भोगता रहता है। उसकी मुक्ति नहीं हो पाती।

कच्छ, महाकच्छ एवं उसके साथी 'अस्थिर मन' अथवा अन्नमय कोष के प्रतीक है। इनमें त्याग का अभाव है। 'भूख' 'प्यास' का सहज त्याग संकल्पवृत्ति से होता है। जिसने भूख, प्यास को त्याग दिया, उसका ही त्याग सांसारिक विकारों से दूर हो सकता है। अत्यागी व्यक्ति साधना पथ पर बढ़ नहीं सकता। किन्तु वह धीरे–धीरे प्रयास करने पर त्यागवृत्ति से पूरित होने पर 'आलोक' पथ का राही बन सकता है। कच्छ, महाकच्छ भी अपने साथियों सहित विलम्ब से ही सही दर्शन पथ की ओर अग्रसर हुए :–

तप की चर्या ने, तापस वर्ग बनाया,
धीमे–धीमे चिंतन, दर्शन बन पाया। ऋ.पृ.–114

जैन दर्शन में 'समता' को अत्यधिक महत्व दिया गया है। 'समता' का अर्थ है आत्मा और आत्मा का अर्थ है 'समता'। जो आत्मा है वह सामायिक है और जो सामायिक है वह आत्मा है। आत्मा को स्वीकार किये बिना 'समता' की

स्थापना संभव नहीं है।[31] कच्छ, महाकच्छ एवं उनके चार हजार साथी 'संकल्प–विकल्प' के प्रतीक हैं। ऋषभ के साथ मुनि बनने का 'संकल्प' उन्हें 'समता' के मार्ग पर ले जाता है किन्तु साधना में भूख–प्यास की पीड़ा उन्हें व्याकुल कर देती है। साधना में भूख और प्यास, मन की चंचलता बाधक है। मन डिगता है, पलायन का भी विचार आता है। अन्ततोगत्वा कंद–मूल, फूल–पत्र को भूख शांति का आधार बनाकर सभी साधना में रत होते हैं। और धीमे–धीमे उनका चिंतन दर्शन बन जाता है।

माँ मरूदेवा संपूर्ण कषायों से मुक्त 'भक्ति' का प्रतीक है। 'भक्ति' से मन अपने आराध्य के प्रति समर्पित होता है। जिस पुत्र के प्रति माँ के मन में अगाध ममता, वात्सल्य का भाव था उसी पुत्र की आभा को देखने पर मन के संपूर्ण विचार तिरोहित हो जाते हैं। वे आत्मस्थ हो जाती हैं। क्षपक श्रेणी में पहुँच जाती हैं। जैन दर्शन में – 'मोक्ष मार्ग की ओर अग्रसर जीवों के मोह कर्म को संपूर्ण रूप से नष्ट करने की प्रक्रिया को क्षपक श्रेणी कहते हैं।'[32] मोह, ममता, लोभ का विनाश होते ही 'समता' का जागरण होता है जिससे मोक्ष अथवा कैवल्य की प्राप्ति होती है।

भरत महत्वाकांक्षा एवं सांसारिक लिप्सा में उन्मत्त वैज्ञानिक संसाधनों (दिव्य आयुध) से परिपूर्ण युद्ध और संघर्ष में रत् है। यह भौतिक सत्य है, जिसे सर्वस्व मान मन उसी में रमण करता है। विश्व का संहार, संबंधो से इंकार की भावना जगत के इसी सत्य को मानने से उत्पन्न होती है। किन्तु इससे शांति नहीं मिलती। शांति के लिए महत्वाकांक्षा, भोग–विलास का शमन आवश्यक है। आत्म चिंतन से उसकी पूर्ति सम्भव है। व्यक्ति जब भीतर देखता है और अपने जीवन में एक–एक कार्यों का चिंतन करता है, तब उसमें बदलाव आना प्रारंभ हो जाता है, आत्मा का द्वार खुल जाता है, बाह्य जगत तब निस्सार लगने लगता है। यह भोग से योग की ओर बढ़ने की प्रक्रिया है। भरत भी भोग से योग की ओर बढ़े।

अस्तु निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि 'ऋषभायण' महाकाव्य में रूपक के द्वारा अनेकान्त दर्शन के आलोक में पदार्थ सत्य के साथ ही साथ 'आत्मा' के सत्य को स्पष्ट किया गया है।

➢ छंद

गद्य व्याकरण के द्वारा शासित होता है और पद्य पिंगल या छंदो द्वारा। 'छंद' शब्द का अर्थ है 'बंधन'। पद्य को रचने के लिए जिन बंधनों की आवश्यकता होती है, उसे छंद कहते हैं और जिस शास्त्र में उसका वर्णन होता है, उसे छंदशास्त्र कहते हैं।

प्राचीन काल से ही कविता पद्यबद्ध होती आयी है। अतः पद्य और कविता एक दूसरे के पर्याय समझे जाते हैं। छन्द, वेदों के छह अंगों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरूक्त, छंद और ज्योतिष) में माना जाता है। छन्दोबद्ध रचना कर्ण सुखद और मुख मधुर तो होती ही है। साथ ही इसे स्मरण रखने में सुगमता होती है।[33] अज्ञेय के अनुसार 'छन्द काव्य–भाषा की आँख है। सामान्य भाषा स्वयं को केवल सुनकर काम चलाती है पर काव्य भाषा स्वयं को देख भी लेती है। पाश्चात्य समीक्षक लैसल्स एबर काम्पी' 'लयात्मक आदर्श की निश्चित आवृत्ति को छंद कहते हैं।'[34] काव्य में छंद सामंजस्य के पर्याय हैं बंधन या विरोध के सूचक नहीं। छंदों में बंधने पर शब्दों के स्वर एक निश्चित स्थान पर आकर बैठ जाते हैं। जिस प्रकार अनुभूति और अभिव्यक्ति एक दूसरे से अभिन्न हैं उसी प्रकार छंद को भी कविता से अलग नहीं देखा जा सकता है।[35] सुमित्रानंदन पंत के अनुसार कविता प्राणों का संगीत है तो छंद हृत्कम्पन। कविता का स्वभाव ही छंद में लयमान होता है। मुक्त कविता की अपेक्षा छंदोबद्ध एवं लयबद्ध कविता का आनंद अधिक होता है क्योंकि उसमें काव्यकला और संगीतकला दोनों ही एकरस होकर आत्मसात् हो जाती है। छंदो का प्रयोग काव्य में प्रेषणीयता को बढ़ाता है, अतः छंद काव्य भाषा का वह संरचनात्मक सहचर है, जो उसे सस्वरता में ढालकर गेय बनाता है।[36] हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार छंद द्वारा साधारण बात में भी एक ऐसी गति आ जाती है, जो मनुष्य के चित्त की अनुवर्तिनी हो उठती है।[37] डॉ. कदम के अनुसार :– 'छंद काव्य के प्रभाव को भावनाग्राही और संवेदनात्मक बनाता है।'[38]

छन्दोबद्ध कविता लयात्मक होती है। उसका नादात्मक सौंदर्य मर्मस्पर्शी होता है। उसकी 'गेयता' राग और अनुराग की रसमय वर्षा करता है। छंद

विधान की दृष्टि से आचार्य महाप्रज्ञ ने ऋषभायण में परंपरागत दोहा, सोरठा, वीर (आल्हा), गीतिका, लावनी, पद्धरि, सहनाणी आदि छंदों का प्रयोग करते हुए नवीन छंदों का सृजन किया है।

'छंद' मात्रा अथवा वर्ण व्यवस्था पर आधारित होते हैं। इनके प्रयोग से कविता की सीमा निर्धारित होती है। कविता का बाह्य सौंदर्य छंद के द्वारा बढ़ता है। लय, नाद एवं राग सौंदर्य में अभिवृद्धि का कारण छन्द होते हैं। आचार्य महाप्रज्ञ ने आवश्यकतानुरूप छंदों का प्रयोग कर काव्य को गेयता प्रदान करते हुये वैचारिक स्थापनाएँ की हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त परम्परागत छंद नवीन भावों की सृष्टि करते हैं :–

दोहा :–

यह अर्द्धसम मात्रिक छंद है, इसके विषम चरणों (पहले–तीसरे) में 13–13 तथा समचरणो में (दूसरे, चौथे) 11–11 मात्राएँ होती हैं। विषम के आरंभ में जगण न रहे। समचरणों के अंत में गुरू लघु होना चाहिए। जैसे :–

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ।
– जैसे–जैसे कार्य का होता है विस्तार (13+11=24)
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ।। ऽ ऽ ऽ ऽ ।
वैसे–वैसे शब्द का बढ़ता है संसार।
।। ऽ।। ।। ऽ । ऽ ऽ । । ।। ऽ ऽ ।
– अभिनंदन सबने किया पाकर नव नेतृत्व।
। । ऽ ऽ ।। ऽ । ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ ।
कुल संचालन में दिखा, पितृतुल्य कर्तृत्व।
ऽ । । ऽ ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । ऽ ऽ ।
– जीवन शैली एक सी सहज तोष–संतोष।
ऽ ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । । । । ।ऽ । । ऽ ।
आकांक्षा न महत्व की सहज मनोमय कोष।
ऽ । । ऽ । ।ऽ ।ऽ । । ऽऽ ऽ ऽ ।
– मंडप की रचना नहीं, न च वेदी का नाम। (13+11=24)

।ऽ ऽ। ऽ ऽ। ऽ ।। ।। ।ऽ ।ऽ।

नहीं साक्ष्य है अग्नि का, सब कुछ अभी अनाम।

।। ऽ ।। ऽ ।।। ऽ ऽ ऽ।।। ।ऽ।

– मन में मन का मिलन ही, है वास्तविक विवाह। (13+11=24)

ऽऽ।। ।। ।। ।ऽ ऽ।। ऽ। ।ऽ।

सामाजिक अब बन रहा, जीवन एक प्रवाह।। ऋ.पृ. 50

सोरठा :–

यह दोहे का उल्टा होता है, इसके विषम चरणों में 11–11 एवं सम चरणों में 13–13 मात्राओं के योग से 24–24 मात्राएँ होती है। इसका प्राचीन नाम सोरठिया दोहा था। इसे सौराष्ट्र वाले पसंद करते थे। इसी से यह सोरठा कहा गया है–

।।।। ।।।। ऽ। ।।।। ऽऽ ऽ ।ऽ

– प्रतिपल गतिमय काल, अगतिक कोई भी नहीं। (11+13=24)

जलनिधि की उत्ताल, लहर निदर्शन बन रही। ऋ.पृ.–22.

।ऽ। ऽऽ ऽ। ।।। ऽ।ऽ ।।। ऽ

– यद्यपि लंबी आयु, अवधि अंततः अवधि है।

रूद्ध प्राणामय वायु, कोशा–प्रजनन का स्थगन। ऋ.पृ.–22.

।ऽ ।ऽ।। ऽ। ऽ।। ऽ ऽ ऽ ।ऽ

– सदा निरामय देह, आमय जन्मा ही नहीं (11+13=24)

दुर्जन मन में स्नेह, दुर्लभ जैसे जगत में। ऋ.पृ.–22.

ऽऽ।। ।। ऽ। ऽ।। ऽ ऽऽ ।।।

– उद्घाटित नव द्वार, पंजर में बैठा विहग।

अद्भुत रस साकार, विस्मय नहीं प्रयाण में। ऋ.पृ.–23.

गीतिका :–

गीतिका के प्रत्येक चरण में 14, 12 मात्राओं के विश्राम से 26 मात्राएँ होती हैं, अंत में लघुगुरू होते हैं। इसका मुख्य नियम यह है कि प्रत्येक चरण

की तीसरी, दसवीं, सत्रहवीं और चौबीसवीं मात्रा स्थान पर लघु वर्ण होना चाहिए। अंत में रगण (ऽ।ऽ) आ जाने से यह श्रवण सुखद बन जाता है :–

।। ।ऽ ।। ।। ।ऽ।। ऽ ।ऽ ।।ऽ। ऽ

– मिल रहे जन–जन परस्पर, हो रहा समवाय है। (14+12=26)

एक चिंतन एक चिंता, एक ही अध्याय है।

ऽ।।। ऽ।। ।ऽऽ ऽ। ।। ऽऽ ।ऽ

कालकृत संस्कृति समस्या, बीज यदि बोती नहीं।

भूमि चिंतन–मनन की यह, उर्वरा होती नहीं। ––पृष्ठ–14.

ऽ। ऽ।। ऽ। ऽ ऽ ।।। ऽ ।।ऽ ।ऽ

– कष्ट केवल कष्ट ही हो, मनुज जी सकता नहीं। (14+12=26)

अग्नितप – अभाव में, मृद् जनित घट पकता नहीं।।

ऽ। ऽ ऽऽ। ऽ ऽ ऽ ।ऽ ऽऽ। ऽ

कष्ट से उद्भूत है ये, रश्मियाँ आलोक की।

रति तिमिर को जन्म देती, मति विकृत परलोक की। ऋ.पृ.–15.

वीर :–

16 और 15 मात्राओं के विश्राम से इसमें प्रत्येक चरण में 31 मात्राएँ होती हैं। अंत में गुरू लघु होता है। इसे 'आल्हा' भी कहते हैं।

ऽ। ।ऽ ऽ।। ।।ऽ ऽ ऽ। ।ऽ ।।ऽ ।।ऽ। (16+15=31)

– मुक्त रहे जो निज ममता से, जाग उठा उनमे ममकार।

कल्पवृक्ष पर लगे जताने, सब अपना–अपना अधिकार। ऋ.पृ.–13.

स्वत्व हरण छीना झपटी का, अतिक्रमण का वेग बढ़ा।

शांति–भंग का, मौन भंग का, सब पर जैसे नशा चढ़ा।। ऋ.पृ.–13.

ऽऽऽ ऽ ऽ।। ।।।। ऽ ऽऽ ऽऽ ।।ऽ। (16+15=31)

– आवेशों का शैशव बचपन, की बेला में है अतिचार।

बढ़े नहीं, इसका चिंतन हो, वर्तमान का हो प्रतिकार। ऋ.पृ.–73.

लज्जा के अनुरूप प्रवर्तित, होता समुचित दंड–विधान।

युग का अपना–अपना मानस, दंड स्वयं मानस–विज्ञान।

पद्धरि :–

इसके प्रत्येक चरण में 16–16 मात्राएँ होती है। 8–8 मात्राओं पर विश्राम होता है।

।।ऽ।। ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।। ऽ। ।ऽ। ।ऽ। ।ऽ

– करूणाकर हे! करूणा करके, इक बार निहार निहाल करो।
यह बंधन है पुर–वास प्रभो! तुम मुक्त हुए सुख से विचरो।
यह भक्ति भरा नभ से उतरा, स्वर है इसमें अब अर्थ भरो।
पुनरागम का कर इंगित हे, जननायक! मानस पीर हरो। ऋ.पृ.–104.

उक्त छन्दों के अतिरिक्त प्रत्येक चरण में समान मात्राओं के छंदों की बहुलता है – जैसे, प्रत्येक चरण में 22–22 मात्राओं का छंद :–

– उत्सुक नयनों में द्रुतप्रतिबिम्बित वाणी। 22
श्री नाभि नाभि से उत्थित वर कल्याणी।
स्वीकृत हो, इस कन्या को ऋषभ वरेगा।
नारी जीवन का नव सम्मान करेगा। ऋ.पृ. 49 से 59 तक। सर्ग15

14–14 मात्राओं से निबन्धित 8–8 चरण वाले छंदो की भी योजना ऋषभायण में हुई है। इसमें गीत तत्व की प्रधानता है।

विजय की माला पहनकर, क्यों पलायन कर रहा है ?
अभय का पहना मुकुट फिर, भीति में क्यों पल रहा है ?
गूढ़ सी बनती पहेली, सत्य पर यह आवरण है,
किस दिशा के छंद लय में, बढ़ रहा आगे चरण है।

ऋ.पृ. 290, ऋ.पृ.–289 से 291 तक

अर्द्ध सम मात्रिक छन्दों का प्रयोग महाकाव्य में प्रचुरता से किया गया है। कहीं–कहीं विषम चरणें में 12–12 एवं सम चरणों में 14–14 तो कहीं–कहीं विषम चरणों में 16–16 एवं सम चरणों में 14–14 मात्राओं से कविता को निबन्धित किया गया है :–

ऽ। ऽ।। ऽ। ऽ ।।ऽ। ऽ ।।ऽ। ऽ

जैसे :– अश्व उत्तम जाति का, मनवेग सा गतिवेग है। (12+14=26)

देव! आरोहण करो, यह भावमय संवेग है। –– ऋ.पृ.–117.

ऽ। ।ऽ ऽऽ। ऽ। ऽ ऽऽ ऽऽ ऽ ऽ।।

– एक बड़ा आधार बोधि का, भाई–भाई में संघर्ष।(16+14=30)

समाधान केवल उदारता, बन सकता है यह आदर्श। ऋ.पृ.–197

15–15 समान मात्राओं के उदाहरण दृष्टव्य है :–

।।। ।ऽ।। ।।ऽ ऽ। ।।ऽ।। ।।।। ।।ऽ।

– प्रकृति मनोहर बहली देश, सुषमामय सुरभित परिवेश।

तक्षशिला नगरी अति रम्य, बाहुबली जनमान्य प्रणम्य। ऋ.पृ.–137.

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने जहां परंपरागत छंदो का प्रयोग महाकाव्य में किया है, वहीं पर समान अथवा असमान मात्राओं से युत छंदों का भी निरूपण किया है। छंद कविता के बाह्य परिधान हैं। इनकी संगति से कविता में सस्वरता, लयात्मकता का पूर्ण रूपेण विकास हुआ है।

पिंगल शास्त्र के अनुसार 'आठ गणों में मगण, नगण, मगण, यगण, शुभगण है और शेष चार (जगण, रगण, सगण, तगण) अशुभ। ऋषभायण महाकाव्य का प्रारंभ 'सलिल सत्य है, तुहिन सत्य है' चरण से होता है। गणनियम के अनुसार 'प्रारम्भिक शब्द 'सलिल' में नगण (iii) है, जो शुभ एवम् फलदायी है।'

➢ सूक्ति

सूक्ति का अर्थ होता है – उत्तम उक्ति या कथन। प्राचीनकाल से ही 'सुभाषित' श्लोक के रूप में सूक्तियों का प्रचलन माना जाता है। ये सूक्तियाँ जीवन के बहुविध पक्षों को सूत्रवत् प्रस्तुत करती हुयी उसके मर्म को रेखांकित करती हैं। डॉ. मीना शुक्ला के अनुसार– 'यदि व्याकरणशास्त्रीय दृष्टि से 'सुभाषित' तथा 'सूक्ति' शब्दों का विवेचन किया जाए तो अर्थ प्रायः एक ही होगा, फिर भी प्रचलन में किसी पूर्ण श्लोक अथवा कुछ वाक्यों के समूह को 'सुभाषित' संज्ञा

से अभीहित किया जाता है और किसी पद्यांश, वाक्यांश अथवा लघु वाक्य को 'सूक्ति' के रूप में माना जाता है। ये सूक्तियाँ अधिकांशतः ऐसे तथ्यों की ओर निर्देशन करती हैं, जो समाजानुरूप मानवों के सदाचरण को द्योतित करने वाली होती है। ऐसी सूक्तियाँ मानवों के लिए दिशा–निर्देशन का कार्य करती हैं। योगवशिष्ठ, धम्मपद आदि में सूक्ति को महान् अर्थ सम्पन्न कहा गया है।'[39]

आचार्य महाप्रज्ञ ने ऋषभायण में ऐसी सूक्तियों को प्रश्रय दिया है जो जीवन के विविध पक्षों को उद्घाटित करती हुयी महत् संकेत देती है। महाकाव्य में प्रयुक्त हुई कुछ सूक्तियाँ निम्नलिखित हैं :–

- घास, घास से दूध, दूध से दधि, दधि से बनता है तक्र। ऋ.पृ.–29.
- तक्र, शक्र को भी दुर्लभ है।
- मूल पुष्ट तो पुष्ट तना। ऋ.पृ.–37.
- विद्या कामदुहा धेनू है। ऋ.पृ.–66.
- अक्षर को गागर में सागर। ऋ.पृ.–66.
- शिक्षा–दीक्षा–शून्य मनुज पशु, शिक्षा है धरती का स्वर्ग। ऋ.पृ.–68.
- परावलंब की प्रवंचना यह, स्वावलंब ही देता साथ। ऋ.पृ.–69.
- डरो न, डरना मरना तुल्य, कर्मभूमि का प्राण कर्म है। ऋ.पृ.–70.
- मंत्र–मंत्रणा से ही होती, संचालन विधियों की खोज। ऋ.पृ.–70.
- निज पर शासन फिर अनुशासन, शासन का यह मौलिक मंत्र। ऋ.पृ.–72.
- मनुज परिस्थिति की कठपुतली। ऋ.पृ.–72.
- जैसा कृत वैसा बनता है, जैसा रस है वैसा स्वाद। ऋ.पृ.–72.
- युग का अपना–अपना मानस। ऋ.पृ.–73.
- बनता है अतीत इतिहास, केवल वर्तमान विश्वास। ऋ.पृ.–77.
- मंथन से मिलता है आज्य। ऋ.पृ.–80.
- बिना शांति के मानव होगा, वस्तु–वस्तु में रक्त ऋ.पृ.–81.
- सब कुछ पाकर भी मानव मन, रहता प्रतिपल प्यासा। ऋ.पृ.–165.
- शाश्वत नियम समाज में भाँति–भाँति के लोग। ऋ.पृ.–87.
- अजितेन्द्रिय शासक विफल, अंकहीन ज्यों शून्य। ऋ.पृ.–88.

- ऊंच नीच का भेद नहीं है, सब नर एक समान। ऋ.पृ.–91.
- चेतना जागृत पुरूष वह, देखता परिणाम को,
  सुप्त मानव पुरूष केवल, देखता है काम को। ऋ.पृ.–97.
- दुष्कर गृह का त्याग है। ऋ.पृ.–99
- तटबंधो के मध्य ही, सरिता का सौंदर्य। ऋ.पृ.–99.
- रोटी से बढ़कर क्या, है जग में शिक्षा। ऋ.पृ.–111.
- सत्ता के मद से कौन नहीं टकराया। ऋ.पृ.–123.
- शब्द का संसार सीमित, अर्थ पारावार है। ऋ.पृ.–127.
- तरू से मिलता है विश्वास। ऋ.पृ.–141.
- कर देता निर्वीय गरल को, एक सुधा का प्याला। ऋ.पृ.–165.
- भाग्योदय की शुभ बेला में, मिलते सभी किनारे। ऋ.पृ.–164.
- माँ बछड़े के पीछे चलती, माता केवल माता है। ऋ.पृ.–149.
- निर्झर का नूतन संदेश। ऋ.पृ.–157.
- खोजा उसने पाया। ऋ.पृ.–168.
- प्रबल प्रेरणा है स्वतंत्रता। ऋ.पृ.–171.
- जन्मसिद्ध अधिकार स्ववशता, परवश नहीं बनेगें। ऋ.पृ.–172.
- नियम–अज्ञ नर में ही पलती, आशा और निराशा। ऋ.पृ.–173.
- आकांक्षा का आकाश–समान मुखौटा। ऋ.पृ.–179.
- संग्रह सत्ता का है विग्रह का आकर। ऋ.पृ.–180.
- अपनी स्वतंत्रता लगती सबको प्यारी। ऋ.पृ.–180.
- नवनीत मिला कब पानी के मंथन से। ऋ.पृ.–181.
- बड़ा मत्स्य छोटी मछली से, कब करता है मन से प्यार ? ऋ.पृ.–201.
- यह जीवन मनुज का, सहज ही संग्राम है। ऋ.पृ.–220.
- 'लोभ बढ़ता लाभ से' यह, सूत्र शाश्वत सत्य है। ऋ.पृ.–229.
- जैसा शासक जनता भी वैसी होती। ऋ.पृ.–245.
- चिंतन धरती पर चलता है फलता है। ऋ.पृ.–245.
- अपने घर को भय उपजा अपने घर से। ऋ.पृ.–249.
- मैत्री से पुलकित मानव ही सुंदर है। ऋ.पृ.–250.

- मानव दुनिया का है सुन्दरतम प्राणी। ऋ.पृ.–250.
- अहंकार का रोग असाध्य। ऋ.पृ.–256.
- कभी नाव में शकट उपस्थित, कभी शकट में होती नाव। ऋ.पृ.–260.
- प्रतिक्रिया से क्रिया, क्रिया से प्रतिक्रिया का नियम अमोघ। ऋ.पृ.–278.

सूक्तियाँ तथ्यात्मक और उक्ति वैचित्र्य मूलक होती हैं। इन सूक्तियों के प्रयोग ने आचार्य महाप्रज्ञ की भाषा में अद्‌भुत व्यंजना शक्ति उत्पन्न कर दी है, जिससे उसमें चमत्कार, वाग्वैदग्ध्य और जीवन के नीति–गत प्रसंगों का सहज समावेश हो गया है।

➢ कवि और काव्य

जैन धर्म के अंतर्गत तेरा पंथ धर्म संघ के दसवें आचार्य श्रीमहाप्रज्ञ का जन्म सन् 1920 संवत् 1977 टमकोर राजस्थान में हुआ। इनके पिता का नाम श्री तोलाराम जी चोरड़िया एवम् माता का नाम बालू जी था। बचपन में वे नथमल प्यार से 'नत्थू' के नाम से पुकारे जाते थे। पिता की छत्रछाया बालक नथमल के सिर से अल्पकाल में ही उठ गई। जिस कारण परिवार की संपूर्ण जिम्मेदारी माँ के कंधों पर ही आ गई। माँ, ममता से परिपूर्ण आध्यात्मिक चेतना से संपृक्त एक श्रद्धालु महिला थी। जिस कारण बचपन से ही बालक नथमल के हृदय व मस्तिष्क में माता की करूणा, श्रद्धा, आस्था, विश्वास तथा दिव्य संस्कारों का बीजारोपण होने लगा।

जिस गाँव में इनका जन्म हुआ वह गाँव शिक्षा, परिवहन की दृष्टि से पिछड़ा हुआ था। यातायात बैलगाड़ी एवं ऊंटों पर आधारित थी। सामान्य जनजीवन संघर्षमय था। बुनियादी शिक्षा का अभाव पूरे गांव के लिए एक जटिल प्रश्न था। ऐसे परिवेश में बालक नथमल उम्र के पायदान पर कदम रखते गये। यह निर्विवाद है कि जीवन में विविध सोपानों में बचपन सबसे सुखद एवं आह्‌लादक होता है। उस अवधि में मस्तिष्क और हृदय इतना पवित्र एवं निर्मल होता है कि उसमें सुसंस्कारों का बीजारोपण आचरण के द्वारा महापुरूषों की कथाओं एवम् प्रचलित

कहानियों के द्वारा आसानी से किया जा सकता है। कहानियाँ सुनना एवं बाल सखाओं के साथ खेलना बालकों की सहजात वृत्ति है, जिज्ञासा उसका सहज स्वभाव है। माँ, बुवा अथवा नौकरानी जब उन्हें कोई कहानी सुनाती तब उनका जिज्ञासु मन कहानी के रहस्य को जानने के लिए बेचैन हो उठता। एक बार नौकरानी कहानी सुना रही थी कि – 'पहले पत्थर भी बोलते थे, घासफूस तिनके भी बोलते थे। गाय, भैंस आदि पशु पक्षी भी मनुष्य की भाषा बोलते थे। फिर एक ऐसा जमाना आया कि सबने बोलना बन्द कर दिया। केवल मनुष्य के पास ही बोलने की शक्ति रह गई।' इस कहानी का उल्लेख आचार्य श्री ने अपने 'आत्मकथ्य' में किया है। उस समय इस कहानी का प्रभाव उस बालमन पर क्या पड़ा? इस संबंध में वे लिखते हैं कि 'इस प्रसंग को सुनकर मेरा बालमन आंदोलित हो उठा। मैंने पूछा–क्या अब पत्थर बोल सकते हैं? क्या गाय अपने दुख–सुख की बात मनुष्य को बता सकती हैं ? इस प्रश्न का उत्तर मुझे नहीं मिला पर मानसिक उद्वेलन ने अज्ञात रहस्य को खोजने की वृत्ति जगा दी, ऐसा स्वीकार करने में मुझे कोई संकोच नहीं।'[40] इस प्रकार उनमें अज्ञात रहस्य को जानने की यह जिज्ञासा बचपन में ही उत्पन्न हो गयी।

जब ये बालसखाओं के साथ खेलते तो उस खेल में भी सत्य का अन्वेषण करते। कभी पानीमें बनने वाले बुलबुले को देखकर उसकी निर्माण प्रक्रिया को जानने का प्रयास करते, तो कभी दहलीज पर लोहे की छड़ के प्रहार से उससे उत्पन्न ध्वनि को सुनने का प्रयास करते। सभी बालचेष्टाओं में उनकी खोजी वृत्ति ही सक्रिय रहती।

संयोग बहुत प्रबल होता है। इतना प्रबल कि न तो उसे टाला जा सकता है और न ही रोका। ये ग्यारहवें वर्ष में कदम रख रहे थे। मन में मुनि बनने की साध थी, माँ साध्वी बनना चाहती थी। संयोग योग में बदल गया। मुनि छबील एवं मुनि मूलचन्द की प्रेरणा से इनके हृदय में भक्ति की अजस्त्र धारा उमड़ पड़ी। परिणाम स्वरूप 29 जनवरी सन् 1931 को सरदार शहर (राजस्थान) में तेरापंथ धर्मसंघ के आठवें आचार्य पूज्यपाद कालूगणी से माता और पुत्र ने विधि–विधान पूर्वक मुनि दीक्षा ली। इस प्रकार बालक नथमल ने मुनि

नथमल के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की।

मुनिमार्ग एक ऐसा मार्ग है जिस पर कोई संयमी या विरागी ही चल सकता है। मनसा, वाचा, कर्मणा द्वारा त्याग इसकी पहली शर्त है। यह सहज मार्ग नहीं है। बिना सांसारिक त्याग के परम सत्ता के प्रति अनुराग असम्भव है। हमारे दिव्यग्रंथ इस बात के साक्षी हैं कि परम सत्ता की ओर बढ़े कदम उम्र की सीमा में आबद्ध नहीं होते। वे कदम तो उम्रातीत होते हैं, भविष्य की चिंता नहीं होती अपितु वर्तमान ही भविष्य को स्वयं में समाहित किए रहता है। माँ ने सम्पत्ति का त्यागकर, त्याग की मिशाल कायम की। इस प्रकार मुनि नथमल अपनी माताश्री के साथ संयम पथ, आध्यात्मिक पथ के अविस्मरणीय पथिक बने।

साधना के क्षेत्र में गुरू का चरमस्थान है। बिना गुरू के ज्ञान नहीं होता। गुरू ही शिष्य को अज्ञान से ज्ञान, असत् से सत् की ओर ले जाता है। जब तक गुरू की कृपा नहीं होती तब तक 'ज्ञान' व 'चैतन्य' का कपाट नहीं खुलता। गुरू तो सतत शिष्य का निर्माण करता है, उसकी आत्मा को निखारते हुए परम सत्ता का साक्षात्कार कराता है। सोते, जागते, उठते, बैठते, सद्वाणी द्वारा गुरू शिष्य को गढ़ता है, तभी तो कबीर को कहना पड़ा :—

गुरू कुम्हार, सिख कुम्भ है, गढ़ि—गढ़ि काढ़ै खोट।
अन्तर हाथ पसार दै, बाहर मारै चोट।।

सौभाग्य से मुनि नथमल को दीक्षागुरू आचार्य कालूगणी की कृपा से सद्गुरू के रूप में आचार्य तुलसी की उपलब्धि हुई यानि स्वाती नक्षत्र की बूंद को 'सीप' मिल गयी। स्वनाम धन्य आचार्य तुलसी का संपूर्ण जीवनदर्शन, संयम, तप, अहिंसा तथा आध्यात्मिक स्फुरण का पर्याय रहा है। ऐसे गुरू के सानिध्य में मुनि नथमल अनुशासन, आत्मानुशासन का पाठ पढ़, उसे समग्र जीवन में आचरित कर उत्तरोत्तर विकासमान होते रहे। जैनेन्द्र ने आचार्य तुलसी की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'आचार्य तुलसी उन महापुरूषों में हैं, जिनके व्यक्तित्व से पद कभी ऊपर नहीं हो पाता। आचार्य तुलसी इतने जीवन्त और प्राणवन्त व्यक्ति हैं कि उस आसन का गुरूत्व स्वयं फीका पड़ जाता है। वेशभूषा से वे जैनाचार्य है, किन्तु आन्तरिक निर्मलता और संवेदन क्षमता से

वे सभी मत और वर्गों के आत्मीय बन सके हैं। मैनें उन्हें सदा जागृत और तत्पर पाया है। शैथिल्य कहीं देखेने में नहीं आया।'[41] ऐसे गुरू के स्नेह एवं वात्सल्य की छत्रछाया में मुनि नथमल ने जैनागम 'दशवैकालिक' से विद्याध्ययन का श्रीगणेश किया। 'दशवैकालिक' की भाषा प्राकृत है। अपने अध्ययन प्रारंभ के संबंध में आचार्य महाप्रज्ञ जी लिखते हैं – 'मेरा अध्ययन बहुत मंथर गति से चला। पूरे दिन में उसके दो–तीन श्लोक कंठस्थ कर पाता था। इस मंथर गति सेमुनि तुलसी भी प्रसन्न नहीं थे और पूज्य कालूगणीभी प्रसन्न नहीं थे। .... थोड़े दिनों बाद वह कठिनाई भी दूर हो गई, मेरी गति तेज हुयी और मैं प्रतिदिन आठ–दस श्लोक कंठस्थ करने लगा। अब सब प्रसन्न थे।'[42]

पूज्य कालूगणी के वात्सल्य एवं गुरू तुलसी के आत्मानुशासन से शनैः शनैः मुनि नथमल के लिए प्राकृत एवं संस्कृत भाषा की जटिलता सहजता में परिवर्तित होने लगी। दर्शन, कविता और विचार अभिव्यक्ति के लिए मचलने लगे। दीक्षागुरू कालूगणी के पट्टारोहण दिवस के पश्चात् जैसे मुनि नथमल के विचारों की गंगा संस्कृत भाषा में प्रवहमान होने लगी।

आचार्य महाप्रज्ञ का साहित्य विराट एवं विपुल है। वे संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी व राजस्थानी भाषा के प्रकाण्ड पण्डित हैं। पैंसठ–सत्तर वर्ष पूर्व जैनाचार्यों की भाषा या तो संस्कृत थी या प्राकृत। ये दोनों भाषाएँ युगानुरूप जनमानस को आंदोलित करने में सक्षम नहीं हो पा रही थी। आचार्य तुलसी इस बात को समझ चुके थे कि हिन्दी भाषा की सुबोधता जनकल्याण एवम् धर्म विस्तार की दृष्टि से उत्प्रेरक होगी। वे अपने शिष्यों से कहते कि 'आज समाज की चेतना को झकझोरने वाला साहित्य नहीं के बराबर है। इस अभाव को पूरा हुआ देखने के लिए अथवा साहित्य व संस्कृति के क्षेत्र में जो शुचिपूर्ण परम्पराएँ चली आ रही है उनमें उन्मेषों के नये स्वस्तिक उकेरे हुए देखने के लिए मैं बेचैन हूँ। मेरे धर्मसंघ में सुधी साधू साध्वियाँ इस दृष्टि से सचेतन प्रयास करें, और कुछ नई सम्भावनाओं को जन्म दें।'[43] गुरू की इस मनोकामना को पूरा करने के लिए मुनि नथमल तथा अन्य साधु–साध्वियाँ हिन्दी भाषा का कोष, सत्य, अहिंसा, त्याग, परमार्थ, ज्ञान तथा परिपूर्ण चारित्र्य से समृद्ध करने लगे।

आचार्य महाप्रज्ञ का संपूर्ण जीवन स्वाध्याय, चिंतन–मनन, साधना का अनुपम उदाहरण है। यही कारण था कि वे मात्र चौबीस वर्ष तक की उम्र में ही साहित्य एवं दर्शन से सम्बन्धित अन्यान्य पुस्तकों का गूढ़ अध्ययन कर सके। अनेकान्त दर्शन ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया इसलिए कोई भी मत अथवा दर्शन उन्हें उद्वेलित नहीं कर सका। वे किसी के 'विरोध' अथवा 'समर्थन' के पचड़े में न पड़, उसकी विशेषताओं को समन्वित करते रहे। आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं कि 'अनेकान्त को पढ़ने के कारण अन्य दर्शनों के प्रति अनत्व का भान नहीं रहा। सत्य, सत्य है फिर उसे किसी भी दर्शन ने अभिव्यक्त किया हो–यही दृष्टि निष्पन्न हुई। अब मेरे सामने दर्शन, दर्शन है, सत्य, सत्य है, अन्य सब भेद गौण है।'[44] आचार्य महाप्रज्ञ तेरापंथ धर्मसंघ के संस्थापक आचार्य भिक्षु के सिद्धांतों से बहुत प्रभावित थे। आचार्य श्री जहां ऋषभदेव, महावीर स्वामी, आचार्य भिक्षु, जयाचार्य, दीक्षागुरू कालूगणी, गुरू श्रेष्ठ आचार्य तुलसी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्रभावित थे, वहीं अपने युग के शक्तिमान विचारक कार्लमार्क्स, रस्किन, टालस्टाय तथा महात्मा गांधी के दर्शन का भी इन पर प्रभाव पड़ा। वे मार्क्स चिंतन की विशेषताओं से आकर्षित थे, न्यूनताओं से नहीं।

आचार्य तुलसी के साथ उन्होंने खूब पद यात्राएँ की, प्रवचन के द्वारा जनमानस का मंथन कर, उसे सद्वृत्ति की ओर मोड़ा। पदयात्रा के दरम्यान प्रकृति के विविध मनोहारी दृश्य एवं समाज की विभिन्न गतिविधियाँ इन्हें प्रभावित करती और वे लेखनी के द्वारा कोरे पन्नों पर उतरती जाती। आचार्य महाप्रज्ञ ने गद्य एवं पद्य दोनों विधाओं में समान रूप से लिखा। संस्कृत एवं हिन्दी उनके लेखन का माध्यम बनी। उनके साहित्य का क्षेत्र विस्तृत है, दर्शन उनका प्रिय विषय है। मुनि दुलहराज ने प्रहाप्रज्ञ के संपूर्ण साहित्य को निम्नलिखित सात विभागों में विभक्त किया है :–

(1) प्रेक्षा साहित्य
(2) भक्ति और विचार
(3) दर्शन और सिद्धांत
(4) विविधा

(5) गद्य–पद्य काव्य

(6) कथा–साहित्य

(7) संस्कृत–साहित्य [45]

'प्रेक्षाध्यान' के संबंध में 'दशवैकालिक' सूत्र में कहा गया है कि 'संपिक्खए अप्पगमप्पएणं'–आत्मा के द्वारा आत्मा की संप्रेक्षा करो, स्थूल मन के द्वारा सूक्ष्म मन को देखो। स्थूल चेतना के द्वारा सूक्ष्म चेतना को देखो। देखना ध्यान का मूलतत्व है। इसलिए इस ध्यान पद्धति का नाम प्रेक्षाध्यान रखा गया।[46] प्रेक्षाध्यान का स्वरूप है अप्रमाद चैतन्य का जागरण या सतत जागरूकता। जो जागृत होता है वही अप्रमत्त होता है जो अप्रमत्त होता है वही एकाग्र होता है। एकाग्रचित्त वाला व्यक्ति ही ध्यान कर सकता है।[47] आचार्य महाप्रज्ञ ने प्रेक्षा साहित्य के अंतर्गत योग और ध्यान की सूक्ष्मातिसूक्ष्म गतिविधियों पर प्रकाश डाला है। इसमें 'कैसे सोंचे ?', 'किसने कहा मन चंचल है ?', 'एकला चलो रे', 'मन के जीते जीत', 'आभामण्डल', 'अवचेतन मन से संपर्क', 'अर्हम्', 'अमूर्त चिंतन', 'अप्पाणं शरणं गच्छामि', 'अनेकांत है तीसरा नेत्र', 'महावीर की साधना का रहस्य', 'जैनयोग', 'सोया मन जग जाए', 'अभय की खोज', 'समाधि की खोज', 'समाधि की निष्पत्ति', 'मेरी दृष्टि मेरी सृष्टि', 'प्रेक्षाध्यान–श्वासप्रेक्षा', 'प्रेक्षाध्यान और कायोत्सर्ग', 'ध्यान और कार्योत्सर्ग'–आदि रचनाएं प्रमुख एवं सर्वोपयोगी सिद्ध हुयी है।

'व्यक्ति' और 'विचार' के अन्तर्गत आचार्य महाप्रज्ञ ने जैन दर्शन से सम्बन्धित महान विभूतियों के जीवन दर्शन से समग्र मानव जाति को परिचित कराया है, जिसमें 'श्रमण महावीर', 'भिक्षु विचार दर्शन', 'प्रज्ञापुरूष जयाचार्य', 'धर्मचक्र का प्रवर्तन', 'आचार्य श्री तुलसी–जीवन और दर्शन', आदि कृतियाँ मुख्य हैं। आचार्य महाप्रज्ञ के जीवन पर उक्त महापुरूषों का अन्यतम प्रभाव पड़ा। स्वामी महावीर संपूर्ण जैन दर्शन के मूल में है वे चौबीसवें तीर्थंकर के रूप में ख्यात् ध्यान और तप के प्रतीक पुरूष हैं। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दृष्टि और सम्यक् चारित्र्य उनके तत्व चिंतन का मूलमंत्र है। आचार्य भिक्षु 'तेरापंथ धर्म संघ' के संस्थापक हैं। 'तेरापंथ' की स्थापना में उन्हें अनेक संघर्षों एवं विरोधों का सामना करना

पड़ा, किन्तु वे धुन के पक्के थे, रंचमात्र भी विचलित नहीं हुए। सत्य, अहिंसा एवं आचरण की शुद्धता जीवन के उत्थान के लिए वे आवश्यक मानते थे। वे कवि और महान् साहित्यकार के रूप में भी प्रतिष्ठित थे। आचार्य भिक्षु के तत्वदर्शन से अधिक प्रभावित होने के कारण ही आचार्य महाप्रज्ञ ने उसकी बारीकियों की स्थापना 'भिक्षु विचार दर्शन' में की है।

'जयाचार्य' तेरापंथ धर्मसंघ के चौथे आचार्य थे। आप एक स्थिर योगी के रूप में विख्यात रहे हैं। आगम ग्रंथों के अतिरिक्त स्तुति, दर्शन, न्याय, छंद, व्याकरण, ध्यान–योग जैसे विविध विषयों के आप महापण्डित थे। विरोधी व अविरोधी दोनों समान रूप से आपकी प्रतिभा का सम्मान करते थे। एक अन्य मतावलम्बी ने जयाचार्य के सम्बद्ध में कहा था कि – 'जिस संघ में ऐसे विचारवान स्थिर योगी मुनि विद्यमान है, उस संघ की नींव को कम से कम 100 वर्ष तक कोई हिला नहीं सकती।'[48]

आचार्य तुलसी 'तेरापंथ धर्मसंघ' के नौवें गुरू थे। आपकी प्रतिभा प्रखर थी। साम्प्रदायिक सद्भाव, नारी जागरण, संस्कार, निर्माण, रूढ़ि उन्मूलन एवं सामाजिक बुराईयों के बहिष्कार हेतु आप जीवनपर्यन्त सक्रिय रहे। अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान एवं जीवन विज्ञान की त्रिधारा मानवमात्र में नैतिक, मानसिक और उसमें संपूर्ण व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक है। ऐसे महान संत एवम् गुरू की वैचारिक धारणाओं से सम्पोषित आचार्य महाप्रज्ञ ने उनके त्रय सिद्धांतों का प्रचार–प्रसार करते हुए उसे राष्ट्र की शक्ति और अखण्डता के लिए आवश्यक माना है।

जैन दर्शन और सिद्धांत से सम्बन्धित कृतियों में आचार्य महाप्रज्ञ ने जैन दर्शन के मूलतत्वों की व्याख्या वर्तमान चिंतन धाराओं के संबंध में किया है, जिनमें 'जैन धर्म मनन और मीमांसा', 'जैन न्याय का विकास', 'सत्य की खोज', 'अनेकांत के आलोक में', 'कर्मवाद', 'मनन और मूल्यांकन', (प्रवचनों का लघुसंग्रह), 'अहिंसा तत्व दर्शन', 'अहिंसा की सही समझ', 'अहिंसा और उसके विचारक', 'जैन दर्शन के मौलिक तत्व', 'जैन परम्परा का इतिहास', 'जैन तत्व चिंतन', 'जैन धर्म दर्शन', 'जैन–दर्शन में आचार–मीमांसा', 'जैन दर्शन में ज्ञान–मीमांसा', 'जैन दर्शन में तत्व मीमांसा', 'जीव–अजीव', 'बीज और बरगद', 'अणुव्रत दर्शन', राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय

समस्याएँ और अणुव्रत, 'नैतिक पाठमाला' आदि कृतियाँ मुख्य हैं।

विविधा के अन्तर्गत आचार्य महाप्रज्ञ के विविध विषयों पर प्रवचन संग्रहित हैं। आचार्य महाप्रज्ञ की वक्तृत्व क्षमता अद्‌भुत एवं पारदर्शी है। वे जिस भी वर्ग को संबोधित कर रहे होते हैं, उनके एक–एक शब्द उस वर्ग से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर्मन को स्पर्शित करते हैं। उनकी विनम्रवाणी की अमृत धार मन के कालुष्य, विभ्रम अथवा मिथ्या को प्रक्षालित कर सत्य को उद्‌घाटित करती है। इस संबंध में मुनि दुलहराज लिखते हैं कि 'युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ कभी दार्शनिक विषयों पर प्रवचन करते हुए विद्वद मंडली को संबोधित करते हैं, तो कभी सामान्य विषयों पर जनसाधारण के बीच बोलते हैं। कभी वे शिक्षक और विद्यार्थियों को उद्‌बोधित करते हैं, तो कभी राजनयिकों और राज्याधिकारियों को दिशा निर्देश देते हैं। कभी महिलाओं को उनके कर्त्तव्यों से परिचित कराते हैं, तो कभी युवकों को दायित्व बोध की अगति देकर अध्यात्म में पुरूषार्थ के विस्फोट की बात करते हैं।'[49] अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चार पुरूषार्थ हैं। मोक्ष अध्यात्म की पराकाष्ठा है। पुरूषार्थ एक सात्विक कर्म है, जिसमें 'सद्' की संपूर्ण सत्ता है। जगत् का उन्मेष, जीवन का आनंद, आत्मा की परिशुद्धि पुरूषार्थ का हेतु है। दिव्य संदेशों से मण्डित आचार्य महाप्रज्ञ के प्रवचन 'घट–घट दीप जले', 'मैं : मेरा मन मेरी शांति', 'विचार का अनुबंध', 'समस्या का पत्थर', 'अध्यात्म की छेनी', 'तुम अनंत शक्ति के स्त्रोत हो', 'नैतिकता का गुरूत्वाकर्षण', 'तट दो प्रवाह एक', 'तेरापंथ शासन अनुशासन', 'धर्म के सूत्र', 'हिन्दी जनजन की भाषा', 'बालदीक्षा पर मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण', 'विसर्जन', 'समाज व्यवस्था के सूत्र', 'संभव है समाधान' आदि कृतियों में संग्रहित है।

यदि निबंध गद्य की कसौटी है तो कल्पना, अनुभूति और भाव पद्य की। निबंध में तथ्य को सत्य की कसौटी पर कसा जाता है, तो कविता में अनुभूति व कल्पना के सहारे जीवन के उच्चमार्ग को व्यक्त किया जाता है। एक में बुद्धितत्व की प्रधानता है तो दूसरे में हृदय की। एक में विचार है तो दूसरे में भाव। आचार्य महाप्रज्ञ के काव्य में इन दोनों तत्वों की प्रधानता है। लेखक जब विचार, दर्शन की गुत्थियों को सुलझाते–सुलझाते थक जाता है तब मानसिक आह्‌लाद हेतु

उसमें भीतर का कवि मुखरित हो उठता है। आचार्य श्री का प्रिय विषय है चिंतन, मनन एवम् दर्शन। इसलिए उनके काव्य में 'दर्शन' का अद्‌भुत सांमजस्य मिलता है। कविता सृजन के संबंध में महाप्रज्ञ जी लिखते है 'कविता मेरे जीवन का प्रधान विषय नहीं है। मैंने इसे सहचरी का गौरव नहीं दिया। मुझे इससे अनुचरी का समर्पण मिला है। मैंने कविता का आलंबन तब लिया, जब चिंतन का विषय बदलना चाहा। मैंने कविता का आलंबन तब लिया, जब दार्शनिक गुत्थियों को सुलझाते–सुलझाते थकान का अनुभव किया।'[50] प्रायः कवियों के लिए कविता 'सहचरी' के रूप में ही अभिव्यक्त हुयी है, उसे अनुचरी के रूप में कोई संत ही स्वीकार कर सकता है। इसीलिए महाप्रज्ञ की कविता पाठक या श्रोता का वैचारिक मंथन करती है। उन्होंने गद्य काव्य के रूप में 'अनुभव चिंतन मनन', 'गूंजते स्वर बहरे कान', 'बंदी शब्द : मुक्त भाव', 'भाव और अनुभाव', 'विजय के आलोक में', 'विजय यात्रा', 'अग्नि जलती है' आदि कृतियों की रचना की। 'फूल और अंगारे' उनकी छन्दोबद्ध कविताओं का संग्रह है तो 'नास्ति का अस्तित्व' लघु काव्यकृति। महाकाव्य के रूप में 'ऋषभायण' उनकी सर्वोत्तम कृति है। इस महाकाव्य में आदि तीर्थंकर ऋषभदेव के जीवन चरित, कार्य एवं प्रदेय का सांगोपांग वर्णन किया गया है। 'लोक' और 'अध्यात्म' का इसमें अद्‌भुत सामंजस्य है। ऋषभायण की निर्माण प्रक्रिया पर आचार्य श्री लिखते हैं कि 'इसका निर्माण एक विशेष कल्पना के साथ हुआ इसलिए यह न केवल विद्वद योग्य है और न केवल जनभोग्य, यह दोनों की मनोदशा का स्पर्श करने वाला है। .... इस महाकाव्य में कथावस्तु की सरलता, व्याख्यान की शैली का अनुभव करा रही है और रसात्मकता काव्य की शैली का अनुभव करा रही है। अभिधा व्याख्यान का आनंद दे रही है। लक्षणा और व्यंजना काव्य का आस्वाद करा रही है।'[51]

आचार्य महाप्रज्ञ की कथा–साहित्य में भी गहरी पैठ है। 'गागर में सागर' उनकी लघुकथाओं का संग्रह है। इनकी कहानियां मर्मस्पर्शी हैं। 'निष्पत्ति' लघु उपन्यास है जिसमें लेखक का अहिंसात्मक दृष्टिकोण स्पष्ट हुआ है।

आचार्य श्री संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ हैं। संस्कृत–साहित्य में 'अश्रुवीणा', 'रत्नपाल चरित', 'अतुलातुला', 'मुकुलम्' आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। मंदाक्रांता

छंद में निबन्धित 'अश्रुवीणा', एक खण्ड काव्य है। इसकी कथावस्तु 'जैनागम' में प्रचलित महावीर स्वामी एवं चन्दनबाला की जनश्रुति पर आधारित है। कथा के अनुसार एक दुराचारी द्वारा राजकुमारी वसुमती (चन्दना) का अपहरण कर कौशाम्बी के एक सेठ के हाथ बेच दिया जाता है, जहां सेठानी के द्वारा उसे मानसिक, शारीरिक यंत्रणा दी जाती है। संयोग से महावीर स्वामी अपना 'अभिग्रह' पूरा करने के लिए आते हैं, जिन्हें देख चन्दना प्रफुल्लित हो उठती हैं। वहाँ अभिग्रह पूरा होने की सारी स्थितियाँ थी, किंतु चन्दना की आँखों में आँसू नहीं थे। भगवान बिना भिक्षाग्रहण किये ही वापस चले गए जिससे चन्दना का अन्तःमन विलाप करने लगा। आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। अश्रुप्रवाह से भगवान चन्दना की ओर अभिमुख हो उसके हाथ से उबले हुए उड़द के दानों को ग्रहण कर अपना अभिग्रह पूरा किया। इस प्रकार 'अश्रुवीणा' में चंदना का अश्रु ही प्रस्तुत काव्य का प्रतिपाद्य है। जिन भावों को वाणी के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता वे भाव आँसुओं द्वारा व्यक्त हो वेदना के एक–एक रूप को व्यक्त कर देते हैं। आंसुओं में तरलता है इसीलिए उसमें भावाभिव्यक्ति की सघनता है। चन्दना के आँसू जहाँ महावीर स्वामी के प्रति भक्ति एवम् समर्पण के 'आँसू' हैं वहीं उसकी करूण स्थिति के भी आँसू हैं, जिसमें उसका परिस्थिति जन्य जीवन डूबा हुआ है। इस खण्डकाव्य में चन्दना की भक्ति तथा महावीर स्वामी की उदारता, करूणा, तपस्या एवं नारी जगत के प्रति उनकी असीम कृपालु संवेदना का वर्णन प्रशंसनीय है।

'रत्नपाल चरित' जैन पौराणिक आख्यान पर आधारित खण्डकाव्य है। इसमें कुल पांच सर्ग हैं, जिसमें शक्रपुर के राजा रत्नपाल के बालपन से लेकर मुनि बनने तक की कथा वर्णित है। 'रत्नपालचरित' की नायिका राजकुमारी रत्नवती है, जो रत्नपाल से प्रेम करती है, उसके वियोग में वह अभितप्त है। जंगलों में विचरण करती हुयी वह अपने प्रिय का पता पेड़–पौधों से पूछती है। संयोग से मुनि बने रत्नपाल के उपदेश से रत्नवती 'साध्वी' हो जाती है। जीवन ही बदल जाता है। इस प्रकार 'लौकिक' जगत के आकर्षण से प्रारम्भ काव्य का उद्देश्य 'अलौकिक' जगत का निदर्शन है। वस्तुतः सांसारिक प्रेम का अलौकिक जगत की ओर मार्गान्तरीकरण ही वास्तविक प्रेम है।

'सम्बोधि' का भी मूलाधार है 'जैनागम'। इसे विद्वानों द्वारा जैनपरम्परा की गीता माना गया है। यदि गीता–दर्शन में ईश्वरार्पण की भावना का प्राबल्य है तो जैन दर्शन में आत्मार्पण की महिमा है। इसमें आदि से अन्त तक आत्मा की परिक्रमा करते हुए चलने का निर्देश है। गीता और संबोधि की भावभूमि में समानता है। आचार्य श्री ने लिखा है कि 'गीता का अर्जुन कुरूक्षेत्र के समरांगण में क्लीव होता है, तो संबोधि का मेघकुमार साधना की समरभूमि में क्लीव बनता है। गीता के गायक योगीराज कृष्ण है और संबोधि के गायक हैं श्रमण महावीर। अर्जुन का पौरूष जाग उठा, कृष्ण का उपदेश सुनकर और महावीर का उपदेश सुनकर मेघ कुमार की आत्मा चैतन्य से जगमगा उठी। दीपक से दीपक जलता है। एक का प्रकाश दूसरे को प्रकाशित करता है। मेघकुमार ने जो प्रकाश पाया वही प्रकाश व्यापक रूपसे संबोधि में है।'[52]

आचार्य महाप्रज्ञ मात्र दार्शनिक, लेखक अथवा कवि ही नहीं है, अपितु वे आशुकवि भी हैं। आशुकवित्व की शक्ति विरले लोगों में ही होती है। 'अतुला–तुला' मुक्तक काव्य उनकी आशु कवित्व, समस्यापूर्ति का प्रकृष्ठ उदाहरण है। एक सन्त होने के नाते आचार्य श्री स्थान–स्थान का परिभ्रमण कर अपने दिव्य प्रवचनों से जनमानस का संस्कार करते रहे हैं। विद्वद सभाओं में आपकी उपस्थिति तथा अकस्मात् दिये गये विषयों पर तत्काल संस्कृत में कविता की प्रस्तुति सराहनीय रही है। उन्होंने श्रवणबेलगोल (कर्नाटक) में बाहुबली की मूर्ति के समक्ष आशु कवित्व करते हुए अपनी मेधा का परिचय दिया था, जिसका कुछ अंश दृष्टव्य है :–

स्वतन्त्रतायाः प्रथमोऽस्ति दीपः
न तो न वा यत् स्खलितः क्वचिन्न
त्यागस्य पुण्यः प्रथमः प्रदीपः
परम्पराणां प्रथमा प्रवृत्तिः
समर्पणस्याद्य पदं विभाति,
विसर्जनम् मान पदे प्रतिष्ठम्।
शैलेश शैली विद्धत स्वकार्ये,
शैलेश एष प्रतिभाति मूर्त्तः।[53]

समस्यापूर्ति में भी आचार्य महाप्रज्ञ सिद्धहस्त हैं। 'सिंदूरविन्दुर्विधवा ललाटे' पंक्ति पर समस्या पूर्ति करते हुए कवि श्री ने कहा :—

सिंदूर विन्दुर्विधवा ललाटे,
गंगाम्बु गौरे कृत विदुमेर्ष्यः।
स्वंरक्तिमानं, नयने मुखेऽपि,
द्रष्टुः स्मयः किं प्रतिबिम्ब येत्तत।[54]

तिलक विद्यापीठ पुणे एवं बनारस संस्कृत महाविद्यालय में समस्यापूर्ति हेतु आचार्य श्री को जो विषय दिया गया उसकी बानगी उनके 'आत्मकथ्य' में देखी जा सकती है।[55]

'मुकुलम्' संस्कृत के लघु निबंधों का संकलन हैं। इसमें कुल 49 निबंध संग्रहित हैं, जो भावनात्मक, संवेदनात्मक एवं विचारात्मक कोटि के हैं। यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिए विशेषतः उपयोगी है।

'तुलसी मंजरी' प्राकृत व्याकरण से सम्बन्धित रचना है। इसे प्राकृत व्याकरण को सहज एवं बोधगम्य बनाने हेतु लिखा गया है।

इस प्रकार आचार्य महाप्रज्ञ के साहित्य का क्षेत्र विस्तृत है। उनके प्रत्येक विचार का समापन दर्शन से होता है। अनेकांत–दर्शन का प्रभाव उन पर विशेष है, इसलिए किसी भी दर्शन या धर्म से उनका कोई विरोध नहीं। जहाँ भी उन्हें सत्य दिखा, वहाँ उनका आकर्षण बढ़ा। वे किसी 'वाद' में नहीं पड़े और न ही किसी वाद पर उनका विश्वास था। उन्होनें स्पष्ट शब्दों में घोषणा की :–

वाद लेकर तुम चलो वह डगमगाता सा लगेगा।
हार्द लेकर तुम चलो वह जगमगाता सा लगेगा।
चपलता को जोड़ देखो, सत्य अस्थिर सा लगेगा।
चपलता को छोड़ देखों, सत्य सुस्थिर सा लगेगा।[56]

महान संत हमेशा युग जीवन को अपने चरित्र से प्रभावित करते रहे हैं। यदि कहीं प्रेम देखा तो हृदय पुलकन से भर गया, और यदि कहीं शोषण देखा तो मन उबल पड़ा। मानव द्वारा मानव का शोषण मानवता पर बहुत बड़ा

कलंक है, बहुत बड़ी हिंसा है। महाप्रज्ञ जी मानवता के उपासक हैं। मानवता अहिंसा का ही पर्याय है, जिसका संस्थापक स्वयं मानव ही है और यदि इस सृष्टि को किसी भगवान ने बनायी है, तो क्या उसने ही शोषक और शोषित को बनाया। यदि हाँ तो महाप्रज्ञ जी भगवान की सत्ता के समक्ष एक विकट प्रश्न खड़ा करते हैं, जिसका कोई उत्तर नहीं :–

यदि मैं भगवान होता
तो इस धरती पर एक भी आदमी बुद्धिमान नहीं होता
क्या सर्वव्यापी प्रभु
सृष्टि इसलिए रचता है कि–
बुद्धिमान, बुद्धिहीन का शोषण करता रहे।[57]

इस प्रकार निष्काम भाव से आचार्य महाप्रज्ञ मनसा, वाचा, कर्मणा अपनी लेखनी एवं प्रवचन के द्वारा मानवता के मार्ग को प्रशस्त करते रहते हैं। ऐसे सन्त किसी भी राष्ट्र की अमूल्य धरोहर है। वे केवल जैनधर्म के ही अनुयायी नहीं है, वे तो विश्व मानव धर्म के पुरस्कर्ता हैं। ऐसे कविर्मनीषी को शत् शत् वन्दन।

➢ काव्य का लक्ष्य

जब कोई कवि किसी काव्य अथवा महाकाव्य की रचना में प्रवृत्त होता है तब उसका कोई न कोई महत उद्देश्य होता है। मानव की प्रत्येक प्रवृत्ति हेतु मूलक होती है, और यही हेतु उसे कार्य के लिए प्रवृत्त करता है। जिस लक्ष्य को ध्यान में रख कर कवि काव्य का सृजन करता है, वह लक्ष्य ही उसका प्रयोजन होता है। साहित्य का जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जीवन विकास के क्रमिक सोपान हैं। इस चतुर्वर्ग की प्राप्ति जीवन का परम लक्ष्य है। इसलिए काव्य का प्रयोजन भी चतुर्वर्ग की प्राप्ति है। भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों ने काव्य प्रयोजन की विशद व्याख्या की है और माना है कि प्रत्येक कवि अपने जीवन के किसी न किसी लक्ष्य को पूरा करने के लिए काव्य का सृजन करता है। कुछ 'यश' की कामना करते हैं, तो कुछ अर्थ की, कुछ

धर्म की कामना करते हैं तो कुछ मान प्रतिष्ठा की, कुछ लोक कल्याण में प्रवृत्त होते हैं तो कुछ 'स्वान्तः सुखाय' में। अपनी–अपनी रूचि और भावनानुरूप ही कवि काव्य का सृजन करते हैं।

आचार्य भरत मुनि ने नाट्य शास्त्र में काव्य प्रयोजन के संबंध में लिखा है कि :–

धर्म्य यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धि विवर्द्धनम्।
लोकोपदेश जननं नाट्यमेतद भविष्यति।

अर्थात् नाट्य धर्म, यश और आयु का साधक, हितकारक बुद्धि का वर्धक तथा लोकोपदेशक होता है। आचार्य भामह ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, प्रीति (आनन्द) तथा कीर्ति को काव्य का प्रयोजन माना है। उनके अनुसार :—

धर्मार्थ काम मोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्ति प्रीति च साधु काव्य निबन्धनम्।।[58]

आचार्य वामन ने 'काव्यं सट् दृष्टादृष्यर्थं प्रीति कीर्ति हेतुत्वात्' कथन से काव्य के दृष्ट प्रयोजन में प्रीति अथवा आनंद और अदृष्ट प्रयोजन में 'कीर्ति' अथवा 'यश' को माना है। आचार्य रूद्रट के अनुसार काव्य का प्रयोजन 'यश' विस्तार है। कुन्तक ने काव्य का प्रयोजन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से बढ़कर परमानन्द की प्राप्ति माना है :–

चतुर्वर्ग फलास्वावमप्यतिक्रम्य तदृिदाम।
काव्यामृतर सेनांन्तश्चत्मकरो वितन्यते।।[59]

आचार्य मम्मट ने काव्य प्रयोजन की विस्तृत व्याख्या करते हुए लिखा है कि :–

काव्य यशसेऽर्थकृते व्यवहार विदे शिवेतर क्षतये।
सद्यः पर निर्वृतये कान्ता सम्मित तयोपदेशयुजे।।[60]

अर्थात् यश, धन, व्यावहारिक ज्ञान की उपलब्धि, अशिव की क्षति (लोकहित), अलौकिक आनंद की प्राप्ति और कान्ता सम्मति उपदेश काव्य के प्रयोजन हैं।

रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि भिखारीदास ने काव्य का प्रयोजन निम्नलिखित कविता के द्वारा स्पष्ट किया है :–

एक लहै तप पुंजन के फल, ज्यों तुलसी अरू सूर गोसाई।
एक लहै बहु संपत्ति केशव, भूषण ज्यों बर वीर बड़ाई।।
एकन्ह को जस ही सो प्रयोजन, हैं रसखानि रहीम की नाई।
दास कवितन्ह की चर्चा, बुद्धिवन्तन को सुख दै सब ठाई।।

मम्मट की भाँति भिखारीदास ने भी काव्य का प्रयोजन चतुर्वर्ग की प्राप्ति (तप पुंजों का फल), सम्पत्ति, यश और आनंद को माना है।

काव्य का उद्‌देश्य महत् होता है। यदि लोकमंगल की धारणा से काव्य का सृजन होता है। तो वही काव्य अक्षुण्ण एवं काल के कपाल पर अमिट रेखा खींचने में समर्थ होता है। गोस्वामी तुलसीदास जी 'स्वान्तः सुखाय' से प्रेरित हो काव्य रचना में प्रवृत्त हुए। यही कारण था कि उनका काव्य लोक हिताय बना। काव्य मनोंरजन की वस्तु नहीं है, आनन्द का विषय है। आनन्दानुभूति दिव्यातिदिव्य तभी हो पाती है जब वह लोकमंगल की धारणा से मंडित होती है। साहित्य को समाज का दर्पण मानने का कारण भी यही है कि उसका प्रत्यक्षतः अथवा अप्रत्यक्षतः सम्बन्ध जीवन से है। वह जीवन के लौकिक अथवा आध्यात्मिक पक्षों का उद्‌घाटन कर्ता है। इसलिए लोककल्याण की दृष्टि से उसकी भूमिका अहं हो जाती है। इस प्रकार काव्य मात्र मनोरंजन का विषय नहीं अपितु जीवन का पथ प्रदर्शक है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार :– प्रायः सुनने में आता है कि कविता का उद्‌देश्य मनोरंजन है, पर जैसा कि हम पहले कह आए हैं कविता का अंतिम लक्ष्य जगत के मार्मिक पक्षों का प्रत्यक्षीकरण करके उनके साथ मनुष्य हृदय का सामंजस्य स्थापन है।[61] आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी साहित्य का प्रयोजन आत्मानुभूति मानते हैं। उनके अनुसार 'काव्यानुभूति स्वतः एक अखण्ड आत्मिक व्यापार है, जिसे किसी दार्शनिक, राजनीतिक, सामाजिक या साहित्यिक खण्ड व्यापार या वाद से जोड़ने की आवश्यकता नहीं। समस्त साहित्य में इस अनुभूति या आत्मिक व्यापार का प्रसार रहा है। काव्य का प्रयोजन मनोरंजन अथवा सामाजिक वैषम्य से दूर भागना अथवा पलायन से भी नहीं हो सकता क्योंकि वैसी

अवस्था में आत्मानुभूति के प्रकाशन का पूरा अवसर रचयिता को नहीं मिल सकेगा, उसकी रचना अधूरी और अपंग रहेगी।'[62] आचार्य शुक्ल और आचार्य बाजपेयी के मन्तव्य से यह बात स्पष्ट है कि कविता का अंतिम लक्ष्य मनोरंजन नहीं है, किन्तु कवि द्वारा उसकी अवहेलना भी नहीं की ज़ा सकती। मनोरंजन भी जीवन का एक हिस्सा है किन्तु अंतिम लक्ष्य नहीं।

डॉ. नगेन्द्र – काव्य का प्रयोजन कवि की आत्माभिव्यक्ति की भावना मानते हैं। उनके अनुसार 'सहित्य का प्रयोजन आत्माभिव्यक्ति है। कवि या लेखक के हृदय में जो भाव या विचार उठते हैं उन्हें वह प्रकाशित करना चाहता है।'[63] इस प्रकार आत्म–प्रकाशन की क्षमता को अवसर देना ही साहित्य का मूल प्रयोजन है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी साहित्य का प्रयोजन विशुद्ध मानव जीवन से जोड़ते हुए लिखते हैं कि 'मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य की दुर्गति, हीनता और परामुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को पर दुःखकातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।'[64]

इस संबंध में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का कथन है कि 'मेरे निकट सत् साहित्य का एक ही मापदण्ड है, वह यह है कि किस सीमा तक कोई साहित्यिक कृति मानव को उच्चतर, सुन्दरतम एवं परिष्कृत बनाती है।'[65]

गुलाबराय भी काव्य का प्रयोजन आत्मानुभूति मानते हैं। उनके अनुसार 'भारतीय दृष्टि में आत्मा का अर्थ संकुचित व्यक्तित्व नहीं है। विस्तार ही में आत्मा की पूर्णता है। लोकहित भी एकात्मवाद की दृढ़ आधारशिला पर खड़ा हो सकता है। यश, अर्थ, यौन सम्बन्ध, लोकहित सभी आत्महित के नीचे या ऊँचे रूप हैं। .... इन सब प्रयोजनों में वही उत्तम हैं, जो आत्मा की व्यापक से व्यापक और अधिक से अधिक सम्पन्न अनुभूति में सहायक हो, इसी से लोकहित का मान है।[66]

आचार्य तुलसी के अभिमत से 'साहित्य का सही लक्ष्य है आत्म साधना की ज्योति से जाज्वल्यमान वाणी द्वारा जन–जन को प्रकाश देना।'[67] इस प्रकार आचार्य तुलसी 'आत्मसाधना' के परिप्रेक्ष्य में जनकल्याण की भावना को ही साहित्य

का प्रयोजन मानते हैं।

पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों में प्लेटो, रस्किन, टालस्टॉय, रिचर्ड्स ने काव्य का प्रयोजन लोकमंगलकारी माना है। प्लेटो के अनुसार – 'काव्य का लक्ष्य है–आन्तरिक उदात्तभाव और सौन्दर्य को उद्घाटित करना, लोक व्यवस्था और न्याय संगतता का परिपालन करना और जगत के सत्य रूप की ही अभिव्यक्ति करना।'[68] अरस्तु ने 'नीति सापेक्ष आनन्द को काव्य का उद्देश्य माना है तो विक्टर कजिन कला का उद्देश्य नैतिक सौंदर्य की अभिव्यक्ति स्वीकारते हैं।'[69] वर्ड्सवर्थ की दृष्टि में काव्य का लक्ष्य है 'सत्य और सौंदर्य के माध्यम से आनन्द प्रदान करना।' शेले भी मानते हैं कि – 'काव्य जीवन का प्रतिबिम्ब है जो इसके नित्य सत्य में अभिव्यक्त रहता है।'[70]

इस प्रकार संस्कृत, हिन्दी एवम् पाश्चात्य जगत के विचारकों ने अपनी–अपनी दृष्टि से काव्य प्रयोजन की व्याख्या की हैं। संस्कृत के आचार्यों ने काव्य का प्रयोजन–धर्म, यश, लोकोपदेशक, अर्थ, काम, मोक्ष, आनन्द, कान्तासम्मति उपदेश, अशिव की क्षति तथा परमानन्द माना है। हिन्दी के कवियों एवम् समीक्षकों ने काव्य का लक्ष्य 'स्वान्तः सुखाय' जगत के मार्मिक पक्षों का उद्घाट्न पर दुखकातरता, संवेदनशीलता, लोकमंगल की धारणा, आत्मानुभूति तथा जीवन में सत्य, शिवम्, सुन्दरम् की प्रतिष्ठा–सुनिश्चित किया है। पाश्चात्य विचारकों की दृष्टि में काव्य का प्रयोजन–लोकमंगल की भावना, सौंदर्य, आनन्द, उदात्त भाव की प्रतिष्ठा तथा जगत के सत्य का उद्घाटन होना चाहिए। किन्तु ऐसा कवि जो मान, प्रतिष्ठा, पद, यश, गरिमा, धन, वैभव आदि लोकेषणा से मुक्त हो उसके काव्य का क्या प्रयोजन हो सकता है? आचार्य महाप्रज्ञ के संबंध में यह प्रश्न विचारणीय एवं गंभीर है। आचार्य महाप्रज्ञ तत्ववेत्ता दार्शनिक एवम् समाज सुधारक संत हैं, वे संसार में रहते हुए भी संसारातीत हैं। वे आत्म साधना में रत अपनी जाज्वल्यमान वाणी से जन–जन के हृदय को प्रकाशित करने वाले पावन प्रदीप हैं। इसलिए उनके काव्य का लक्ष्य लोककल्याण एवं स्वान्तः सुखाय ही है। अपने लेखन के संबंध में आचार्य श्री का कथन है कि 'मेरा लेखन न प्रकाशन से जुड़ा था और न बाजार से। वह स्वान्तः सुखाय से जुड़ा था।'[71] .... 'लेखन मेरा व्यवसाय नहीं

है और न मैंने लेखन को दक्षता के साथ जोड़ा है। मेरा लेखन अपेक्षा से जुड़ा है। गुरूदेव ने जिस अपेक्षा की ओर इंगित किया उस ओर लेखनी गतिशील हो गयी।'[72] गुरू की अपेक्षाओं को पूरा करनें के लिए जो शिष्य काव्यसागर में उतरा हो, उसके निष्काम कर्मयोग की थाह कोई साधक ही लगा सकता है। सद्गुरू आचार्य तुलसी की धार्मिक, सामाजिक और दार्शनिक भावनाओं की प्रतिपूर्ति ही आचार्य महाप्रज्ञ के काव्य का प्रयोजन है–जिसमें उनकी आत्माभिव्यक्ति एवं लोकमंगल की भावना समाहित है।' मुनि दुलहराज ने आचार्य श्री के निम्नलिखित काव्योद्देश्यों का उल्लेख किया है :–

- व्यक्ति व्यक्ति का निर्माण एवं सुखी समाज की रचना.
- ऐसे समाज की रचना जिसमें विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय हो.
- व्यक्ति की अभ्यान्तर ज्योति को प्रज्जवलित करना.
- विवेक चेतना और नैतिक चेतना का जागरण करना.
- मस्तिष्क को प्रशिक्षित करने के सूत्रों का अवबोध करना.
- मानवीय संवेदना का जागरण करना.
- दर्शन की जीवन के साथ संयुति करना.
- मानवीय चेतना में समता और अनुकम्पा की जागृति करना.
- अपने उत्तरदायित्व का अवबोध देना. [73]

इस प्रकार आचार्य महाप्रज्ञ महत् उद्देश्यों से परिपूर्ण, मानवीय संवेदना तथा आध्यात्मिक चेतना से सम्पृक्त नवोन्मेषशालिनी समता को प्रतिष्ठित करते हुए जन–जन को आत्मानन्द परमानन्द का संदेश देते हैं और यह दिव्य संदेश ही उनके काव्य का प्रयोजन है।

––00––

संदर्भ सूची

1. उद्धृत, साहित्य की विविध विधाएँ – डॉ. रामप्रकाश
2. आचार्य विश्वनाथ कविराज–साहित्य दर्पण–षष्ठ परिच्छेद, पृ.–15–25.
3. अनुकृति–वाग्वे पथ्वास्वस्तिः आचार्य कल्याणमाल लोढ़ा, पृ.–3–4. (जतनलाल रामपुरिया)
4. आधुनिक हिन्दी कविता में गीति तत्व–डॉ.सच्चिदानंद तिवारी, पृ.–122.
5. डॉ.शंभूनाथ सिंह–हिन्दी में महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ.–131.
6. कला, साहित्य और समीक्षा–आधुनिक हिन्दी महाकाव्य, डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ.–179.
7. पुद्गल कोष–प्रथम खण्ड, सं.–मोहनलाल बाँठिया, श्रीचंद चोरड़िया, पृ.–26.
8. जैन तत्व विद्या–प्रथम संस्करण, सन् 2000, पृ.–11.
9. ऋषभायण–आचार्य महाप्रज्ञ–जैन विश्व भारती प्रकाशन लाडनूँ, पृ.–16.
10. ध्वन्यालोक – आनन्द वर्धन, 3/22.
11. रस सिद्धान्त – डॉ. नगेन्द्र, पृ.–286.
12. आचार्य तुलसी का काव्य वैभव – समणी कुसुमप्रज्ञा, पृ.–226.
13. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र–डॉ.कृष्णदेव शर्मा–पृ.–269. (खण्ड 'ख' पाश्चात्य काव्य शास्त्र)
14. अनुकृति – जतनलाल रामपुरिया
15. जैन तत्व विद्या, खण्ड–1, गणाधिपति तुलसी–सं.साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा, पृ.–34.
16. रस सिद्धान्त–डॉ. नगेन्द्र, पृ.–13–14.
17. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रंथावली, भाग–7, पृ.–206.
18. काव्यांग कौमुदी–(तृतीय कला), विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, अलंकार, पृ.–75.
19. पल्लव की भूमिका–सुमित्रानन्दन पंत, पृ.–19.
20. हिन्दी काव्य में अन्योक्ति–डॉ.संसार चंद्र, पृ.–68.
21. नये कवियों के काव्य शिल्प सिद्धान्त–डॉ. दिविक रमेश, पृ.–265.

22. छायावादी काव्य : सौंदर्य वैविध्य – सं.शीतला प्रसाद दुबे, पृ.–15.
23. नयी कविता की भाषा – डॉ. रविनाथ सिंह, पृ.–214.
24. आत्मने पद, अज्ञेय, पृ.–42.
25. कल्पना और छायावाद, केदारनाथ सिंह, पृ.–98.
26. नयी कविता के प्रबंध काव्य–शिल्प और जीवनदर्शन, पृ.–229.
27. कला, साहित्य और समीक्षा–डॉ.भगीरथ मिश्र, पृ.–185.
28. वही, पृ.–185.
29. कबीर, सं. विजयेन्द्र स्नातक, पृ.–203
30. विचार और विश्लेषण–डॉ.नगेन्द्र, पृ.–75.
31. ऋषभ और महावीर – आ. महाप्रज्ञ, पृ.–56.
32. जैन तत्वज्ञान प्रश्नोत्तरी–मुनि जिनेश कुमार, पृ.–76.
33. काव्यांग कौमुदी–आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।, पृ.–213
34. आचार्य तुलसी का काव्य वैभव–समणी कुसुम प्रज्ञा, पृ.–219.
35. महादेवी वर्मा की काव्य–साधना–प्रो.कृष्ण देव शर्मा, पृ.–138.
36. भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य भाषा का शैली वैज्ञानिक अध्ययन, डॉ. नीलम कालड़ा, पृ.–67.
37. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रंथावली भाग–7, पृ.–109.
38. कवि श्री शिवमंगल सिंह सुमन और उनका काव्य डॉ. के.जी.कदम, पृ.–342.
39. आचार्य महाप्रज्ञ, संस्कृत साहित्य–सं.डॉ.हरिशंकर पाण्डेय, पृ.–248–249.
40. महाप्रज्ञ का रचना संसार–आत्मकथ्य–सं.कन्हैयालाल फूलफगर, पृ.–12.
41. आचार्य तुलसी–विचार के वातायन में, जैनेन्द्र, पृ.–27.
42. महाप्रज्ञ का रचना संसार–आत्मकथ्य–पृ.–17.
43. महाप्रज्ञ साहित्य–मुनि दुलहराज, पृ.–2.
44. महाप्रज्ञ का रचना संसार–आत्मकथ्य, पृ.–36.
45. महाप्रज्ञ साहित्य–मुनि दुलहराज, पृ.–16.
46. तुलसीप्रज्ञा, अनुसंधान त्रैमासिकी, अक्टूबर–दिसंबर 1994, पृ.–232.
47. वही, पृ.–232.

48. उपासना – सं.महाश्रमण मुदितकुमार, पृ.–272.
49. महाप्रज्ञ साहित्य – मुनि दुलहराज – पृ.–78.
50. महाप्रज्ञ साहित्य – मुनि दुलहराज – पृ.–89.
51. ऋषभायण–प्रस्तुति–पृ.–6.
52. महाप्रज्ञ साहित्य – पृ.–100.
53. तुलसी प्रज्ञा–सं.डॉ.परमेश्वर सोलंकी, खण्ड–18, अप्रैल–जून 1992, पृ.–61.
54. अतुलतुला–पृ.–147.
55. महाप्रज्ञ का रचना संसार – सं.कन्हैयालाल फूलफगर, पृ.–26–28.
56. महाप्रज्ञ दर्शन –सं.मुनि धनंजय, कन्हैयालाल फूलफगर, पृ.–228.
57. वही, पृ.–235.
58. काव्यालंकार 1.2
59. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र–डॉ.कृष्णदेव शर्मा, पृ.–146.
60. काव्य प्रकाश–1.2.
61. चिंतामणि (भाग–1) मीमांसा–डॉ.राजकमल वोरा, पृ.–43.
62. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र – डॉ.गणपति चन्द्र गुप्त, पृ.–64.
63. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र – डॉ.कृष्णदेव शर्मा, पृ.–149.
64. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र–डॉ.गणपति चन्द्र गुप्त, पृ.–64.
65. महाप्रज्ञ साहित्य–मुनि दुलहराज, पृ.–3.
66. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांत–डॉ.गणपति चन्द्र गुप्त, पृ.–64.
67. महाप्रज्ञ साहित्य–मुनि दुलहराज, पृ.–3.
68. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र, डॉ.शांतिस्वरूप गुप्त, पृ.–22.
69. वही, पृ.–24.
70. वही, पृ.–24.
71. महाप्रज्ञ का रचना संसार–सं.कन्हैयालाल फूलफगर, पृ.–22.
72. वही, पृ.–37.
73. महाप्रज्ञ साहित्य – पृ.–04.

–00–

द्वितीय अध्याय
बिम्ब का स्वरूप

➢ **बिम्ब का अर्थ** :–

बिम्ब अंग्रेजी शब्द 'इमेज'का हिन्दी पर्याय है। 'इमेज' का कोषगत अर्थ है– मानसिक चित्र या विचार, उपमा, रूपक,[1] चित्र, मूर्त्ति, प्रतिमा, बिम्ब, प्रतिबिम्ब, प्रतिरूप[2], प्रतिकृति, कल्पना या स्मृति में निर्मित चित्र या प्रतिकृति जिसके लिए दृश्य होना आवश्यक नहीं हैं।[3] हिन्दी शब्दकोश में बिम्ब के लिए प्रतिबिम्ब, छाया, कमण्डलु, प्रतिमूर्त्ति, सूर्य या चंद्रमा का मण्डल, आभास एवं झलक अर्थ का उल्लेख किया गया है।[4] इस अर्थ में किसी वस्तु, पदार्थ अथवा स्थिति का छायांकन जब मस्तिष्क के स्मृति पटल पर अथवा हृदय से स्पर्शित होता है तब उस स्मृति सत्य को बिम्ब कहते हैं।

––00––

➢ **बिम्ब की परिभाषा** :–

मानव मनीषा अपने चिंतन और दर्शन से ज्ञान–विज्ञान की अजस्त्र धारा एक छोर से दूसरे छोर तक बहाती रही है। कभी पूर्व का ज्ञान–विज्ञान पाश्चात्य को आप्लावित करता रहा है तो कभी पाश्चात्य की ज्ञानधारा पूर्व को नहलाती रही है। विश्वस्तर पर साहित्य की विविध विधाओं की सुरभि का प्रसार कवियों एवं लेखकों की हृदय, मन, बुद्धि का विस्तार ही है अथवा कवि कल्पना, भावना, विचारणा की वह धार है जो बिम्ब रूप में मानस जगत में साकार अथवा धूमिल संसार रचती है।

'बिम्ब' का संपूर्ण कार्य व्यापार अन्तर्जगत से होता है। बाह्य जगत की स्थिति, संवेदनाएँ, लोकव्यवहार, परिवार, समाज आदि के कार्यों या दृश्यों का काव्य में बिम्ब के रूप में उद्घाटन एक जटिल किन्तु सहज प्रक्रिया है। पाश्चात्य जगत

एवं हिन्दी के लेखकों, समीक्षकों ने अपने–अपने मानदण्डों से 'बिम्ब' को परिभाषित किया है :–

सी.डे.लेविस के अनुसार :– काव्य बिम्ब शब्दात्मक ऐन्द्रिक चित्र है, जो कुछ अंशों में रूपात्मक होते हुए भी मानवीय भावों का अभिव्यंजक होता है।[5] किसी पदार्थ का मनश्चित्र, मानसिक प्रतिकृति, कल्पना एवम् स्मृति में उपस्थित चित्र बिम्ब है। मानसिक पुनर्निर्माण को बिम्ब कहते हैं। बिम्ब हृदय और मस्तिष्क की आँखों से देखी जाने वाली वस्तु है।[6] डॉ.नगेन्द्र की मान्यता है, कि काव्य–बिम्ब पदार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानसिक छवि है, जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।[7] आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने यह कहकर काव्य में बिम्ब को प्रमुख माना है कि 'काव्य में अर्थग्रहण करने मात्र से काम नहीं चलता, बिम्ब ग्रहण अपेक्षित होता है।'[8] कैरोलिन स्पर्जियन का कथन है, कि कवि वर्ण्य–विषय को जिस ढंग से देखता है, सोचता है या अनुभव करता है बिम्ब उसकी समग्रता, गहनता, रमणीयता एवं विशद्ता को अपने द्वारा उद्भूत भावों एवम् अनुषंगो के माध्यम से पाठक तक सम्प्रेषित करता है।[9] केदारनाथ सिंह ने बिम्ब निर्माण में कल्पना और ऐन्द्रियता के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि 'बिम्ब वह शब्द चित्र है जो कल्पना के द्वारा ऐन्द्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है।'[10] डॉ.सुधा सक्सेना के मत से 'अमूर्त्त विचार या भावना की ऐन्द्रिय अनुभूति के आधार पर कल्पना के द्वारा पुनर्रचना करने वाले शब्द चित्र को बिम्ब कहते हैं।'[11] नई कविता के संदर्भ में मानव मन अथवा कल्पना में बनने वाले चित्र को बिम्ब कहते हैं। यह कवि के चिंतनशील मनःस्थिति का वह मानसचित्र है जिसे रूपक आदि की सहायता से अभिव्यक्त किया जाता है। यह शब्द मानस प्रतिमा का पर्याय है।[12] मनोवैज्ञानिकों एवं समीक्षकों ने दृश्य, गंध, स्पर्श और स्वाद के ऐन्द्रिय संवेदनात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति को भाव्यात्मक बिम्ब माना है।[13]

(To Psychologist and to many critics imagery in poetry is Eypression of sense Experience chennelled through sight hearing, Smell, touch and taste impressed upon the mind and setforth in verse in such fushion at to recall as vividly and faithully as passible as the original sensation.)

हरिश्चन्द्र वर्मा ने 'बिम्ब' की विशद व्याख्या करते हुए लिखा है कि मन की संवेदनाओं का सीधा संबंध इन्द्रियों से है और इन्द्रियों का सम्बन्ध बाह्य जगत के वस्तु व्यापारों और उनके गुणों–रूप, ध्वनि, गंध, स्पर्श और रस से है, इसलिए कविता में अनुभूतियों के मूर्त्तीकरण के लिए ऐन्द्रिय मूर्त आधार मानस गोचर रूप में प्रस्तुत किया जाता है, इसी भावोत्पादक मानसी रूप दृष्टि को बिम्ब कहा जाता है। कविता के प्रायः सभी तत्व अलंकार, विभावन व्यापार, प्रतीक, मानवीकरण आदि संयुक्त होकर इसी मानसी रूप रचना में प्रवृत्त होते है।[14]

इस प्रकार उक्त परिभाषाओं के आलोक में कहा जा सकता है कि बिम्ब निर्माण में कवि की अनुभूति और कल्पना, भाव और विचार, वासना (पैशन) एवम् ऐन्द्रिय की पूर्णरूपेण सहभागिता होती है। बाह्य वस्तु का साक्षात्कार आभ्यान्तरित रूप से जितना ही गहन होता है, बिम्ब की प्रक्रिया उतनी ही सहज होती है। भाव काव्य बिम्ब का प्रेरक तत्व है।[15] कल्पना भाव की अनुगामिनी है। अनुभूति विहीन भाव या विचार के कोई शब्द–चित्र अथवा वस्तुचित्र मानस पटल पर अंकित नहीं हो सकता। भाव के उद्‌बुद्ध होते ही कल्पना का कार्य व्यापार प्रारंभ हो जाता है। सृजन में कल्पना की अहम् भूमिका रहती है, जो अनुभूति की सघनता से मानस पटल पर जीवन्त मूर्ति का निर्माण करती है। "तीव्र अनुभूति ही वास्तव में कल्पना को अनुकूल रूप विधान में तत्पर करती है।[16] इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जब उद्‌बुद्ध भावना, कल्पना के सहारे किसी दृश्य अथवा वस्तु की क्रियात्मक, प्रतिक्रियात्मक रूप को ऐन्द्रियता अथवा अतीन्द्रियता के आधार पर प्रस्तुत करती है, तब उसका एक चित्र मानस पटल पर व्यक्त अथवा अव्यक्त रूप में उभर जाता है। मस्तिष्क में उभरे हुए इस छवि को बिम्ब कहते है।

——00——

➢ भारतीय समीक्षा और पाश्चात्य समीक्षा में बिम्ब

'बिम्ब' विधा का जन्म आधुनिक काल में पाश्चात्य जगत में हुआ। भारतीय समीक्षा और पाश्चात्य समीक्षा में आधुनिक काल यानी सन् 1908 के पूर्व 'बिम्ब' विधा का उल्लेख नहीं मिलता। एक ओर डॉ. नगेन्द्र यह लिखते हैं कि भारतीय काव्यशास्त्र के लिए बिम्ब कोई अज्ञात वस्तु नहीं है तो दूसरी ओर यह भी लिखते हैं कि 'जिस रूप में बिम्ब का विवेचन विश्लेषण यूरोप के साहित्य के अंतर्गत वर्तमान शती में हुआ है उस रूप में भारतीय काव्यशास्त्र में नहीं मिलता।'[17] इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय काव्यशास्त्रियों ने अपने सिद्धांतों में विचार के मान से 'बिम्ब' धारणा पर कोई विचार तो नहीं दिया। किन्तु प्राकारान्तर से बिम्ब की अभिव्यक्ति हुयी, क्योंकि काव्य का संबंध प्रत्यक्षतः अप्रत्यक्षतः भावना, कल्पना और अनुभूति से होता है। जो अपनी प्रस्तुति में बिम्बात्मक होती है। केदारनाथ सिंह के अनुसार 'भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा में बिम्ब शब्द अपेक्षाकृत नया है। पुराने लक्षण ग्रंथों में इसका प्रयोग नहीं मिलता। केवल दृष्टांत अलंकार की चर्चा में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव का उल्लेख मिलता है, जिसका आधुनिक कविता से कोई संबंध नहीं।'[18] दृष्टांत अलंकार को परिभाषित करते हुए आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है कि–'दृष्टान्तवस्तु सधर्मस्य वस्तुतः प्रतिबिम्बनम्'[19] और इसी परिभाषा को कुछ और विस्तृत करते हुए रामदहिन मिश्र लिखते हैं कि 'जहां उपमेय उपमान और साधारण धर्म का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव हो वहाँ दृष्टांत अलंकार होता हैं।'[20] यहां उपमेय और उपमान का विधान दृष्टव्य है क्योंकि 'उपमेय' प्रस्तुत और उपमान 'अप्रस्तुत' का वाचक है। बिम्ब का कार्य व्यापार प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों से होता है। सादृश्यमूलक अलंकार इसके प्रमाण हैं। केदारनाथ सिंह दृष्टांत अलंकार में प्रयुक्त 'बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव को जहां आधुनिक कविता में प्रयुक्त बिम्ब से कोई संबंध नहीं मानते वहीं डॉ. नगेन्द्र इस बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव को किसी सीमा तक आधुनिक बिम्ब के निकट मानते हैं। उनके अनुसार उक्त लक्षणों में बिम्ब का प्रयोग मूलभाव (अमूर्त्त) अथवा विचार के अर्थ में किया गया है और 'प्रतिबिम्ब' का प्रयोग उसको मूर्त्तित करने वाले अप्रस्तुत विधान के लिए जो साम्य पर आधृत रहता है।[21] अर्थात् 'बिम्ब' यहाँ अमूर्त्त मूलभाव का वाचक है और प्रतिबिम्ब उसके मूर्त्ति विधान

का, जबकि आधुनिक आलोचना में बिम्ब मूल भाव का नही, वरन् उसको बिम्बित करने वाले मूर्ति विधान का ही वाचक है।[22] इसी प्रकार निदर्शना अलंकार की परिभाषा में भी बिम्ब प्रतिबिम्ब शब्द प्रयुक्त हुआ है – 'यत्र बिम्बानु बिम्बत्वं बोधयेत निदर्शना'[23] अथवा 'जहां वस्तुओं का परस्पर संबंध उनके बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव का बोध करे वहाँ निदर्शना अलंकार होता है।'[24] इस प्रकार दृष्टांत और निदर्शना सादृश्यमूला होने के कारण उपमेय और उपमान रूप में प्रस्तुत होते हैं।

डॉ. नगेन्द्र ने बिम्ब का सम्बन्ध अलंकार, ध्वनि वक्रता के साथ अधिक और रीति के साथ अपेक्षाकृत कम माना है। उनके अनुसार 'अलंकार विधान में सादृश्य मूलक अलंकार प्रायः बिम्बात्मक होते हैं, जिनमें सादृश्य प्रतीयमान रहता है उनमें बिम्ब की स्थिति और भी निश्चित रहती है।'[25] केदारनाथ सिंह की दृष्टि में बिम्ब का सबसे निकट का संबंध अलंकार से हैं।[26] क्योंकि अलंकार का संपूर्ण आधार उपमान अथवा अप्रस्तुत है। उनके अनुसार 'अलंकार का संबंध अप्रस्तुत विधान से है, वह अप्रस्तुत को ग्राह्य और रोचक बनाता है परंतु बिम्ब का संबंध प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों से होता है, बिम्ब वह केंद्रीय बिन्दु है जहां अलंकार और अलंकार्य का भेद समाप्त हो जाता है अथवा यों कहें कि जहां दोनों समन्वित होकर कोई अधिक जटिल और प्रभावशाली रूप धारण कर लेते हैं।[27] 'परंतु आधुनिक आलोचना शास्त्र का बिम्ब विधान और भारतीय अलंकार शास्त्र का अप्रस्तुत विधान एक नहीं है उनमें सहव्याप्ति मानना समीचीन नहीं है। बिम्ब विधान की परिधि में प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों का समावेश हो सकता है। केवल अप्रस्तुत ही नहीं प्रस्तुत भी बिम्ब रूप में हो सकता है और होता है'[28] जैसे –

सोहत ओढ़े पीत पट, स्याम सलोने गात।
मनहुँ नीलमणि शैल पर आतप पर्‌यो प्रभात।। [29]

उक्त उदाहरण में उत्प्रेक्षा अलंकार है। पीताम्बर से सुशोभित श्री कृष्ण के श्याम सलोने गात्र (प्रस्तुत) पर प्रातः कालीन आतप से आलोकित नीलमणि शैल (अप्रस्तुत) की उत्प्रेक्षा की गयी है। यहाँ प्रस्तुत में लक्षित और अप्रस्तुत में उपलक्षित बिम्ब स्पष्ट रूप से प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार बिम्ब विधान का क्षेत्र व्यापक है, उसे

मात्र अप्रस्तुत योजनातक सीमित नहीं किया जा सकता, यह बात ध्यान देने योग्य है कि जहाँ अलंकार के द्वारा समानता असमानता के आधार पर वस्तु के गुण, धर्म, रूप आदि को प्रस्तुत किया जाता है वही बिम्ब में ऐन्द्रियगम्यता द्वारा मानस साक्षात्कार किया जाता है जो प्रायः आरोप व सादृध्य द्वारा होता है।

आचार्य दण्डी में समस्त वाङ्मय को दो भागों में विभाजित किया है– 1. स्वाभावोक्ति और 2. वक्रोक्ति। ये दोनों ही बिम्ब के समीपस्थ हैं। स्वाभावोक्ति में वस्तुओं का स्वाभाविक वर्णन होता है और 'जहाँ वर्ण्य वस्तु का सजीव चित्र प्रस्तुत हो जाए वहाँ लक्षित बिम्ब होता है। उदाहरण के लिए भवभूति की निम्नलिखित पंक्तियां देखी जा सकती हैं जिसमें अश्वमेध यज्ञ के घोड़े का सजीव वर्णन किया गया है–

पश्चात् पुच्छ वहित विपुलं तच्च घनोत्यजस्रं
दीर्घग्रीवः स भवति खुरास्तस्य चत्वार एव
शप्पाण्यति प्रकिरति शकृत्पिण्डका नाम मात्रान
किं व्याख्या व्रजति सपुनर्दूरमें हयेहि यामः।। (30)

स्वाभावोक्ति की शैली की विशेषता है 'चित्रोदात्तता। 'चित्र' के साथ जुड़ा उदात्त शब्द इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि चित्र की कोटि उत्तम होनी चाहिए अर्थात् चित्र अस्पष्ट न होकर स्पष्ट होना चाहिए।(31) स्वाभावोक्ति के अतिरिक्त वक्रोक्तिमूलक अलंकारों में भी बिम्ब की छवि उभरती है। गोचरता बिम्ब के लिए आवश्यक है जो प्रायः सादृश्य मूलक अलंकारों में देखी जा सकती है। बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव पर आश्रित अलंकारों में सुंदर बिम्ब बनते हैं।

पाश्चात्य समीक्षा में 'बिम्ब' और 'मेटाफर' (रूपक) को एक दूसरे के पर्याय के रूप में प्रस्तुत किया गया है। (32) नामवर सिंह के अनुसार भी 'मेटाफर' शब्द के रहते हुए 'बिम्ब' शब्द अनावश्यक ही नहीं भ्रामक भी है।(33) जबकि बिम्ब और अलंकार में बुनियादी यह अन्तर है कि 'बिम्ब स्वच्छन्द होने के कारण अनिवार्यतः प्रतीकात्मक होता है, जबकि रूपक के लिए यह आवश्यक नहीं है।(34) भारतीय समीक्षा में अलंकारों की संख्या पाश्चात्य समीक्षा की तुलना में कई गुना

अधिक है, 'परंतु मूल अलंकार एक प्रकार से समान ही हैं। हमारे उपमा, रूपक, अत्युक्ति, विरोधाभास, वक्रतामूलक अलंकार, श्लेष, यमक आदि पश्चिम के सिमली, मेटाफर, हाइपर बोल, आक्सीमारन, इनुएंडो आदि के समानार्थक व समानधर्मी है।' (35)

भारतीय समीक्षा में कुन्तक का 'वक्रोक्ति' सिद्धांत कवि कर्म कौशल को महत्व देता है। कुन्तक के अनुसार 'कवेः कर्म काव्यम्' अर्थात कवि का कर्म ही काव्य है। कवि का कर्म क्या है ? कुन्तक इस पर मौन है, किंतु प्राकारान्तर से वे संकेत भी देते हैं – (वक्रोक्तिजीवितम्)

शब्दार्थो सहितौ वक्रकवि व्यापार शालिनी
वन्धे व्यवस्थितौ काव्यम्, तद्विदाहलाद कारिणि।

कुन्तक काव्य में शब्द और अर्थ दोनों को महत्व देते हुए प्रत्येक रचना के लिए 'आहलादकारिणी' होना आवश्यक मानते है। 'आह्लाद' काव्य का प्रयोजन है। इससे स्पष्ट है कि रस भाव से संपृक्त होने पर ही वक्रोक्ति आहलाद कारिणी हो सकती है। वक्रोक्ति वचन वक्रता पर आधारित है, और वचन वक्रता हमेशा अपने में नवीनता लिए रहती है, जो बिम्ब विधान का गुण है क्योंकि रूढ़गत शब्द भावोत्कर्ष के रूप में अपनी बिम्बात्मक प्रायः खो देते हैं। इस अर्थ में वक्रोक्ति की वक्रता कथन को शाणित करती हुयी बिम्ब के रूप में प्रस्तुत करती है। 'वक्रोक्ति सिद्धांत के अनेक प्रकारों में काव्यबिम्ब का रहस्य उद्घाटित हुआ है बिम्ब विधान के अनेक रूपों का कुन्तक की वक्रताओं में स्पष्ट समावेश है। भाषा–भेद की दृष्टि से भी बिम्ब व वक्रोक्ति के भेदों में साम्य है। बिम्ब, प्रबंध, प्रकरण वाक्य व वाक्यांश में स्थित माना गया है। हिन्दी आलोचकों की पुस्तक में निश्चित रूप से ये भेद वक्रोक्ति जीवित से प्रभावित ज्ञात होते हैं।''(36) नगेन्द्र ने भी प्रबंध बिम्ब व प्रकरण बिम्ब के अंतर्गत कुन्तक की प्रबंध वक्रता व प्रकरण वक्रता की ही व्याख्या की है।(37)

वस्तुतः वक्रोक्ति की वक्रता में ही बिम्बात्मकता होती है। वर्ण, पर्याय, उपचार, संवृत्ति, लिंग, विशेषण प्रकरण, प्रबंध आदि की वक्रता में बिम्बों की यथोचित सतता झलकती हुयी प्रतीत होती है। वर्ण विन्यास वक्रता में वर्ण थोड़े–थोड़े

अन्तर से बार–बार ग्रथित होते हैं जिससे नाद अथवा श्रोत बिम्ब की सृष्टि होती है। इसमें अनुप्रास एवं यमक अलंकार का तिरोभाव हो जाता है। जैसे –

कनक कोमल केसर कलियाँ ।
ज्ञान गिरा गुण की गलियाँ ।।

यहाँ 'क' और 'ग' व्यंजन का अनुप्रासमय प्रयोग मधुर ध्वनियों के रूप में नाद बिम्ब का वाहक है।

रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता के अंतर्गत कवि अपनी प्रतिभा से किसी शब्द के रूढ़ या वाच्य अर्थ को नवीन रूप में प्रस्तुत करता है जैसे–'काम सन्तु दृढ़ कठोर हृदयों रामो अस्मि सर्वस हे' उद्धरण में राम शब्द अपने रूढ़ अर्थ (दशरथ–पुत्र) से भिन्न कठोर–हृदय व्यक्ति का बिम्ब प्रस्तुत करता है, जो सीता के वियोग में भी प्राणधारण कर रहा है।[38]

पर्याय वक्रता में एक ही अर्थ के द्योतक कई शब्द होते हैं, किंतु कवि उनमें से किसी ऐसे शब्द का चयन करता है जो विविक्षित वस्तु को प्रस्तुत करने में समर्थ एवं आह्लादकारी हो, जैसे–वीरवेश में श्रीकृष्ण के लिए वंशीधर की अपेक्षा 'चक्रधर' पर्याय का प्रयोग करना सार्थक होगा क्योंकि इसका बिम्ब रस स्फुरण में अधिक सहायक होगा। नारी के संबंध में मैथिलीशरण गुप्त की प्रसिद्ध पंक्ति 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, में यदि अबला के पर्याय के रूप में 'नारी' शब्द का प्रयोग कर दिया जाय तो बिम्ब ग्रहण में बाधा उत्पन्न होगी। 'अबला' से असहाय स्त्री का जो बिम्ब प्रस्तुत हो रहा है, वह नारी शब्द से नहीं।

उपचार वक्रता में भेद होते हुए भी अभेद का अनुभव होता है। इसमें जब अमूर्त्त पर मूर्त्त का, अचेतन पर चेतना का आरोप होता है तब बिम्ब का वास्तविक स्वरूप उपलब्ध होता है जैसे–

'जल भी परम उमंग भरा। नाच रहा है रंग भरा–' पंक्ति में जल पर नर्तक का आरोप यानी जड़ पर चेतन का आरोप दृश्य बिम्ब का संकेतक है। नगेन्द्र के शब्दों में 'इसमें संदेह नहीं कि उपचारवक्रता काव्य कला का अत्यंत मूल्यवान उपकरण है, लक्षणा का वैभव मूलतः उपचार वक्रता में ही निहित रहता है। योरोपीय

काव्यशास्त्र में अनेक अलंकार उपचार के ही आश्रित हैं। जैसे विशेषण विपर्यय और मानवीकरण का चमत्कार उपचार वक्रता के अंतर्गत है।'[39]

विशेषण वक्रता में कारक या क्रिया में विशेषण के प्रभाव से लावण्य का उन्मेष होता है। लिंग वक्रता में पुल्लिंग अथवा स्त्रीलिंग के प्रयोग के कारण कथन में वक्रता आती है। 'रघुवंश' में वियोगी राम के वियोग में लताओं और मृगियों की सहानुभूति का उल्लेख नारी के सरस, कोमल, द्रवीभूत हृदय का ही बिम्बांकन करता है। इसी प्रकार पंत ने 'सिखा दो ना हे मधुप, कुमारि, मुझे भी अपने मीठे गान' के द्वारा गायन की मधुरता के लिये 'भ्रमरी' का बिम्ब प्रस्तुत किया है।

वाक्य–वक्रता का आधार पूरा वाक्य होता है। इसे दो भागों में विभाजित किया गया है– 1. सहजा वस्तु वक्रता और 2. अर्थालंकारों के प्रयोग कौशल से जन्य वक्रता। कवि की सहज प्रतिभा द्वारा प्रवृत वस्तुओं का सजीव चित्रण सहजावाक्य वक्रता कहलाता है। जब वस्तुओं का स्वाभाविक चित्ताकर्षक वर्णन होता है तो उसे स्वाभाविक अलंकार कहते है। बिम्ब विधान में सहज स्वाभाविकता व कल्पना की दृष्टि से बिम्ब के दो भेद किये गये है –1. लक्षित बिम्ब और 2. उपलक्षित बिम्ब। 'लक्षित बिम्ब विधान सहज वस्तुवक्रता से पूर्णतः मिलता है। आधुनिक बिम्बवादी प्रस्तुत का सचित्र वर्णन करने वाले लक्षित बिम्ब को ही वास्तविक बिम्ब मानते है। उपलक्षित बिम्ब में सादृश्य के आधार पर परोक्ष रूप से भावों को तीव्रता प्रदान की जाती है।[40]

प्रबंध वक्रता के अंतर्गत प्रबंध से तात्पर्य महाकाव्य नाटक आदि है, इससे सम्बद्ध कवि कौशल प्रबंध वक्रता है। प्रकरण वक्रता का आशय प्रबंध के कथा प्रसंग से है।' प्राचीन कथा में मूल को आंघात न पहुंचाते हुए नवीन कल्पना उत्थान जैसे 'रघुवंश' में कालिदास द्वारा कल्पित 'रघु' और 'कोत्स' का प्रकरण, शाकुन्तला में दुर्वाशा के 'शाप' की कल्पना, प्रकरण वक्रता के उदाहरण हैं। बिम्ब सिद्धांत में इस प्रकार की कल्पना को प्रकरण बिम्ब से अभिहित किया गया है।[41]

ध्वनि सिद्धांत का प्रतिपादन आनन्दवर्धन ने किया। इसमें रस–ध्वनि, अलंकार ध्वनि आदि के रूप में अन्य प्रमुख सिद्धांतों का समावेश है, उनके अनुसार

यत्रार्थः शब्दौ वा तमर्थ मुप सर्जनी कृत स्वार्थौ।

व्यक्तः काव्य विशेषः सध्वनि रिति सूरिभिः कथितः। (42)

अर्थात् जो अर्थ वाच्य अर्थ की अपेक्षा भिन्न होता है, उसे ध्वनि कहते हैं। यदि ये शब्द और अर्थ सचित्र हों तो उनसे जो व्यंजना की जायेगी, वह बिम्ब कहलाएगी। ध्वनि का संबंध शब्द शक्तियों से है। शब्द शक्तियों में लक्षणा और व्यंजना 'बिम्ब' के सन्निकट हैं। लक्षणा में मूर्त्ति विधान का गुण होता है, इसीलिए प्रत्येक लक्ष्यार्थ एक प्रकार का बिम्ब होता है। भाषा को चित्रमय, प्रभावशाली एवं रोचक बनाने के लिए प्रायः कवियों द्वारा लक्षणा का सहारा लिया जाता है। उदाहरण के तौर पर जब यह कथन किया जाता है कि 'मचान चिल्ला रहे हैं,' तब इसका लक्ष्यार्थ होता है कि 'मचान' पर बैठे लोग चिल्ला रहे हैं। इस प्रकार इस कथन से चिल्लाते हुये व्यक्तियों का 'बिम्ब' उभरता है। यदि यह कथन किया जाय कि 'सामने देखा खड़ा था अस्थिपंजर 'एक', तो 'अस्थिपंजर' के लक्ष्यार्थ से कंकालमात्र एक दुर्बल अथवा कृशकाय व्यक्ति का बिम्ब बनता है।

गौणी लक्षणा में सादृश्य संबंध होने से स्वतः बिम्ब निर्माण होता है। 'सारोपा' में उपमेय और उपमान दोनों का ग्रहण रहता है किंतु साध्यवसाना में केवल उपमान ही रहता है। ये रूपक और रूपकातिशयोक्ति अलंकार से सम्बन्धित हैं जिनसे प्रायः बिम्ब बनते हैं।(43)

व्यंजना शब्दशक्ति से स्वच्छंद बिम्बों का निर्माण होता हैं। व्यंग्यार्थ ध्वन्या भी बिम्ब रूप होता है जैसे–दिन डूब गया कथन से भिन्न–भिन्न श्रोता भिन्न–भिन्न अर्थ ग्रहण करते हैं और यह भिन्न–भिन्न अर्थ मनः चिंतन के अनुसार भिन्न–भिन्न बिम्ब प्रस्तुत करता है। इस कथन से पुजारी के लिए संध्यावंदन का बिम्ब, चरवाहे के लिए घर वापसी का बिम्ब तथा प्रेमी के लिए अभिसार का बिम्ब उभरता है। इस प्रकार 'लक्षणा द्वारा उद्‌बुद्ध बिम्ब जहाँ शब्दार्थ से सम्बद्ध होते हैं वहाँ ये (व्यंजना) बिम्ब स्वतंत्र होते हैं इनका सम्बन्ध शब्दार्थ से न होकर श्रोता की कल्पना से होता है। रिचर्ड्स ने इस दृष्टि से प्रथम वर्ग के बिम्बों को संबद्ध और दूसरे वर्ग के बिम्बों को स्वच्छंद कहा है।' (44)

3 ध्वनि का मूल आधार है 'स्फोट सिद्धांत'। स्फोट का अर्थ है–'स्फुटित अर्थः यस्मात् सस्फोटः अर्थात् जिससे अर्थ स्फुटित होता है, उसे स्फोट कहते है। इसकी कल्पना पदार्थ के संबंध में की गयी है। नगेन्द्र के शब्दों में 'पूर्व–पूर्व वर्ण के अनुभव से एक प्रकार का संस्कार उत्पन्न होता है उस संस्कार से सहकृत अन्त्य वर्ण के श्रवण से तिरोभूत वर्णो को ग्रहण करने वाले एक मानसिक पद की प्रतीति उत्पन्न होती है, इसी का नाम पद स्फोट है।'[45] 'इसी प्रकार पूर्व पदानुभवजनित संस्कार सहकृत–अन्त्य पद श्रवण से अनेक पदावगाहिनी जो मानसी वाक्य प्रतीति होती है, वैयाकरण उसे वाक्य विस्फोट कहते है।'[46] अस्तु स्फोट की प्रकल्पना बिम्ब के मूलरूप के काफी निकट है। प्रत्येक सार्थक शब्द के द्वारा अथवा वाक्य के द्वारा जो बिम्ब प्रस्फुटित होता है, वह वैयाकरणों के स्फोट से भिन्न नहीं है। प्रत्येक काव्योक्ति द्वारा जिस काव्य बिम्ब की उद्‌बुद्धि होती है उसका अन्तर्भाव भारतीय काव्य शास्त्र की ध्वनि में अनायास किया जा सकता है।[47] ध्वनि सिद्धांत में यदि रसध्वनि का विशेष महत्व है, तो बिम्ब में भाव का। बिम्ब के बिना रसनिष्पत्ति असम्भव है।

4 रस को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया गया है। यह एक अमूर्त्त एवं सूक्ष्म तत्व है जिसकी अभिव्यक्ति के लिए स्थूल व मूर्त्त का अवलम्ब आवश्यक हो जाता है। ये मूर्त्त अथवा स्थूल माध्यम ही बिम्ब के रूप में प्रस्तुत होते हैं। बिम्ब का प्रत्यक्षतः एवं अप्रत्यक्षतः सम्बन्ध भाव से होता है। यद्यपि भारतीय काव्यशास्त्र में प्रत्यक्षतः बिम्ब विधान पर लेख नहीं मिलता किंतु अप्रत्यक्षतः उसकी उपस्थिति देखी जा सकती है। आचार्य अभिनवगुप्त ने 'ग्रीवाभंगाभिरामम' 'मानसी साक्षात्कार' का उद्धरण देते हुए लिखा है कि 'तस्य च ग्रीवाभंगाभिरामम्–इत्यादि वाक्येभ्यो वाक्यार्थ प्रतिपत्तेरनन्तरं मानसी साक्षात्कारात्मिका प्रतीति रूप जायते।[48]

वस्तुतः बिम्ब के स्वरूप पर विचार करने वाले प्रायः सभी समीक्षकों ने कवि के वस्तु से भावात्मक तादात्म्य या रागात्मक संबंध को बिम्ब रचना के लिए आवश्यक माना है। गिरिजा कुमार माथुर के अनुसार 'कोई भी उपकरण तब तक सार्थक नहीं हो सकता जब तक कि उसमें भाव सम्पृक्ति न हो और जब तक वह अनुभूति की उष्मा से दीप्त न हो गया हो किसी भी उपकरण को काव्य के उद्‌दीप्त

शिखर तक पहुँचाना कवि सामर्थ्य पर निर्भर करता है, उपकरण चाहे नया हो अथवा पुराना।' [49] इस प्रकार काव्य में भावों का सृजन बिम्बात्मक रूप में होता है। भाव और बिम्ब को यदि एक दूसरे का पूरक कह दिया जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। 'राम विलास शर्मा के अनुसार 'मूर्त्ति विधान वही सार्थक है, जो भावों से अनुप्राणित हो जिसमें सहज इन्द्रियबोध का निखार हो। 'दूर की कौड़ी लाना' काव्य रचना नहीं दोनों का बौद्धिक व्यायाम है।' [50]

रसानुभूति में बिम्बात्मकता समाहित रहती है, रससिद्ध कवियों की रचनाएँ बिम्बों से परिपूर्ण रहती है। प्राचीन कवि वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, बाणभट्ट, सूर तुलसी, बिहारी आदि की रचनाएँ इसका प्रमाण है। रस और बिम्ब का सम्बन्ध प्रस्तुत श्लोक में भी देखा जा सकता है –

एवम् वादिनी देवर्षो पितुरधोमुखी,

लीला कमल पत्राणि गणयामास पार्वती।। [51] (कुमार सम्भव)

उक्त श्लोक में लज्जा, संकोच, प्रसन्नता आदि भावों का वर्णन बिम्ब रूप में किया गया है। आचार्य शुक्ल ने 'अनुराग' से विहीन बिम्ब विधान को उपयोगी नहीं माना है।[52] वस्तुतः स्थायी भाव एवं रस के विभिन्न अवयव आलम्बन, आश्रय, उद्दीपन, अनुभाव, संचारीभाव आदि नाटक में तो 'साकार' रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं, पर काव्य में उनका बिम्ब ही प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'यदि रस साध्य है तो बिम्ब उसका साधन, काव्यात्मक बिम्ब किसी भी कविता की वह अन्तः शक्ति है, जिसके कारण रस निष्पत्तिः एवं रसास्वादन सम्भव हो पाता है और रसास्वादन की प्रक्रिया पूर्ण हो पाती है।[53]

इसी शोध प्रबंध में 'रस और बिम्ब' शीर्षक के अंतर्गत वैचारिक स्थापनाएँ दृष्टव्य है।

5. रीति सिद्धांत में बिम्ब के संकेत – रीति के सम्बन्ध में आचार्य वामन ने लिखा है कि 'विशिष्ट पद रचना रीतिः और इसमें विशिष्टता गुण के कारण आती है। वामन के अनुसार 'गुण काव्य के शोभा कारक धर्म है, जो शब्दगत भी होते हैं और अर्थगत भी। वामन ने संपूर्ण काव्य वैभव को गुण में ही केन्द्रिय किया है। गुण

और बिम्ब सिक्के के दो पहलू की भाँति हैं क्योंकि गुण रस के नित्यधर्म है और रसांग–विभाव, अनुभाव, संचारी भाव को बिम्ब रूप में प्रकट करते है। रीति का सम्बन्ध शैली से है अर्थात् काव्य की उस पद्धति से है जिसके द्वारा कवि अपनी उद्‌बुद्ध भावनाओं व अनुभूतियों को शब्द का जामा पहनाता है। गुण दोष अलंकार शैली के तत्व हैं, गुण नित्य तत्व है और अलंकार अनित्य। इसलिए शैली की अभिव्यक्ति एक रूप में नहीं होती, अनेक रूपों में होती है, जिससे भाव, गुण, अलंकार आदि विषयगत बिम्बों के रूप में प्रकट होते हैं। चूंकि 'रीति में शब्दार्थ को प्रमुख स्थान दिया गया है, इसलिए शब्दों से श्रोत अथवा नाद बिम्ब सहज रूप में प्रस्फुटित होते हैं। अर्थ व्यक्ति के संबंध में वामन ने 'स्तुस्वभाव स्फुट त्वमर्थ व्यक्तिः' के कथन से वस्तु को तत्काल स्पष्ट कर देने वाली अर्थव्यक्ति को महत्व दिया है। प्रकारान्तर से अर्थव्यक्ति बिम्ब संयोजन का कारण बनता है। इस संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र का कथन प्रासंगिक है 'रीतियों और वृत्तियों की कल्पना में श्रोत बिम्बों का आधार अत्यन्त स्पष्ट है और उधर अर्थव्यक्ति जैसे गुण की परिभाषा में शब्द योजना द्वारा उत्पादित बिम्ब की स्फुटता को ही अर्थ प्रसादन का प्रमाण माना गया है। (54)

6. औचित्य सिद्धांत में बिम्ब संकेत – भारतीय समीक्षा में आचार्य क्षेमेन्द्र 'औचित्य' सिद्धांत के प्रवर्त्तक हैं। उनके अनुसार 'उचितस्य भावः औचित्यम्' तथा औचित्यं रस सिद्धस्य स्थिरम् काव्यस्थ जीवितम् अर्थात् काव्य रस सिद्ध है किंतु उसका स्थिर, अनश्वर जीवित तो औचित्य ही है। रस, अलंकार, पद वाक्य, क्रिया, कारक, लिंग, विशेषण प्रबन्धार्थ आदि का वाक्य में उचित प्रयोग से व्यवस्थित एवं सम्यक बिम्ब उद्‌घाटित होता है। अलंकार और गुण के संबंध में क्षेमेन्द्र लिखते हैं कि –

उचित स्थान विन्यासाद अलंकृतिरलंकृतिः।
औचित्याद च्युता नित्यं भवन्त्येव गुणाः गुणाः।। (55)

अर्थात् काव्य में जब अलंकार और गुण का उचित प्रयोग होगा तभी वे अलंकार अथवा गुण कहाएंगे अन्यथा नहीं। काव्य में यही औचित्य प्रयोग बिम्ब का कारण बनता है। बिम्ब का प्रधान लक्ष्य ही है अमूर्त्त को मूर्त्त रूप में प्रस्तुत करना। मूर्त्तन की इस क्रिया में विषय को, मूर्त्तित किया जाता है। वक्रोक्ति, ध्वनि, रीति, रस

और बिम्ब सिक्के के दो पहलू की भाँति हैं क्योंकि गुण रस के नित्यधर्म है और रसांग–विभाव, अनुभाव, संचारी भाव को बिम्ब रूप में प्रकट करते है। रीति का सम्बन्ध शैली से है अर्थात् काव्य की उस पद्धति से है जिसके द्वारा कवि अपनी उद्‌बुद्ध भावनाओं व अनुभूतियों को शब्द का जामा पहनाता है। गुण दोष अलंकार शैली के तत्व हैं, गुण नित्य तत्व है और अलंकार अनित्य। इसलिए शैली की अभिव्यक्ति एक रूप में नहीं होती, अनेक रूपों में होती है, जिससे भाव, गुण, अलंकार आदि विषयगत बिम्बों के रूप में प्रकट होते हैं। चूंकि 'रीति में शब्दार्थ को प्रमुख स्थान दिया गया है, इसलिए शब्दों से श्रोत अथवा नाद बिम्ब सहज रूप में प्रस्फुटित होते हैं। अर्थ व्यक्ति के संबंध में वामन ने 'स्तुस्वभाव स्फुट त्वमर्थ व्यक्तिः' के कथन से वस्तु को तत्काल स्पष्ट कर देने वाली अर्थव्यक्ति को महत्व दिया है। प्रकारान्तर से अर्थव्यक्ति बिम्ब संयोजन का कारण बनता है। इस संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र का कथन प्रासंगिक है 'रीतियों और वृत्तियों की कल्पना में श्रोत बिम्बों का आधार अत्यन्त स्पष्ट है और उधर अर्थव्यक्ति जैसे गुण की परिभाषा में शब्द योजना द्वारा उत्पादित बिम्ब की स्फुटता को ही अर्थ प्रसादन का प्रमाण माना गया है। (54)

6. औचित्य सिद्धांत में बिम्ब संकेत – भारतीय समीक्षा में आचार्य क्षेमेन्द्र 'औचित्य' सिद्धांत के प्रवर्त्तक हैं। उनके अनुसार 'उचितस्य भावः औचित्यम्' तथा औचित्यं रस सिद्धस्य स्थिरम् काव्यस्थ जीवितम् अर्थात् काव्य रस सिद्ध है किंतु उसका स्थिर, अनश्वर जीवित तो औचित्य ही है। रस, अलंकार, पद वाक्य, क्रिया, कारक, लिंग, विशेषण प्रबन्धार्थ आदि का वाक्य में उचित प्रयोग से व्यवस्थित एवं सम्यक बिम्ब उद्‌घाटित होता है। अलंकार और गुण के संबंध में क्षेमेन्द्र लिखते हैं कि –

उचित स्थान विन्यासाद अलंकृतिरलंकृतिः।
औचित्याद च्युता नित्यं भवन्त्येव गुणाः गुणाः।। (55)

अर्थात् काव्य में जब अलंकार और गुण का उचित प्रयोग होगा तभी वे अलंकार अथवा गुण कहाएंगे अन्यथा नहीं। काव्य में यही औचित्य प्रयोग बिम्ब का कारण बनता है। बिम्ब का प्रधान लक्ष्य ही है अमूर्त्त को मूर्त्त रूप में प्रस्तुत करना। मूर्त्तन की इस क्रिया में विषय को, मूर्त्तित किया जाता है। वक्रोक्ति, ध्वनि, रीति, रस

में बिम्ब का संगत अवलोकन तभी होगा जब काव्य में उनकी संगति औचित्य पूर्ण होगी। रस को काव्य का प्राण माना गया हैं, किन्तु वह सहृदयों को आकर्षित करने में तभी समर्थ होगी, जब उसमें भावों, अलंकारो आदि का प्रयोग विषय अथवा वस्तु सापेक्ष हो, यह वस्तु या विषय सापेक्षता ही औचित्य रूप में प्रस्तुत होती है जिससे स्पष्टतः बिम्ब का बोध होता है। रस संकर औचित्य के रूप में क्षेमेन्द्र का निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य है –

सत्यं मनोरमा रामाः सत्यं रम्या विभूतयः।
किंतु मतांग नापांग भंग लोलं ही जीवितम् ।। (56)

यहां शांत रस के प्रभाव से श्रृंगार रस की प्रस्तुति की गई है। यहां जीवन की क्षणभंगुरता में मदमाती रमणी के 'चपल कटाक्ष' को बिम्बायित किया गया है इस श्लोक में 'कटाक्ष' के साथ 'चपल' विशेषण का प्रयोग जीवन की क्षणभंगुरता को 'कटाक्ष की तीव्रता व क्षणिकता से चाक्षुष बिम्ब के रूप में प्रस्तुत करती है।

पाश्चात्य समीक्षा में बिम्ब विषयक संकेत :–

ऐतिहासिक दृष्टि से पाश्चात्य जगत में सबसे पहले 'होमर' के महाकाव्य 'इलियड' एवं 'ऑडेसी' से पाश्चात्य समीक्षा चिंतन का सूत्रपात हुआ। 'इलियड' महाकाव्य में 'ट्राय' के विश्वप्रसिद्ध युद्ध का चित्रण किया गया है। इसमें जहाँ युद्ध में योद्धाओं के शौर्य का वर्णन किया गया है वहीं हेलेन एवं पेरिस की प्रेमकथा का रूपांकन मूलभूत मानवीय अनुभूतियों के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। इस महाग्रंथ में होमर की प्रतिभा और कल्पना शक्ति उस नवोन्मेष काल में श्लाघनीय रही है। उस युद्ध में क्रूर एवं हृदयहीन योद्धा जिन मार्मिक क्षणों से गुजरे उसके प्रभावशाली वर्णन में होमर की कल्पना एवं उसकी यर्थाथ दृष्टि विशेष रूप से अवलोकनीय है। कल्पना के कारण स्फुट रूप में भाव बिम्बों का बिखराव महाकाव्य में देखा जा सकता है। दूसरी कृति में ओडेसी महाकाव्य में युद्ध समाप्ति के पश्चात् 'ओडेसियस' के वापस लौटने की कथा वर्णित है जो अनेक भयानक और नाटकीय घटनाओं से युक्त होने के कारण इसमें सूक्ष्म मनोभावनाओं की प्रभावपूर्ण अभिव्यंजना हुयी है।

इन महाकाव्यों की विषय वस्तु से स्पष्ट है कि इनमें होमर के साहित्य सिद्धान्तों अथवा काव्य विषयक मान्यताओं का कोई निश्चित विवरण उपलब्ध नहीं है। नगेन्द्र के शब्दों में 'इलियड और ओडेसी की कविता का अभिव्यंजना वैभव होमर की काव्यालोचन शक्ति का असंदिग्ध प्रमाण है, परंतु प्रत्यक्षतः कहीं भी उन्होंने सिद्धांत विवेचन प्रासंगिक रूप से भी नहीं किया।' यहाँ नगेन्द्र द्वारा 'अभिव्यंजना' वैभव' का उल्लेख गहन है जो अपने में बिम्ब के वैभव का राज छिपाए हुए है। महत्वपूर्ण बात यह है कि पाश्चात्य समीक्षा के क्षेत्र में यह प्रारम्भिक दौर था, वे कविता और नाटकों के माध्यम से भाव और अनुभूति की इबारत लिख रहे थे इसलिए उनमें सीधापन था। कथन में आज की वक्रता नहीं थी किन्तु लोकमानस को प्रभावित व संवेदित करने की क्षमता थी। बिम्बांकन, भाव, अनुभूति व संवेदना का होता है, इसलिए कविता अथवा नाटक चाहे जिस युग का हो, जाने आनजाने बिम्ब की स्थिति होगी ही। होमर के पश्चात् हैसियड, पिंडार, ऐरिस्टाफेनीज, गोर्जियास, सुकरात, प्लेटो, ईस्किलन, थियोफ्रेस्टस एवं लौंजाइनस जैसे महान कवि विचारक व दार्शनिक हुए, जिनके विचार से पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र के नये प्रतिमान स्थापित होते गये।' (57)

1. <u>अनुकरण सिद्धांत में बिम्ब के संकेत –</u> पाश्चात्य साहित्य में प्लेटो और अरस्तू के विचार, समीक्षा शास्त्र में मील का पत्थर साबित हुए हैं। अनुकरण सिद्धांत की व्याख्या दोनों ने अपनी–अपनी दृष्टि से की है। प्लेटो की मान्यता है कि एक कलाकार चूंकि लौकिक सत्य का ही अनुकरण अपनी कृति में करता है, इसलिये उसमें उसी की प्रतिच्छवि होती है। और अन्ततः यह सत्य शुद्ध सत्य का प्रतिरूप सिद्ध होता है। उसके विचार से काव्य या साहित्य एक आदर्श नागरिक को सत्य की शिक्षा नहीं देता है इसीलिए उसने अपने आदर्श राज्य में सत्य अथवा कवि को कोई स्थान नहीं दिया। प्लेटो विशुद्ध आदर्शवादी दार्शनिक था। उसने कवि के जिस लौकिक सत्य के अनुकरण की बात की है वह अनुकरण ही बिम्ब के निकट है। मैं समझती हूं कि जिस वस्तु या सत्य का अनुकरण किया जायेगा उसका बिम्ब तो सबसे पहले अनुकरण कर्त्ता पर पड़ेगा। इसलिए अनुकरण में बिम्ब निष्पादन की पूरी–पूरी गुंजाइस है।

दूसरी ओर अरस्तू ने चिंतन के क्षेत्र में इतिहास की तुलना में कविता को अधिक महत्व देते हुए लिखा है कि 'Poetry is a more Philosophical and a higher thing history' [58] यह तथ्य विचारणीय है कि 'काव्य का सार्वभौम, अमूर्त्त विचार नहीं है, वह संवेदना के द्वारा मूर्तिमंत किया जाता है, उसमें ऐन्द्रिय बिम्ब होते हैं, जो उस सार्वभौम सत्य को प्रकट करते हैं। अरस्तू ने इसीलिए कविता के लिए 'दार्शनिक पूर्ण' शब्दावली का प्रयोग किया है। यों अरस्तू ने कला को प्रकृति की अनुकृति माना है। उसके अनुसार ..... कवि या कलाकार प्रकृति की गोचर वस्तुओं का नहीं, वरन् प्रकृति की सृजन प्रक्रिया का अनुकरण करता है।' [59] प्रश्न यह उठता है कि क्या वास्तव में कवि या कलाकार गोचर वस्तुओं का अनुकरण नहीं करता ? 'गोचरता' तो इस दृश्यमान जगत का सत्य है और यहीं 'गोचरता' कवि या कलाकार के भाव जगत में चित्र रूप का निर्माण करती है। यहाँ अरस्तू के विचार में अतिवादिता दिखाई देती है। इस संदर्भ में एबर क्रोम्बे ने लिखा है कि 'अरस्तू का तर्क था यदि कविता प्रकृति का केवल दर्पण होती तो वह हमें उससे कुछ अधिक नहीं दे सकती थी, जो प्रकृति देती है, पर तथ्य यह है कि हम कविता का आस्वादन इसलिए करते हैं कि वह हमें वह प्रदान करती है जो प्रकृति नहीं दे सकती।'[60] यहाँ कविता के लिए प्रयुक्त 'आस्वादन' शब्द का प्रयोग प्राकारान्तर से ऐन्द्रिय एवं बहुआयामी बिम्बों को अपने में छिपाए हुए हैं।

रोजमंड ट्यूबे के मत से 'नवोत्थान' काल के कवि का बिम्ब विधान अनुकरण सिद्धांत की व्याख्या के अनुरूप था। वह कला को अनुकृति का परिणाम तो मानता था, किंतु उसकी दृष्टि में कलाकृति से हमें जो आनन्द मिलता है उसका कारण यथार्थ जगत की वस्तु से उसका साम्य नहीं, वरन् कलाकृति का रूपगत सौंदर्य है। वह बिम्ब को इस कलात्मक रूपाकृति का एक तत्व मानता था। अनुकरण करते समय कलाकृति प्रकृति में क्रम–विन्यास तथा संगति ढूँढने की चेष्टा करती है। कला को क्रमगत संगति के रूप में देखने के कारण कलाकार उपुयक्तता के आधार पर बिम्बों का चयन करता है। इसके सिवा उसके मत से अनुकृतियों में केवल क्रमगत आकारों का ही नहीं, वरन् अमूर्त्त भावों तथा मूल्यों का भी महत्व है। यह प्रवृत्ति भी उसकी बिम्ब–रचना को प्रभावित करती है। सुस्पष्ट

ऐन्द्रिक–बोध से इसका विरोध होने की दशा में संवेदनों की सुस्पष्टता तथा निश्चितता को तिलांजलि दे देता है। इस प्रकार 'कृत्रिमता', सज्जात्मक चयन की प्रवृत्ति और आपेक्षिक संवेदनात्मक अस्पष्टता 'नवोत्थानकालीन काव्य के बिम्ब–विधान' की मुख्य विशेषताएँ मानी जा सकती है।'[61]

2. <u>औदात्य सिद्धांत में बिम्ब के संकेत –</u>

लौंजाइनस काव्य में औदात्य चिंतन के प्रतिष्ठापक थे। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कृति 'on the sublime' में दो प्रकार के औचित्य–अलंकारौचित्य एवं शब्दौचित्य की विवेचना की है। उन्होंने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि अलंकारों एवं शब्दों के उचित प्रयोग से ही काव्य के प्राण तत्व उदात्त तत्व की सिद्धी होती है। अलंकारों को वे चमत्कार का पर्याय न मानकर वे प्रसंगानुकूल उसके प्रयोग के हिमायती थे। उन्होंने विस्तारणा, अतिश्योक्ति, विपर्यय, व्यतिक्रम, पर्यायोक्ति आदि अलंकारों की विवेचना की है। अलंकार अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम हैं, इसलिए प्रसंगवत विभिन्न बिम्बों का सृजन करते हैं। लौंजाइनस उदात्त विचारों के लिए 'कल्पना' और प्राचीन काव्यानुशीलन को आवश्यक मानते थे। वैसे 'लौंजाइनस ने प्रत्यक्ष रूप में कल्पना तत्व की तो चर्चा नहीं की है, केवल जहाँ बिम्बों का वर्णन किया है, वहाँ उनकी निर्मात्री शक्ति के रूप में उसकी चर्चा की है। उनका बिम्ब से अभिप्राय कल्पना चित्र से है और उसकी प्रेरणा–शक्ति वह कल्पना को मानते है।'[62]

लौंजाइनस ने भाव–आवेग का उदात्त को महत्वपूर्ण तत्व के रूप में प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार भाव आवेग निम्न आवेग व भव्य आवेग के रूप में उत्पन्न होते हैं। निम्न आवेग का सम्बन्ध भाव से है–दया, शोक, भय आदि भाव इसके अंतर्गत आते है, इसलिए विविध भावों में बिम्ब सृजित होते हैं। पाश्चात्य एवं पौर्वात्य समीक्षकों ने एक स्वर से बिम्ब के लिए भाव की अनिवार्यता स्वीकार की है। हौरेस ने औचित्य सिद्धांत के अनुसार अपने काव्य सिद्धांत की विवेचना की है। इस प्रकार, आचार्य क्षेमेन्द्र का औचित्य सिद्धांत एवं लौंजाइनस के औदात्य सिद्धांत में बिम्ब के प्रयोग सम्बन्धी बहुत सी समानताएँ हैं, जिसे देखा जा सकता है।

3. <u>अभिव्यंजनावाद (क्रोचे) में बिम्ब के संकेत –</u>

क्रोचे ने काव्य में अभिव्यंजनात्मक शक्ति को आवश्यक माना है। अभिव्यंजना का आशय अभिव्यक्ति की कलात्मकता से है। कवि में कल्पना और प्रतिभा जन्मजात

होती है। कविता में भावों का सृजन इसी कल्पना के द्वारा होता है। सामान्यतः क्रोचे ने ज्ञान को दो रूपों में विभाजित किया है–प्रथम सहजानुभूति और दूसरा प्रमेय ज्ञान। की उत्पत्ति बुद्धि से। 'सहज ज्ञान बिम्बों की रचना करता है तो तर्क ज्ञान पदार्थ–बोध की। बुद्धि की सहायता से हम निर्णय करते हैं कि मनुष्य विचारशील प्राणी होता है, कल्पना हमारे मानस में ऐसे प्राणी का बिंब अंकित कर देती है।'[63] क्रोचे के अनुसार सहजानुभूति आंतरिक प्रक्रिया है जिसमें वे रूप को सौदर्य का मूल आधार मानते है।' इसी के द्वारा कलाकार भावनाओं तथा संवेगों के वेग को नियंत्रण में रखता है, और प्रभावों को बिम्बों में अभिव्यक्त कर स्वयं उससे मुक्त हो जाता है।'[64]

क्रोचे जिस सहजानुभूति को अभिव्यंजना माना है वह विशुद्ध आतंरिक है, उसका प्रकाशन उसकी दृष्टि में आवश्यक नही है। बिम्ब निर्माण की दृष्टि से सहजानुभूति पर्याप्त है क्योंकि जब कलाकार किसी शब्द को अपने मानस में ग्रहण कर लेता है अथवा जब किसी आकृति या मूर्त्ति की छवि आत्मसात् कर लेता है, तब वह मानसिक जगत में मूर्त्तित हो जाती है। सहजानुभूति में वस्तु के स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण का ही महत्व है और बिम्ब में मूर्त्तिकरण का। इस प्रकार अभिव्यंजना और बिम्ब का यथोचित सम्बन्ध है।

कुंतक की तुलना में क्रोचे का विचार फलक सीमित है। क्रोचे यदि मात्र 'सहजानुभूति' को काव्य में प्रतिष्ठित करते हैं तो कुंतक कथन की वक्रता को महत्व देते हैं। बिम्बांकन दोनों से होता है। यह बात अलग है कि कुंतक यदि 'विषय वस्तु को महत्व' देते है तो क्रोचे मानव जीवन को।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'बिम्ब' आधुनिक पाश्चात्य जगत की सोच है। प्राचीन भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य के समीक्षा सिद्धांत में प्रत्यक्षतः तो नहीं अप्रत्यक्षतः प्रकारान्तर से बिम्बों की ओर संकेत मिलता है। बिम्ब को कविता की पूर्णता के रूप में माना गया है इसीलिए अंलकार, वक्रोक्ति, गुण, रस, रीति, औचित्य, ध्वनि, अनुकरण, औदात्य एवं अभिव्यंजनापरक सिद्धांतों में उसे आसानी से देखा जा सकता है। ये सिद्धांत अपने में सीमित हैं, किन्तु बिम्ब असीमित।

––00––

➢ बिम्ब और कवि

आनन्द वर्धन ने लिखा है कि "काव्य संसार अपार होता है, उसका पार नहीं पाया जा सकता। इस संसार का प्रजापति कवि ही हुआ करता है और एकमात्र कवि ही वह जैसा चाहता है, इस विश्व को वैसा ही बनना पड़ता है।[65] कवि का पूरा कार्य व्यापार शब्द पर आधारित होता है, शब्द अर्थ की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। शब्द अपने लक्षित अथवा व्यंजित रूप में जितना ही सधा अथवा शोध हुआ होगा, उसका प्रभाव उतना ही गहरा पड़ेगा। सच तो यह है कि कवि की शब्द–सृष्टि ही अर्थ–सृष्टि है। यहाँ शब्द और अर्थ मिट्टी और घट के समान कभी पृथक नहीं होते।[66]

कवि द्वारा देखी, सुनी अथवा अनुभूत सत्य वस्तुओं का चित्रण हमारे हृदय में भावों को जगाने में समर्थ होते हैं किसी वस्तु के साहचर्य के साथ उसके प्रति मोह पैदा होता है और परिचय की घनिष्टता में ही भावानुभूति छिपी रहती है।[67] काव्य बिम्ब शब्द और अर्थ के माध्यम से हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। कवि अपनी समृद्ध भावना और कल्पना के द्वारा इन बिम्बों को हमारे सामने उपस्थित करता है। इस तरह काव्य बिम्ब के निर्माण में सर्जनशील कल्पना और गहरी रागात्मकता कारण स्वरूप हुआ करते हैं। डॉ.कृष्णचन्द्र वर्मा के शब्दों में काव्य–बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस छवि है, जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।[68]

समर्थ एवम् ऊर्जावान कवि में कल्पना, भावना, वासना एवम् अनुभूति की गहनता वस्तु सत्य का हूबहू वैसा ही बिंबाकन करती है, जैसा भाव कवि के मानस पटल पर अंकित होता है जैसे :–

बीज वृक्ष बन सकता, बनता,
जब होता उसका प्रस्फोट।
लेता है आकार पराक्रम,
होती है जब उस पर चोट।

\+ + +

तीर वचन का, लोह–तीर से
अधिक बींध देता है मर्म
साधारण संसद से होता
भिन्न समर–भूमि का धर्म।[69]

उक्त उदाहरण में वाणी की कर्कशता तथा कठोरता में 'तीर' का बिम्बांकन किया गया है दूसरी ओर 'साधारण संसद' और 'समरभूमि' में समूह की स्थिति होते हुए भी भिन्नता का दर्शन कराया गया है, जो कवि की प्रगल्भ भाव–चेतना का सूचक है। एक अन्य उदाहरण से कल्पना एवं भावना द्वारा बिम्बांकन की इस प्रक्रिया को आसानी से समझा जा सकता है :–

केंचुल को फोड़ते हुए उठो,
जैसे बीज छिलके को फोड़ता हुआ उठता है।
संघर्ष के फौलादी झकोरों को,
तोड़ते हुए बढ़ो,
जैसे अंकुर,
कंकड़, पत्थर तोड़ता हुआ बढ़ता है।
फूलो फलो
जैसे पेड़ फूलता है।[70]

उक्त उदाहरण में 'केंचुल', 'बीज' और 'अंकुर' के बिम्बों से आशा और उत्साह का भाव जगाया गया है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कल्पना के दो रूपों को स्वीकार किया है, जिनमें एक विधायक कल्पना है तो दूसरी ग्राहक कल्पना। कवि में विधायक कल्पना होती है। कल्पना और भाव संचार की तीव्रता पर काव्य की रमणीयता निर्भर करती है। इसीलिए आचार्य शुक्ल कविता में अर्थग्रहण को महत्व न देकर 'बिम्ब–ग्रहण' को महत्व देते हैं।[71]

कवि का संबंध चेतना से होता है, चेतना जितनी जागृत एवं समृद्ध होती है, वस्तु की पहचान उतनी ही तीव्रतर होती है। संसार व प्रकृति को वह अपने दृष्टि

से देखता है। जितना ही वह प्रकृति एवं सृष्टि में व्याप्त होता जाता है, उतना ही उसका अंतर्मन जीवन की एक–एक परतों को खोलता जाता है। कवि उच्च मार्ग से प्रेरित होकर काव्य की रचना करते हैं, भावना, उदात्त कल्पना तथा अनुभूति के संगम से आनंद की सृष्टि करते हैं। पी.बी.शेली ने कवि को विधाता मानते हुए लिखा है कि "कवि उन विराट परछाइयों को प्रतिबिम्बित करने वाले दर्पण होते हैं जिनको भविष्य, वर्तमान पर प्रक्षेपित करता है, शब्द जो अभिव्यक्त करते हैं, वे उसे नहीं समझते, तुरही जो युद्ध के लिए आह्वान करती है, उसे नहीं पता कि वह क्या प्रेरणा देती है, वह प्रभाव जो संवेदित नहीं किया जाता, पर संवेदित होता है, कवि वह प्रभाव है जो संवेदित नहीं किया जाता पर संवेदित होता है, कवि इस संसार के मान्यता वंचित विधाता हैं।[72] इस प्रकार मन की संवेदनाओं का सीधा संबंध इन्द्रियों से है और इन्द्रियों का सम्बन्ध बाह्य जगत के वस्तु व्यापारों और उनके गुणों से है।

आधुनिक कवि बिम्बों का कविता में अधिकाधिक प्रयोग करते हैं। बिम्बों के माध्यम से कवि की भावनाएँ, अनुभूतियाँ और कल्पनाएँ चित्रमय होती चली जाती हैं। प्रेरक भाव–व्यंजक भाषा और कवि की कल्पना पर ही बिम्ब–विधान की सफलता और उत्कृष्टता निर्भर करती है, बिम्ब केवल वर्णित वस्तु का मानसिक पुनर्प्रत्यक्ष ही नहीं कराती बल्कि उन्हें किसी गूढ़ अनुभूति में लपेट कर हृदयग्राह्य भी बना देते हैं।[73] इस प्रकार बिम्ब–विधान कवि के व्यक्तित्व के अनुरूप ही हुआ करता है। कवि की स्वानुभूति, उसके संस्कार, उसके जीवनानुभव, उसका अध्ययन, उसका मस्तिष्क जिस प्रकार होगा, उसी पर उसका बिम्ब–विधान निर्भर करेगा।

कवि अपनी कविता के द्वारा किसी न किसी रूप में जीवन की व्याख्या करता है। जीवन के प्रति उसकी अनुभूति जितनी गहरी होगी, काव्य में उसकी पैठ उतनी ही अधिक होगी। प्रमोद वर्मा के शब्दों में "काव्यानुभूति न तो जीवनानुभूति से विलग कोई स्वतः सापेक्ष अनुभूति है और न मात्र ऐन्द्रिक अनुभूति है। काव्य रचना की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार चलती है कि कवि की ऐन्द्रिक अनुभूति के साथ कल्पना और विचार जुड़ते हैं, घुलते मिलते हैं। स्मृति की गुहा से निकलकर कुछ

चित्र आकर जुड़ जाते हैं।[74] अंग्रेजी के कवियों में शेक्सपीयर सबसे महान् माने जाते हैं जिसके संबंध में केरोलीन स्पर्जियन लिखती हैं कि "शेक्सपीयर के पैर मजबूती से धरती पर जमे थे, उनकी आँखें अपने चारों ओर के जीवन पर केंद्रित थीं और अनुवीक्षण शक्ति इतनी प्रखर थी कि पक्षी की उड़ान, फूल का विकास, स्त्री के घर गृहस्थी के कामकाज अथवा मनुष्य के चेहरे पर अंकित सूक्ष्म से सूक्ष्म रेखाएँ भी उनसे नहीं छूटती थी।"[75]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आधुनिक कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से शब्द बिम्ब, वर्ण बिम्ब, समानुभूतिक बिम्ब, व्यंजनाप्रवण, सामासिक बिम्ब, असंवेष्टि या प्रसृत बिम्बों के वर्णन के साथ ही साथ ऐन्द्रिक बिम्बों के अंतर्गत चाक्षुष बिम्ब, श्रव्य या नाद बिम्ब, घ्राणिक या घ्रातव्य बिम्ब, गत्वर बिम्ब, रूप बिम्ब, रस बिम्ब, वेगोद्‌बोधक बिम्ब, सहसंवेदनात्मक अथवा मिश्र बिम्ब तथा उदात्त बिम्बों का काव्य में प्रयोग किया है।

---00---

➢ बिम्ब और काव्य

काव्य जीवन की व्याख्या है। जीवन का विस्तार अनन्त सुखात्मक दुखात्मक सम्भावनाओं, समस्याओं के आलोक में प्रखर और मधुर है। जहाँ कवि की कल्पना हृदय से जुड़ी वहीं रागमयी बन बहने लगी, और जहाँ बुद्धि से जुड़ी वहीं चिंतन की अजस्त्र धारा प्रवाहित करने लगी। हृदय से राग और बुद्धि से विराग–ये दोनों लौकिक एवं अलौकिक जगत की व्याख्या करते हैं किन्तु हृदय से जुड़ी रागमयी अनुभूति काव्य को सरस बना देती है।

भारतीय एवम् पाश्चात्य विद्वानों ने अपनी–अपनी दृष्टि से काव्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है, सभी के अपने–अपने तर्क हैं। अपनी–अपनी व्याख्या हैं। लगता है विद्वानों की इतनी व्याख्या के बावजूद कविता अव्याख्यायित ही रह गई।

वामन ने 'रीति' की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'विशिष्ट पद रचना रीतिः'[76] अर्थात् विशेष प्रकार की शब्द रचना रीति है। आचार्य भामह ने 'तद्दौषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि'[77] अर्थात् निर्दोष और गुणों से युक्त शब्दार्थ काव्य है जिसमें अलंकार हो या न हो। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार रसात्मकं वाक्य काव्यम्।[78] अर्थात् रसात्मक वाक्य ही काव्य है। पंडितराज जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाले शब्द को काव्य कहा है।[79] आचार्य शुक्ल रसवतधारणा के आलोक में लिखते हैं कि 'जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते है।'[80] जयशंकर प्रसाद ने काव्य को आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति माना है, जिसका सम्बन्ध, विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक धारा है।[81] उक्त भारतीय विचारकों के विचार कहीं न कहीं मत विशेष के आग्रह में सिमट से गये हैं। कविता किसी सिद्धांत के वशीभूत नहीं है। कविता के बाद ही सिद्धान्त का जन्म हुआ, इसलिए किसी सिद्धान्त के आलोक में कविता की व्याख्या करना उचित नहीं, इसीलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल और जयशंकर प्रसाद की परिभाषा बहुत दूर तक जीवन के रहस्य को

खोलती हुई कविता के उत्स को स्पष्ट कर देती है।

पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य को अपने दृष्टिकोण से प्रभावित किया है। वर्ड्सवर्थ के अनुसार "कविता शांति के क्षणों में स्मृत सशक्त मनोवेगों का सहज प्रवाह है।[82] वर्ड्सवर्थ ने मनोवेगों के द्वारा काव्य में वस्तु तत्व के स्थान पर 'भाव' तत्व की सत्ता को स्वीकार किया है। शेली की मान्यता रही है कि 'कविता सबसे सुखी और सर्वोत्तम मस्तिष्कों के सर्वोत्तम और सबसे सुखी क्षणों का अभिलेख है।' (Poetry is the record of the list and the happiest moments of the hapliest and liest minds.) मैथ्यू आर्नोल्ड कविता की मूलरूप में जीवन की आलोचना मानते हैं। (Poetry is the best words in their best order.) डॉ. जानसन के अनुसार 'कविता वह सत्य है जो कल्पना की सहायता से बुद्धि के द्वारा सत्य और आनन्द का समन्वय करती है।' इस परिभाषा में कविता के अनेक प्रमुख आन्तरिक और बाह्य तत्व समाविष्ट है। 'सत्य', 'आनन्द', 'कल्पना' और 'बुद्धि' कविता के आन्तरिक तत्व हैं, तो कला उसका बाह्य तत्व है जिसमें भाषा, छंद, अलंकार आदि अभिव्यक्ति में विविध उपकरण आ जाते हैं। सत्य से डॉ.जानसन का अभिप्राय कवि के अनुभव की यर्थाथता से है और आनंद का संबंध कवि के भाव लोक से है। बुद्धि से कविता में नूतन विचारों की प्रतिस्थापना होती है। कल्पना तो काव्य का क्रियमाण तत्व ही है।[83]

वस्तुतः काव्य बिम्ब के आवश्यक उपकरण के रूप में चित्रात्मकता, भावात्मकता, शब्द अर्थ, रूपकात्मकता, ऐन्द्रियता, कल्पना आदि को आवश्यक माना गया है। 'काव्य का प्रेरक तत्व है भाव।' भाव संस्पर्श के बिना काव्य बिम्ब का अस्तित्व सम्भव नहीं है। बिम्ब का निर्माण सक्रिय कल्पना से होता है, अतः कल्पना ही बिम्ब का कारण है। शब्द और अर्थ भावों को प्रक्षेपित करते हैं, अतः समुचित भाषा ही बिम्ब की उपकरण सामग्री है। काव्य में बिम्ब के स्वरूप गठन पर निम्नानुसार विचार किया जा सकता है :–

(1) <u>बिम्ब और चित्रात्मकता</u> :–

लेविस ने लिखा है कि सरलतम रूप में बिम्ब को शब्द चित्र ही समझना चाहिए।[84] (In its simplest form, it is a picture mad out of words.) बोलचाल

की भाषा में यह चित्रात्मकता बिम्ब मुहावरों एवं लोकोक्तियों में देखी जा सकती है।[85] कु. कैरोलिन स्पर्जियन के अनुसार 'काव्य बिम्ब एक छोटा सा शब्द चित्र है, जिसे कोई कवि या गद्य लेखक अपने भावों, विचारों को अभिव्यक्त करता है, उन्हें सुंदरता प्रदान करता है, और रमणीयता के साथ चित्रित करता है.... अपने भावों एवं विचारों की गहनता एवं अधिकता को जिसको उसने अनुभव किया है, जिसके विषय में उसने सोचा था, विचारा है – हम तक पहुंचाने के लिए संप्रेषणीय बनाने के लिए कवि इसी शब्द चित्र का आश्रय लेता है।'[86] पर्वतीय प्रदेश में पावस ऋतु की चित्रमयता यहाँ दृष्टव्य है :–

धँस गये धरा में समय शाल,
उठ रहा धुआँ जल गया ताल
यो जदल–यान में विचर–विचर
था इन्द्र खेलता इन्द्रजाल।। ——— पंत

उक्त कविता में मूसलाधार वृष्टि से शालवृक्ष का न दिखाई देना, तथा समय का पता न चलना शब्द रेखा से दृश्य का चित्रांकन किया गया है, कोई भी चित्रकार इस शब्द रूपांकन से आकाश में मंडित तथा तीव्रता से दौड़ रहे बादलों का चित्रांकन कर सकता है।

(2) <u>बिम्ब और भाव</u> :–

भाव कविता का प्रमुख विधायक तत्व है। कवि की अनुभूति से सम्पृक्त होने के कारण शोक और भय जैसे दुखात्मक भाव भी सुखात्मक भाव के समान आह्लादकारी बन जाते हैं। भाव के कारण ही कविता जीवन जगत् से रागात्मक स्तर पर जुड़ती है।[87] भाव संक्रामक होते हैं, इनमें क्षिप्रता होती है। ये कवि के हृदय में स्थित रहते हैं और बिम्ब योजना द्वारा पाठक तक पहुंचते हैं। इस रूप में भाव ही काव्य का अर्थ और इति है। भाव की अनुभूति से ही कवि कर्म का प्रारंभ होता है। उसी भाव की अनुभूति श्रोता या पाठक में जागृत कर देना कवि का अंतिम लक्ष्य है।[88] बिम्ब के पृष्ठभूमि में कवि की भावानुभूति ही रहती है जो बिना किसी आग्रह अथवा पूर्वाग्रह के पाठक अथवा श्रोता के हृदय में साधारणीकरण की प्रक्रिया से बिम्बित होती है।

(3) विचार या बुद्धि तत्व :–

यदि भावना की अतिशयता कविता में अतिरंजना लाकर उसे सत्य से दूर ले जाती है, तो भावहीन विचारों की प्रबलता कविता को निष्प्राण बना देती है, अतएव भावगर्भित विचार या विचार वेष्टित भाव ही कविता को सुंदर और जीवनोपयोगी बनाते है।[89] विचार अथवा बुद्धि भी काव्य में सत्य को प्रतिष्ठित करती है। किन्तु यदि वह हृदय की सत्ता से परे केवल बुद्धि अथवा विचार सत्ता का प्रकाशन करना चाहती है तो उसमें चिंतन की अधिकता तो मिलेगी किन्तु भाव शून्यता के कारण उसका सही मायने में बिम्बांकन नहीं हो सकेगा।

(4) बिम्ब एवं कल्पना तत्व :–

कवि की कल्पना–प्रवणता काव्य को रोचक एवं प्रभावशाली बनाती है। कल्पना वस्तु–जगत् और कवि के बीच संबंध स्थिर करती है और बाह्य प्रकृति जैसे ही मानस पटल पर बिम्ब रूप में अंकित हुई कि कला का जन्म हुआ।[90]

कल्पना शब्द की व्युत्पत्ति 'क्लृप' धातु से हुई है। जिसका अर्थ है रचना अथवा सृष्टि। आधुनिक आलोचना में इस शब्द का प्रयोग 'इमेजिनेशन' के रूप में किया जाता है। इसके आधार पर कल्पना एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया मानी जा सकती है जिसमें कवि मूर्तियों अथवा रूपों की सृष्टि करता है।[91] संस्कृत काव्य शास्त्र में 'इमेजिनेशन' के लिए प्रतिभा शब्द का प्रयोग किया है। मम्मट ने प्रतिभा को पूर्व जन्म के संस्कारों से प्राप्त शक्ति कहा है, जो कवित्व का बीज है, इसके अभाव में काव्य–सृष्टि असंभव है। 'शक्तिः कवित्व बीज रूपः संस्कार विशेषः। यां बिना काव्येन प्रसरेत्, प्रसृतं वा उपहसनीयं स्यात।' (काव्य प्रकाश 1.3 वृत्ति)

राजशेखर ने प्रतिभा के दो विभाग किये हैं :– 1. कारयित्री प्रतिभा, 2. भावयित्री प्रतिभा। [92] ये दोनों प्रतिभाएँ काव्य को कलात्मक उत्कर्ष देती है। कालरिज काव्य सृजन में कल्पना की महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकार करते हुए इसके छः कार्य स्वीकार करते है (1) ऐक्यविधान Itunities (2) सार संचयन Itabstracts (3) संशोधन Itmodifies (4) उपस्थितिकरण It-aggregates (5) संग्रहण It-evokes तथा (6) संगठन It-Combines.[93]

इस प्रकार कल्पना काव्य का प्रधानगुण है। कवि कविता के द्वारा दृश्य को मूर्त्त अथवा अमूर्त्त रूप में व्यक्त करता है। भावों को कल्पना ही छवि का साकार अमलीजामा पहनाती है। कल्पना जितनी ही प्रखर होगी, उसका बिम्ब उतना ही स्पष्ट एवम् मूर्तिवंत होगा। ध्यान देने की बात यह है कि कविता मात्र कोरी कल्पना का दस्तावेज नहीं है वह तो सत्यं शिवं और सुंदरम् की अधिष्ठात्री देवी है जिसका श्रृंगार तथा निखार कल्पना के द्वारा होता है। कभी वह अलंकारों के रूप में अभिव्यक्त होती है तो कभी प्रतीक के रूप में, कभी व्यंजना के रूप में अपनी छटा दिखाती है तो कभी लक्षणा के रूप में। इस प्रकार भावों के विविध वातायन से झांकती हुई सार्थक कल्पना बिम्बों का संसार रचने में समर्थ होती है।

बिम्ब और काव्य भाषा :–

कविता के उपकरणों में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भाषा आत्मप्रकाशन का सशक्त माध्यम है। विचार विनिमय का सहज साधन है। काव्यभाषा भावों को प्रस्तुत करने में जितनी ही कारगर होगी उसका श्रोता या पाठक पर उतना ही लाभकारी प्रभाव पड़ेगा। हड़सन ने 'आत्माभिव्यक्ति की कामना को साहित्य सृजन का प्रधान प्रेरक तत्व माना है।'(94)

ऋग्वेद में एक स्थान पर कवि के लिए 'वत्सो वा मधुमद्वचोऽशंसीत्काव्यः कविः' (8, 8, 11) कहा गया है। सायण के अनुसार काव्य कवि का पुत्र है, जो माधुर्य से भरी वाणी बोलता है। इसी प्रकार संस्कृत साहित्य में कवि के सम्बन्ध में कहा गया है कि :–

मन्दं निक्षिपते पदानि परितः शब्दं समुद्वीक्षते।
नानाथहिरणं च कांक्षति मुदालंकारमाकर्षति।।
आदत्ते सकलं सुवर्णनिचयं धत्ते रसान्तर्गतं।
दोषान्वेषण तत्परो विजयते चोरोपमः सत्कविः।।

भाषा की दृष्टि से विचार करें तो वर्ण, शब्द, पद, अर्थ, अलंकार, रस सभी बातों का समुचित और सुंदर समावेश कवि के 'काव्य' में होता है। वर्ण, शब्द और पद की सम्यक् योजना भाषा का पक्ष है, पर उस योजना से जो अलंकार और रस

भावादि की व्यंजना होती है, वही काव्य भाषा का रूप बनाती है। (नया काव्य शास्त्र, भगीरथ मिश्र प्रथम संस्करण 1993 पेज 09) कालरिज ने बायोग्राफिया लिटरेरिया (पेज–32) में लिखा है कि "Good sense is the body of Poetic genius, Fancy its Drapery, Motion its life and Imagination, the soul, that is every where and in each : and forms all into one graceful and intelligent whole." अर्थात् अर्थ, शब्द, चमत्कार, लय और कल्पना यथोचित रूप में मिलकर जब एक परिपूर्ण रचना का निर्माण करते हैं, तब वह कविता या काव्य बनती है।

आचार्य शुक्ल का यह बहुचर्चित कथन कि कविता का उद्देश्य (अर्थ) ग्रहण कराना मात्र नहीं होता, बिम्ब ग्रहण कराना हुआ करता है। कवि की अनुभूति भाषा में ही अभिव्यक्त होती है। बिम्ब कवि की अनुभूति से अभिन्न वस्तु है। अतः काव्य में बिम्बात्मकता के लिए आवश्यक है कि भाषा अनुभूति को ज्यों का त्यों प्रकाशित करने में समर्थ हो। कवि में अनुभूति हो और उसे अभिव्यक्त करने में समर्थ भाषा न हो तो काव्य के रूप में अनुभूति के व्यापीकरण में बाधा होगी। यों तो भाव व्यंजना भाषा की मोहताज नहीं हुआ करती, किंतु काव्य के क्षेत्र में 'भरे भौन में करत है नैनन ही सों बात' वाली बात सिद्ध नहीं होती क्योंकि बिम्बों का प्रकाशन शब्दों द्वारा ही होता है। भाव, अनुभूति कैसी भी हो, वह तो शब्द के सांचे में ही ढलती है। कविता के लिए चित्र भाषा की आवश्यकता होती है। जो भावों या दृश्यों को एक आकार अथवा बिम्ब रूप में प्रस्तुत करती है। भाषा में 1. व्यंजकता, 2.चमत्कारहीनता, 3. रूपकात्मकता, 4. ध्वन्यात्मकता (नाद सौंदर्य) का होना आवश्यक है।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने व्यंजना शब्द–शक्ति के परिप्रेक्ष्य में लिखा है कि वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ दोनों के अतिरिक्त जिस किसी प्रयोजनीय अन्य अर्थ का बोध होता है, उसे व्यंग्यार्थ कहते हैं, जिस शब्द से ऐसे अर्थ का बोध होता है उसे व्यंजक कहते हैं। जिस शब्द शक्ति से उस अर्थ का बोध होता है उसे 'व्यंजना' शब्द शक्ति कहते है।[95] यों तो 'व्यंजक' का कोषगत अर्थ होता है, 'व्यक्त' या प्रकट करने वाला, सूचित करने वाला। व्यंग्यार्थ से काव्यगत भावों में क्षिप्रता आती है। व्यंग्य जितना ही गहरा होगा काव्य बिम्ब भी उतना ही प्रभावकारी

होगा। व्यंजना के अतिरिक्त मोटे तौर पर लक्षणा एवं लोकोक्ति तथा मुहावरे भी काव्य भाषा में प्रयुक्त होकर उसकी व्यंजकता को बढ़ा देते है।

कवि को चमत्कार पूर्ण भाषा से बचना चाहिए क्योंकि जहां भी भाषा में चमत्कार हुआ वही पर वह अपनी सहजता और सामान्यीकरण की प्रक्रिया को धूमिल कर देता है। रीतिकाल के आचार्य भाषा के चमत्कारी प्रयोग के कारण ही दुरूह हो गये। केशव को 'कठिन काव्य का प्रेत' इसी चमत्कारी भाषा–प्रयोग के कारण ही कहा गया। अस्तु कवि की भाषा सहज, सरल, प्रवाहमयी तथा मर्म को छूने वाली होनी चाहिए तभी वह काव्य के बिम्ब को चरितार्थ कर सकेगी। कवि का बुद्धि बल, अतिश्योक्तिपूर्ण रचना तथा शब्दालंकारों की प्रस्तुति काव्य में 'बिम्ब ग्रहण' में बाधा उपस्थित करती है जैसे :–

एकदा तु कतिपयामासापगमे काकली गायन इव समृद्ध निम्नगा नद .... सायन्तन समय इव नर्त्तित नीलकंठः समाजगाम वर्षा समयः।[96]

उक्त उदाहरण में वर्षा ऋतु से कोई स्पष्ट बिम्ब नदी का बन पाता, ध्यान पूरी तरह शब्दो पर ही केन्द्रित हो जाता है जिससे बिम्ब में बाधा आती है, इसे न तो दृश्य कह सकते हैं और न ही यहाँ सादृश्य है। सरस काव्य में भाषागत क्रीड़ा की आलोचना संस्कृत आलोचकों ने भी की है। सी.डे.लेविस मानते हैं कि कविता की भाषा सहज होनी चाहिए। बिम्ब के लिए सरल, स्वाभाविक भाषा की आवश्यकता है, चमत्कार प्रधान नहीं।[97]

काव्य भाषा में रूपकात्मकता बिम्ब विधान की दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है। इसमें रूपक, समासोक्ति मानवीकरण आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। लेविस के अनुसार किसी कवि को मापने के लिए उसके बिम्बोंया मेटाफर (रूपक) की तीव्रता और मौलिकता देखनी चाहिए।[98] आगे लेविस लिखते है कोई भी कविता आद्यंत संबंध सूत्रों से जुड़ी रहती है और ऐसी स्थिति में प्रतीक बिम्ब एक वस्तु मात्र की ही पुनर्रचना नहीं करता अपितु वह वस्तु को संबंधों के साथ रचता है और इस तरह से वह बिम्ब कविता के संबंध सूत्रों की श्रृंखला के साथ एकाकार हो जाता है।[99] सादृश्यता के कारण भावों के आरोपण द्वारा ही अमूर्त वस्तु को बिम्ब रूपायित करता है। अचेतन पदार्थ पर एक चेतन धर्म का आरोप ही विषय

को सजीव बना देता है। एजरापाउण्ड एवं सिटवेल आदि विद्वान तथ्यों के सटीक उपस्थापन में ही बिम्ब की इतिश्री मानते हैं।[100]

भाषा में बिम्ब विधान के उद्घाटन में ध्वन्यात्मकता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ध्वन्यालोककार ने लिखा है–जहाँ अर्थ स्वयं की तथा शब्द अपने अभिधेय अर्थ को गौण करके प्रतीयमान अर्थ को प्रकाशित करते हैं। उस काव्य विशेष को विद्वानों ने ध्वनि कहा है।[101] अर्थात् जहां प्रतीयमान अर्थ (व्यंगार्थ) वाच्यार्थ से अधिक सुंदर हो वहाँ ध्वनि का अस्तित्व स्वीकार किया जायेगा। अभिव्यक्ति की सफलता शब्दों की ध्वनन शक्ति पर अधिक निर्भर है। शब्द एक ओर तो अर्थ की प्रतीति कराकर वस्तु अथवा भाव का बिम्ब मानस नेत्रों के सम्मुख जगाते हैं और दूसरी ओर अपनी ध्वनि से अर्थ को मुखर करके एक ध्वनिचित्र भी उतार देते हैं। कविता की भाषा के शब्द सस्वर होने चाहिए।[102] इस प्रकार उक्त गुणों से परिपूर्ण भाषा विविध बिम्बों का उद्घाटन करने में सक्षम होती है।

––00––

➢ बिम्ब और रस

रस सिद्धांत भारतीय काव्य शास्त्र का सबसे प्राचीन व्यापक और बहुमान्य सिद्धांत है। काव्य में सबसे पहले रस की प्रतिष्ठा नाटक के संदर्भ में आचार्य भरतमुनि ने की। रस आस्वाद है, आह्लाद है, ब्रह्मानंद का सहोदर है–इसीलिए काव्यानंद है। रस को काव्य की आत्मा मानने का कारण भी यही था। रस का संपूर्ण कार्य व्यापार भाव जगत् से है। और ये मूल भाव रति, हास, आश्चर्य, उत्साह, क्रोध, भय, शोक, जुगुप्सा, निर्वेद मानव मन या हृदय में स्थायी रूप से रहते हैं। अनुकूल परिस्थिति में इनका प्रस्फुरण होता है। जिसे विरोधी अथवा अविरोधी भाव न तो अपने में छिपा सकते हैं और न ही दबा सकते हैं। ये बराबर रस में आदि से अंत तक बने रहते हैं जिसकी आनंदानुभूति अथवा काव्यानुभूति सहृदय अथवा दर्शक को होती रहती है। आचार्य भरत ने रस की व्याख्या नाटकों के संदर्भ में की है। इसलिए दृश्य और दर्शक का प्रत्यक्षतः संपर्क भाव से होता है, जो आरोपित किंतु मूर्त्त रूप में दर्शक के मानस पटल पर बिम्बित होता होता है जैसे यदि कोई पात्र राम के रूप में लीला कर रहा है, तो सहृदय में जो भाव जागृत होंगे वह राम के प्रति होंगे। पात्र के माध्यम से प्रेक्षक या दर्शक के मानसपटल पर राम का बिम्ब अंकित होगा, जिस कारण भाव का रसास्वादन वह आसानी से कर सकेगा।

काव्य की आनंदानुभूति दो रूपों में की जाती है – प्रथम, दृश्यकाव्य के रूप में, तथा द्वितीय श्रव्य काव्य के रूप में। नाटक दृश्य काव्य का श्रेष्ठतम रूप है। यह 'चित्रवत्' या 'दृष्टिगोचर' होता है। इसीलिए वामन दृश्य काव्य को श्रेष्ठ मानते हुये "काव्येषु नाटकम् रम्यम्" का कथन करते हुए प्रकारान्तर से उसकी चित्रात्मकता पर ही बल देते हैं जो बिम्ब विधान में सहायक होता है। आचार्य भरत ने रस के स्वरूप के संबंध में लिखा है कि 'यथाहि नाना व्यंजनौषधि ाग्व्यंसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः र्भवति, यथा हि गुडा दिभिर्द्रव्यैव्यंजनैरोषधिभिश्च षाऽवादयो रसा निर्वर्तन्ते तथा नानाभावोपगता अपि स्थायिनो भावा रसत्व माप्नुवन्तीतिं।'[(103)] अर्थात् जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजनों, औषधियों तथा द्रव्यों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है, जिस प्रकार गुड़ादि द्रव्यों, व्यंजनों और औषधियों से षाडवादि रस बनते हैं उसी प्रकार विविध भावों से संयुक्त होकर

स्थायी भाव भी (नाट्य), रस रूप को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार काव्य में रस संचार हेतु स्थायी भाव मूलभाव है। आगे वे लिखते हैं कि 'भावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रसनिष्पत्तिः'[104] अर्थात् विभाग, अनुभाव एवम् संचारी भाव के संयोग से रस की व्युत्पत्ति होती है। आचार्य धनंजय ने दृश्य काव्य को "आनन्दनिस्यन्दिषु रूपकेषु" कथन द्वारा रूपक माना है।[105] जिसका उद्देश्य सहृदयों को आनन्द स्वरूप रस का आस्वादन कराना है।

चक्षुग्राह्य होने के कारण नाटक में बिम्बात्मकता सहज हो जाती है। चूंकि दृश्य काव्य में हम वस्तु का अपनी स्थूल इन्द्रियों से प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। आँख, कान, नाक से देखते, सुनते व सूँघते हैं। श्रव्य काव्य में यह प्रत्यक्षीकरण स्थूल इंद्रियों से न होकर सूक्ष्म इन्द्रियों से होता है। यदि सही चित्रात्मकता श्रव्य काव्य में उत्पन्न कर दी जाए तो वहां भी रसानुभूति होती है। यह चित्रात्मकता ही बिम्ब विधान है।[106]

रस सिद्धान्त् का संपूर्ण आधार स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव ही हैं, जिसमें स्थायी भाव अमूर्त तथा शेष भाव मूर्त रूप में रहते हैं। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार 'रस के परिपाक के लिए अमूर्त स्थायीभाव का चित्रण न कर उसके कारण कार्य आदि के वर्णन की ही व्यवस्था की गई है। स्थायी भाव अमूर्त है, अतः उनकी व्यंजना ही सम्भव है। विभाव और अनुभाव मूर्त हैं, जिनका वर्णन किया जा सकता है, अतः कवि मूर्त कारण कार्य का वर्णन कर अमूर्त भाव की व्यंजना करने में सफल होता है, इस प्रकार प्रसंग नियोजन या विभावानुभाव योजना अमूर्त के मूर्त्तन का सबसे सुगम एवं व्यवहारिक उपाय है।'[107] पुष्टि हेतु उन्होंने मतिराम का निम्नलिखित दोहा प्रस्तुत किया है :–

ध्यान करत नन्द लाल कौ, नये नेह में बाम।
तनु बूड़त रंग पीत में, मन बूड़त रंग श्याम।।

उक्त उदाहरण में नये नेह की अनुभूति को 'बाम' और 'नन्दलाल' पर आरोपित कर आलम्बन (नन्दलाल), उद्दीपन (पीताम्बर का आकर्षण या श्यामल छवि) अनुभाव, (ध्यान करना कल्पना के द्वारा पीताम्बर में डूबना) संचारी (स्मृति

औत्सुक्य) के विधान के द्वारा बिम्बित किया गया है।[108]

इस प्रकार रस एक अमूर्त एवं सूक्ष्म तत्व है। इसकी अभिव्यक्ति के लिए मूर्त माध्यमों का सहारा लेना आवश्यक होता है। ये मूर्त अथवा स्थूल माध्यम ही बिम्ब के रूप में प्रस्तुत होते हैं। महर्षि वाल्मीकि द्वारा प्रणीत 'रामायण' का जन्म रस दशा में ही हुआ। क्रौञ्च वध के पश्चात् क्रौञ्ची के विलाप से कवि के हृदय में करूणा की जो अजस्त्रधारा प्रवाहित हुई, उसका कारण मैथुन रत क्रौञ्ची का वह मूर्त्त दृश्य ही था जो व्याध द्वारा वधित (क्रौञ्च पक्षी) होने पर क्रौञ्ची के विलाप से काव्य बिम्ब के रूप में प्रस्फुटित हुयी। 'कवि अपनी हृदयगत वेदना, भावना एवम् अनुभूति को शब्द के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। पाठक जब काव्यास्वादन करता है तो कवि वर्णित वस्तु की स्पष्ट छवि या मानसिक चित्र उसके सामने प्रस्तुत हो जाता है। यह बिम्बानुभूति, यद्यपि आत्मा स्थानीय है, परन्तु स्थूल रूप से इन्द्रिय ग्राह्य है, इन्द्रियों के माध्यम से ही बिम्ब आत्मा विषयक होता है, रसिक जब बिम्बास्वादन करता है तब उसकी स्थिति तादात्म्य रूप हो जाती है। तद्‌आकारता की प्राप्ति बिम्ब का महत्वपूर्ण फल है।'[109]

यों तो भारतीय काव्यशास्त्र या रस सिद्धांत में 'बिम्ब' शब्द का उल्लेख नहीं मिलता, किंतु रस से मण्डित कविता में बिम्बांकन की सहज प्रक्रिया देखी जा सकती है। रसांगों की कविता में उपस्थिति बिम्ब रूप में ही होती है। संस्कृत एवं हिन्दी के काव्यों में बिम्ब का विस्तृत संसार देखा जा सकता है। सूरदास ने कृष्ण के मथुरा जाते समय गोपिकाओं की विरह विगलित दशा का चित्रण किया है, जिसको रूपायित करने वाले बिम्बों की एक लघु प्रदर्शिनी अवलोकनीय है :–

रहीं जहाँ सो तहाँ सब ठाढ़ी।
हरि के चलत देखियत ऐसी, मनहूँ चित्र लिखि काढ़ी।।
सूखे वदन,स्त्रवति नैननि तैं, जलधारा उर बाढ़ी।।
कंधनि बांह धरे चितवति मनु द्रुमनि बेलि दव दाढ़ी।।
नीरस करि छाड़यो, सुफलक सुत, जैसे दूध बिनु साढ़ी।।
सूरदास अक्रूर कृपा तैं सही विपति तन गाढ़ी।।[110]

इस पद में चित्र दावाग्नि से झुलसी द्रुमलता तथा साढ़ीविहीन दूध के बिम्बों का मार्मिक नियोजन हुआ है। 'कृष्ण के मथुरा गमन के समय गोपियाँ चित्र की भाँति स्तब्ध रह गई, उनकी आँखों से अश्रुप्रवाह उमड़ पड़ा। विरह में खोयी कंधो पर बाँह रखे, वे ऐसे दीख रही थी, मानों दावाग्नि से झुलसी द्रुम लताएँ हों। कृष्ण को उनसे विमुक्त कर अक्रूर ने उन्हें मलाई रहित दूध के समान नीरस कर दिया।'

विभाव विशेष रूप से आधार बनकर रस को प्रकट करते हैं – इसके दोनों रूप आलंबन व उद्दीपन बिम्ब रूप में ही प्रस्तुत होते हैं। आचार्य शुक्ल ने स्पष्ट रूप में लिखा है कि 'रस के संयोजक जो विभाव आदि हैं वे ही कल्पना के प्रधान क्षेत्र है। विभाववस्तु चित्रमय होती है, जहां वह वस्तु श्रोता या पाठक के भावों का आलम्बन होती है, वहाँ उसका अकेला पूर्ण चित्रण ही काव्य कहलाने में पूर्ण हो सकता है, विभाव का मुख्य प्रयोजन विशिष्ट ज्ञान कराना है, वह सामान्य वस्तु को विशेष बनाकर पाठक या श्रोता के भावों का आलम्बन बनाता है। सामान्य का यह विशिष्टत्व बिम्ब द्वारा ही प्रतिपादित होता है।[111] आश्रय के हृदय में रतिभाव की प्रतिष्ठा के लिए आलम्बन के रूपगत सौंदर्य का दर्शनीय चित्र अंकित किया जाता है। तुलसी ने भी आलम्बन के रूप में सीता और राम दोनों के सौंदर्य को आकर्षक बिम्ब द्वारा दर्शाया है –

सुंदरता कहुँ सुन्दर करई। छवि गृह दीपशिखा जनुबरई।।[112]

उक्त उदाहरण में सौंदर्य को भी प्रोद्भाषित करने वाली सीता की सुंदरता को कवि ने चित्रशाला में ज्योतित दीपशिखा के चाक्षुष बिम्ब द्वारा बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। रामचरित मानस से श्रृंगार रस का एक अन्य उदाहरण दृष्टव्य है। जिसमें विभाव, अनुभाव एवं संचारी भाव में बिम्बों की छटा देखी जा सकती है :–

कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि।
मानहुँ मदन दुन्दुभी दीन्ही। मनसा विस्व विजय कहँ कीन्ही।।
अस कहि फिरि चितये तेहिं ओरा। सिय मुख ससि भये नयन चकोरा।
भये विलोचन चारू अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजेउ दृगंचल।।[113]

सीता के प्रति राम के रति भाव को कवि ने एक आकर्षक नाद बिम्ब के माध्यम से प्रस्तुत किया है। कंकण किंकिणी और नूपुर की मादक ध्वनि के आगमन दिशा की ओर राम ने देखा तो सीता के मुखचन्द्र के लिए उनके नेत्र चकोर बन गये। यहाँ राम सीता विषयक रति के आश्रय हैं, सीता आलम्बन हैं। कंकन, किंकिनी, सीता का मुख शशि, रूप आदि उद्दीपन हैं। नेत्रों का अचंचल होना अनुभाव और लुभाने में अभिलाषा और हर्ष संचारी भाव है। इस प्रकार उक्त उदाहरण में रसांगों द्वारा संपूर्ण दृश्य का बिम्बांकन स्तुत्य है।

यह आवश्यक नहीं है कि रस के चारों अंगों की उपस्थिति कविता में हो। यदि आलंबन गत नायक या नायिका का वर्णन सुंदर बिम्ब रूप में किया जाय तो अकेला विभाव भी रस की सिद्धि में सहायक हो सकता है। एजरा पाउण्ड ने बिम्ब की व्याख्या में भाव व विचार को प्रमुखता देते हुए लिखती है कि बिम्ब एक निश्चित समय में भावनात्मक एवं बौद्धिक विचारों को प्रकट करता है।[114] श्री कृष्ण चैतन्य के अनुसार 'काव्य में भाव गर्भित इमेज ही वैध माना जा सकता है।'[115] विषादात्मक भाव बिम्ब की एक झलक प्रस्तुत है :–

तुम कितनी सुंदर लगती हो,
जब तुम हो जाती हो, उदास
ज्यों किसी गुलाबी दुनियाँ में
सूने खण्डहर के आस–पास
मदभरी चाँदनी जगती हो – धर्मवीर भारती [116]

गिरिजाकुमार माथुर ने धरती पर झुके सावन के बादलों का भावबिम्ब प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि उस समय फूल बाहें खुलजाती है और लाज का आँचल स्वतः ही हट जाता है :–

नहाकर वनस्पति हुई ऋतु मति सी
नितम्बिनी धरा ज्यों कुँवरि रसवती सी
नवोढ़ा नदी के नवल अँग खोले
सजी दीप तन की मिलन आरती सी। [117]

जिन क्रियाओं अथवा चेष्टाओं से किसी के हृदय में स्थित भाव

का अनुभव (ज्ञान) हो उसे अनुभाव कहते हैं। अनुभाव अमूर्त भावों के व्यक्त मूर्त स्वरूप हैं। बिम्ब भी अमूर्त भाव का मूर्त स्वरूप होता है, इसलिए अनुभावों की प्रस्तुति बिम्बात्मक रूप में होती है, जैसे :–

चतुर सखी लखि कहा बुझाई। पहिरावहुँ जयमाल सुहाई।
सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम विवस पहिराई न जाई।। (118)

विवाह का दृश्य है। सीता जी राम के प्रेम में इतनी लीन हो गयी कि वे अपनी सुध–बुध भी भूल गयीं। वे जयमाल श्री राम को पहनाना चाहती हैं किन्तु पहना नहीं पाती। लज्जामिश्रित आनन्दातिरेक से उनके हाथों का संचालन रूक जाना भावबिम्ब का बहुत ही सुंदर उदाहरण है।

संचारी भाव पानी के बुलबुले की भांति होते हैं, जो स्थायीभाव के सहायक एवं रस के उपकारक होते हैं। ये क्षणिक होते हैं तथा स्थायी भाव को पुष्ट कर लुप्त हो जाते हैं। इनका वर्णन भी काव्य में अन्य भावों की भाँति बिम्ब रूप में होता है। जैसे :–

कुंज, तुम्हारे कुसुमालय में प्राणनाथ आकर बहुधा।
पान कराते थे सब ब्रज को वेणु बजाकर मधुर सुधा।
तुम्हें विदित है सुनकर वह रव ज्यों शिखिनी घनरव,
सुनकर कौन उपस्थित हो जाती थी उनके चरणों में सत्वर। (119)

वियोग दशा में राधिका द्वारा श्रीकृष्ण को याद करना स्मृति बिम्ब है। श्रीकृष्ण की 'वेणु ध्वनि' में 'घनरव' तथा राधा के रूप में 'शिखिनी' का बिम्बाकंन मार्दव से परिपूर्ण एवम् प्रभावशाली है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि बिम्ब के मूल में भाव की ही प्रेरणा रहती है, जिसके कारण बिम्ब रसास्वादन का मुख्य आधार बन जाता है। जब तक सामाजिक के मानसिक धरातल पर बिम्ब निर्मित नहीं होता, तब तक रस चर्वणा असंभाव्य है। वस्तुगत बिम्बन होते ही सामाजिक साधारणीकरण की स्थिति में पहुँचकर आनन्दित हो उठता है। यही रसानन्द, आत्मानन्द का सहोदर कहा गया है।(120)

——00——

➢ बिम्ब और अलंकार

काव्य के शोभाकर धर्म को अलंकार कहते हैं।[121] अलंकार भाषा के श्रृंगार और भावों के सफल व्यंजक होते हैं। राजशेखर ने अलंकार को सातवाँ बेदांग कहा है। पूर्ववर्ती आचार्य भामह, दण्डी, रूद्रट, उद्भट अलंकारों को महत्व देते हैं। 'भामह' का कथन है कि 'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिता मुखम्'[122] अर्थात् रमणी का सुंदर मुख भी आभूषण रहित होने पर शोभित नहीं होता। वैसे ही अलंकार विहीन काव्य रूचिकर नहीं माना जा सकता। यह वक्रोक्ति है जो काव्यों में प्राणों का संचार करती है। आचार्य नंददुलारे बाजपेयी ने अलंकार की समीक्षा करते हुए लिखा है कि "सौंदर्यम्लंकारः" द्वारा यह अनुमान किया जा सकता है कि भामह ने अलंकार शब्द का प्रयोग काव्य सौंदर्य के व्यापक अर्थ में किया है। उस समय तक गुण और अलंकार का भेद प्रस्फुटित नहीं हुआ था और भामह के अनुसार गुणों का समावेश भी अलंकारों के अंतर्गत होता था। सौंदर्यम्लंकारः की पूरी व्यापकता उनके निर्देशों में पायी जाती है। "काव्यालंकार" नामक काव्य शास्त्र के प्रसिद्ध ग्रंथ में भामह ने अलंकार को काव्य की आत्मा कहा है।[123]

अलंकार अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। अलंकार काव्य के बाह्य तत्व हैं। इनके प्रयोग से शब्दगत और अर्थगत व्यवहार में चारूता आती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल अलंकारों की भरमार कविता में आवश्यक नहीं मानते। उनके शब्दों में – "अलंकार चाहे अप्रस्तुत वस्तु योजना के रूप में हो (जैसे– उपमा, उत्प्रेक्षा आदि में) चाहे वाक्य वक्रता के रूप में (जैसे–अप्रस्तुत प्रशंसा, परिसंख्या, ब्याज स्तुति, विरोध इत्यादि में) चाहे वर्ण विन्यास के रूप में (जैसे– अनुप्रास में) लाये जाते हैं, वे प्रस्तुत भाव या भावना के उत्कर्ष साधन के लिए ही।"[124]

अलंकारों के प्रयोग से भावाभिव्यक्ति सहज हो जाती है, और भिन्न–भिन्न अलंकार भिन्न भिन्न भावों के अनुरूप होते हैं। सुमित्रानन्दन पंत के अनुसार–'अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेषद्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान है। वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति नीति हैं। पृथक स्थितियों के पृथक स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं।[125]

काव्य चिंतकों ने भाषा की संमूर्तन विधियों को अलंकरण कहा है किंतु भाषा की नित नवीन उद्‌घाटित शक्ति अलंकारों के घेरे में पूरी तरह नहीं बंध पाती, जिससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्रयुक्त शब्दों का सामर्थ्य उनकी बिम्बपरकता में है। पाश्चात्य चिंतकों ने भावों के प्रकाशन हेतु बिम्ब की अनिवार्यता को सिद्ध किया।

लेविस ने सर्वप्रथम बिम्ब के लिए 'चित्रात्मकता' शब्द का प्रयोग किया है। अलंकार बिम्ब नहीं है किंतु भाव या दृश्य की सादृश्यता के कारण मस्तिष्क में एक चित्र बनता है। जो तुलना या समानता का कारण बनता है। लेविस ने बिम्ब के पर्याय के रूप में 'मेटाफर' शब्द का प्रयोग किया है जिसे रूपक के रूप में जाना जाता है। सादृश्य मूलक अलंकार के अंतर्गत उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अपन्हुति, संदेह, भ्रम, उल्लेख, अन्योक्ति, समासोक्ति, प्रतीप, दृष्टांत आदि अलंकार आते हैं।[126] निःसंदेह मेटाफर अलंकार है बिम्ब नहीं किन्तु बिम्ब अलंकार से बिल्कुल असम्बद्ध और अलग भी नहीं है। दोनों अप्रस्तुत विधान के वाचक होते है। चूंकि बिम्ब ऐन्द्रियजन्य है इसलिए सादृश्यमूलक अंलकारों के अलावा अन्य अलंकार बिम्ब के अंतर्गत नहीं आते, उसमें भी रूपक अलंकार से उसकी अधिक निकटता है। डॉ. जगदीश गुप्त का विचार है – "यह सत्य है कि अलंकारों में रूपक बिम्ब के कदाचित सबसे निकट पड़ता है। परंतु भाव स्तर की दृष्टि से उसे बिम्ब के समकक्ष नहीं कहा जा सकता। रूपक में वस्तु और वस्तु के बीच का रूपात्मक तादात्म्य– संबंध प्रधान होता है। जबकि बिम्ब में अनुभूति ही वस्तु की गोचरता में परिणित हो जाती है तथा उससे सादृश्य का जो तत्व उभरता है उसमें रूपक की तरह घटित होना प्रधान नहीं होता।[127] ह्यूम की मान्यता है कि "बिम्ब वस्तुओं के आंतरिक सादृश्य का प्रत्यक्षीकरण है।"[128] इस सन्दर्भ में डॉ. शशिभूषण दास गुप्त ने लिखा है कि "हम काव्य के जिन धर्मों को अलंकार के नाम से पुकारते हैं, थोड़ा सोचने पर समझ सकेगें कि वे अलंकार उस कवि की उस विशेष भाषा के ही धर्म हैं। कवि की काव्यानुभूति, स्वानुरूप चित्र, स्वानुरूप वर्ण, स्वानुरूप झंकार लेकर ही आत्माभिव्यक्ति करती है, जब कवि की विशेष काव्यानुभूति इस विशेष भाषा में मूर्त नहीं हो पाती, तब सच्चे काव्य की रचना नहीं हो पाती।[129]

शब्दालंकार (अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि) में शाब्दिक चमत्कार प्रस्तुत होता है जो वर्ण की एकरूपता से नाद–सौंदर्य प्रस्तुत करता है। समान वर्ण अपनी नादात्मकता के कारण शब्द संगीत की योजना करते हैं किंतु ये सर्वथा बिम्ब ग्रहण में सहायक हों, कहा नहीं जा सकता परंतु यह कहा जा सकता है कि अनुप्रास में वर्णों की कुशल योजना से वातावरण को सम्मूर्तित करने की सामर्थ्य होती है किंतु इसका प्रयोग कवि की कुशलता पर निर्भर है।[130]

अस्तु निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि बिम्ब और अलंकार का घनिष्ठ संबंध है। सम्मूर्त्तन की स्थिति दोनों में है। सादृश्यमूलक अलंकार समानता असमानता के आधार पर तुलनात्मक रूप में रूप चित्र निर्मित करते हैं, तो बिम्ब ऐन्द्रियता के आधार पर विविध क्रियाकलापों को अंकित करते हैं। आज बिम्ब का उपयोग काव्य विधा की विशिष्ट शैली के रूप में हो रहा है, जबकि अलंकार कथन को चारू एवं प्रभावशाली बनाने में प्रयुक्त होते रहे हैं।

––00––

➢ बिम्ब और प्रतीक

'प्रतीक' शब्द अंग्रेजी के 'सिम्बल' शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। मदन वात्स्यायन इसकी परम्परा ऋग्वेद से मानते हे। "न सूखने वाले जल की उपमा वैदिक ऋषि ने जीभ के जल से दी थी। आग की लपटो की सींग घुमाते हुए पशु से, और एक दिन ह्रास करने वाली उषा की व्याध स्त्री से।"[131] डॉ. नित्यानंद शर्मा ने 'प्रतीक' को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि अप्रस्तुत, अप्रमेय, अगोचर अथवा अमूर्त का प्रतिनिधित्व करने वाले उस प्रस्तुत या गोचर वस्तु–विधान को प्रतीक कहते हैं जो देश काल एवं सांस्कृतिक मान्यताओं के कारण हमारे मन में अपने चिर साहचर्य के कारण किसी तीव्र भावबोध को जागृत करता है।[132] वस्तुतः देखा जाय तो जब काव्य में बिम्ब अपने प्रयोग नैरंतर्य के कारण रूढ़ हो जाते हैं, तब वे प्रतीक बन जाते हैं। उदाहरण के तौर पर महाप्राण निराला की कविता 'स्नेह निर्झर बह गया है' दृष्टव्य है :–

स्नेह निर्झर बह गया है,
रेत ज्यों तन रह गया है।
आम की यह डाल जो सूखी दिखी
कह रही है अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी,
नहीं जिसका अर्थ जीवन दह गया है।[133]

उक्त गीत में आम की सूखी डाल और उसकी दशा के माध्यम से संवेद्य बिम्ब उपस्थित किया गया है। कवि द्वारा 'पिक' या 'शिखी' के प्रतीक से सुखात्मक अनुभूतियों के अभाव के रूप में प्रयुक्त हो जीवन दहनेके प्रतीक को उभार कर वियोग दुख को स्पष्ट किया गया है। आज की कविता मूलतः संवेदना और इन्द्रिय बोध की भित्ति पर खड़ी है, जिसके कारण सशक्त अभिव्यक्ति के लिए बिम्बों और प्रतीकों की योजना करनी पड़ी। रामदरस मिश्र ने लिखा है कि "कविता के ऊपरी आयोजन नई कविता वहन नहीं कर सकती। वह अपनी अंतर्लय बिम्बात्मकता नवप्रतीक योजना, नये विशेषणों के प्रयोग, नव उपमान संघटना में कविता के

शिल्प की मान्य धारणाओं से काफी अलग दिखती है अर्थात् वह बाह्य चमत्कारों से युक्त होकर कविता के लिए जो मूलभूत छवि होती है, उसी को संयोजित करना चाहती है। बिम्ब कविता की मूल छवि है। इसीलिए आज की कविता बिम्ब बहुला हो गयी है।"[134]

कवि अपनी भावाभिव्यक्ति को गहन बनाने के लिए प्रतीकों का ही सहारा लेता है। प्रतीक सांकेतिक अर्थ के सहचर हैं इस काव्य में लाक्षणिकता के साथ अभिव्यक्ति में वक्रता भी आती है। कार्लईल ने लिखा है–"प्रतीकों में एक साथ ही गोपन और प्रकाशन की शक्ति रहती है जिससे मौन और वाणी के सहयोग से दुहरी अर्थ व्यंजना होती है।[135] केदारनाथ सिंह का कथन है कि प्रतीक स्वयं गौण होता है। मुख्यता उस दिशा की होती है जिधर वह संकेत करता है। बिम्ब से उसका यही मौलिक अंतर है। बिम्ब उठी हुई उंगली की तरह किसी एक ही दिशा में सदैव इंगित नहीं करता वह एक साथ कई स्तरों पर और कई दिशाओं में इंगित करता है। प्रतीक की तरह उस निज की सत्ता उस संकेत में विलीन नहीं हो जाती। बिम्ब प्रतीक की अपेक्षा अधिक स्वच्छंद और अनेकार्थ व्यंजक होता है।[136] लेविस ने प्रतीक में अंको की–सी निश्चितता मानी है। जैसे एक कहने से केवल एक संख्या का बोध होता है, दो अथवा पांच का नहीं, वैसे ही एक प्रतीक भी अनिवार्य रूप से केवल उसी भाव अथवा विचार का प्रतिनिधित्व करता है जिसके लिए वह लाया गया है।[137]

अज्ञेय ने प्रतीकों को सत्यान्वेषण का साधन माना है। प्रतीकों द्वारा प्राप्त ज्ञान अन्य ज्ञान से भिन्न होता है। उनके अनुसार 'वैज्ञानिक सागर की गहराई नापने के लिए रस्सी डालता है या किरणों की प्रतिध्वनि का समय कूतता है, वह एक प्रकार का ज्ञान है। कवि प्रतीक के द्वारा सत्य को जानता है–सत्य के अथाह सागर में वह प्रतीक रूपी कंकड़ फेंक कर उसकी थाह का अनुमान करता है। यदि हम सागर को हमारे सब कुछ न जाने हुए भी प्रतीक मान लें तो मछली उस प्रतीक का प्रतीक हो जाती है जिसके द्वारा कवि अज्ञात सत्य का अन्वेषण करता है।[138]

हिन्दी साहित्य कोष में प्रतीक के दो भेद किये गये हैं– संदर्भीय और संघनित। संदर्भीय प्रतीकों में वाणी और लिपि से व्यक्त शब्द, राष्ट्रीय पताकाएँ,

रासायनिक तत्वों के चिन्ह आदि हैं। संघनित प्रतीकों का उदाहरण धार्मिक कृत्यों में और स्वप्न तथा मनोवैज्ञानिक विशेषताओं जन्य प्रक्रियाओं में मिलते हैं। ऐसे प्रतीक प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति या व्यवहार के स्थानापन्नों के संघनित रूप होते हैं और चेतन या अचेतन संवेगात्मक तनावों के मुक्त प्रसारण में सहायता देते हैं। व्यवहारिक जीवन में इन दोनों प्रकारों के प्रतीकों का मिश्रण मिलता है। कवियों के द्वारा प्रायः पारम्परिक अथवा वैयक्तिक प्रतीकों का प्रयोग किया गया है। काव्य में सामाजिक सांस्कृतिक (पौराणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक) प्राकृतिक, वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक प्रतीकों का उल्लेख मिलता है।[139]

काव्य प्रतीकों का मूल स्त्रोत बिम्ब, पौराणिक आख्यान और लेखक का जीवन दर्शन होता है। प्रतीक रूढ़ बिम्ब होते हैं अत्यधिक प्रयोग में आने पर कुछ प्रतीक अपनी अर्थवत्ता खो देते हैं। बिम्ब में चित्रोपमता पायी जाती है, प्रतीक में सांकेतिक व्यंजना। लेविस नेसघन बिम्ब को प्रतीक का विरोधी माना है जबकि जार्ज ह्वेले ने काव्यानुभूति से संपृक्त बिम्ब को प्रतीक ही माना है ये दोनों मत एकांगी है। कविता में बिम्ब शायद ही कभी शुद्ध प्रतीकात्मक अवस्था में मिले, किंतु यह भी नहीं कहा जा सकता कि – सघन बिम्ब प्रतीक का विरोधी होता है। प्रतीक ही संभ्रांत होकर बिम्ब का स्वरूप धारण कर लेते है।[140] केदारनाथ सिंह ने माना है कि प्रत्येक प्रतीक अपने मूल में बिम्ब होता है और उस मौलिक रूप से क्रमशः विकसित होकर प्रतीक बन जाता है। बिम्ब और प्रतीक के अंतर को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि बिम्ब के लिए ज्ञानेन्द्रिय के किसी भी स्तर पर मूर्त्त होना आवश्यक है। यानी बिम्ब मूर्त्त ही होता है। प्रतीक किसी वस्तु का चित्रांकन नहीं करता केवल संकेत द्वारा उसकी किसी विशेषता को ध्वनित करता है। अतः प्रतीक का ग्रहण संदर्भ से अलग और एकांत रूप में भी संभव है। किन्तु बिम्ब की प्रेषणीयता उसके पूरे संदर्भ के साथ होती है। [141]

बिम्ब के लिए भावचित्र अनिवार्य शर्त है। प्रतीक किसी एक शब्द से व्यापक भाव को व्यक्त करता है जबकि बिम्ब में कवि दिये हुए शब्दों से ही अर्थ लेकर स्थिति का बोध कराता है। इस प्रकार प्रतीक एवं बिम्ब में घनिष्ठ संबंध होते हुए भी दोनों की स्थिति परस्पर स्वतंत्र है। प्रतीकों की बड़ी संख्या यदि भाव चित्रों

के रूप में संभ्रांत नहीं हो पाती तो उनमें से अधिकांश प्रतीक कथानक रूढ़ि या अभिप्राय बन कर रह जाते हैं।[142]

लैंगर ने प्रतीक के चार विधायी तत्व माने हैं जिसमें वस्तु और धारणा प्रतीक के तात्विक साधन हैं और आश्रय तथा आलंबन प्रतीक के भावना पक्ष से सम्बद्ध है। इनमें वे धारणा को सर्वाधिक महत्व देते हैं क्योंकि प्रतीक अपनी विषय वस्तु के प्रतिनिधि नहीं होते, बल्कि विषय–वस्तु की धारणा के वाहक होते हैं।[143] आचार्य शुक्ल के अनुसार – "प्रतीक विशिष्ट मनोविकार या भावना को अभिव्यक्त करता है।"[144] मनोवैज्ञानिकों ने प्रतीक को अचेतन मन की दमित वासनाओं को मूलतः श्रृंगारिक माना है। युंग के अनुसार "प्रतीक कामवासना से सम्बद्ध होते हैं और सुविचारित नहीं होते, बल्कि सहज ज्ञान के रूप में प्रायः स्वप्नो में प्रकट होते हैं। सामूहिक चेतना से उत्पन्न प्रतीकों को युंग ने आद्य बिम्ब कहा है।[145]

अस्तु निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कलात्मक प्रतीक, धर्म, दर्शन, विज्ञान आदि के प्रतीकों की तरह स्पष्ट और निश्चित नहीं होते। ये प्रायः कल्पनाजन्य होते हैं जबकि वैज्ञानिक प्रतीक पूर्णतः बौद्धिक होते हैं। कला प्रतीक अर्थ विस्तार की अधिक संभावना रखते हैं क्योंकि कलाकार और सहृदय दोनों उन्हें एक समान रूप में ग्रहण नहीं करते। कला–प्रतीकों में अनुभूति का तत्व अन्य सभी प्रतीक रूपों से अधिक होता है। इनका स्वरूप गत्यात्मक होता है, रूढ़ नहीं। सहृदय जब तक कलाकार की अनुभूति की गहराई तक नहीं पहुंचता तब तक वह उनका मूल आशय नहीं पकड़ पाता। [146]

——00——

➢ बिम्ब और प्रयोगधर्मिता

बीसवीं सदी के प्रारंभ में 'स्वच्छन्दतावाद' के विरोध में टी.ई. ह्यूम का यह कथन महत्वपूर्ण है कि "कविता ऐसी हो जो स्पष्ट रूप से नुकीली हो, अर्थात् उसमें चित्र कल्प एक गहरे चित्र की तरह हो।"[147] इसमें कवि जीवन की किसी भी झलक अथवा घटना को, किसी भी विचार की गहनतम से गहनतम परत को अथवा किसी भी क्षणिक से क्षणिक संवेदनात्मक आभास को शब्द चित्र से इस रूप में प्रस्तुत करे कि वह मूर्त्तिमान हो जाय।

हिन्दी में काव्य बिम्ब की अवधारणा मूलतः आधुनिक काल की ही देन है। जहाँ तक काव्य में बिम्ब के प्रयोग का प्रश्न है वहाँ तो निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि सधा सधाया कवि चाहे वह प्राचीनकाल का हो अथवा आधुनिक काल का, उसकी कविता में बिम्ब विधान होगा ही। यह बात दीगर है कि प्राचीन कवि बिम्बों के स्वरूप से परिचित नहीं थे, वे बिम्ब को लक्ष्य में रखकर कविता नहीं लिखे, प्रत्युत स्वतः स्वाभाविक रूप से विविध बिम्बों का समावेश उनकी कविता में हुआ। आधुनिक काल में बिम्ब को लक्ष्य में रखकर कविता का सृजन छायावादी युग से प्रारंभ हुआ। सन् 1918 में पाश्चात्य साहित्य में बिम्ब विधा चरमोत्कर्ष पर थी, यह समय हिन्दी काव्य में छायावाद के प्रारंभ का था। भाव, भाषा और शिल्प की दृष्टि से छायावादी युग जहाँ नवीन स्थापनाओं से समृद्ध हो रहा था वहीं बिम्ब परक कविताओं की शुरूआत भी हो रही थी। इस संदर्भ में केदारनाथ सिंह लिखते हैं कि 'हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में बिम्ब के रचनात्मक स्वरूप संवेदनाओं का मिश्रण और तीव्र संवेगात्मकता की व्याख्या का पहला प्रयास छायावाद में ही हो चुका था।"[148] कदाचित इसीलिए पंतजी ने पल्लव की भूमिका में बिम्ब के लिए चित्रभाषा शब्द का प्रयोग करते हुए लिखा था– "कविता में चित्र भाषा की आवश्यकता पड़ती है, उसके शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हों, सेब की तरह जिसके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सके।"[149] आलोचना के क्षेत्र में बिम्ब शब्द के प्रथम प्रयोक्ता और व्याख्याता आचार्य रामचंद्र शुक्ल हैं जिन्होंने स्पष्टतः लिखा है कि 'काव्य में अर्थग्रहण मात्र से काम नहीं चलता, बिम्ब ग्रहण अपेक्षित होता है।' [150]

शुक्ल के बिम्ब संबंधी विचारों की पृष्ठभूमि में कहीं न कहीं छायावादी कवियों की भी मान्यताएँ थी। क्योंकि 'आलोचना का कोई भी नया सिद्धांत तत्कालीन कृति साहित्य से सर्वथा निरपेक्ष नहीं हो सकता।'[151] छायावादी कवियों ने शब्द, वर्ण, समानुभूतिक, व्यंजना प्रवण समासिक प्रसृत एवं ऐन्द्रिक बिम्बों की योजना की है। भाव बिम्बों की छटा तो निराली ही दिखती है। प्रकृति जन्य भावचित्र इतने जीवंत रूप में प्रयुक्त हुए हैं, जैसे वे आंखों के समक्ष अपनी क्रियाएँ कर रहे हों। पंत ने बादल के गगन विहार का बड़ा ही सुन्दर भावचित्र प्रस्तुत किया है, जिसमें बादल की तीव्र गति को चौकड़ी भरते मृग के बिम्ब से, उसकी गंभीरता एवम् गर्जना को मदमस्त झूमते हाथी के बिम्ब से तथा बादल के क्षीण विस्तार को घास चरते सजग 'शशक' के बिम्ब से अभिव्यक्ति दी है, और यदि बादलों के स्वभाव पर विचार करें तो उसमें मृग, गज, शशक का चित्र उभरता हुआ दिखाई देता है।

कभी चौकड़ी भरते मृग से
भू पर चरण नहीं धरते
मत्त मत्तंगज कभी झूमते
सजग शशक नभ को चरते।

महादेवी ने अपनी सूक्ष्म रहस्यानुभूति के लिए मनोरम बिम्ब दिये हैं –

कैसे कहती हो सपना है, अलि !
उस मूक मिलन की बात
भरे हुए अब तक फूलों में
मेरे आंसू उनके हास । – नीहार

इसी प्रकार प्रसाद की कामायनी आँसू, लहर, निराला की 'राम की शक्ति पूजा', अनामिका पंत की नौका विहार, ग्राम्या, पल्लविनी कविताओं में विविध सशक्त बिम्बों की सृष्टि हुई है।

कविता के क्षेत्र में बिम्ब प्रणाली पर वास्तविक रूप से कार्यारम्भ नये कवियों के द्वारा हुआ है जिसकी प्रारम्भिक झलक 'तार सप्तक' में मिल जाती है। प्रयोगवाद कवि साहित्यिक क्षेत्र में नवीनता के हिमायती थे इसलिए परंपरागत बिम्बों की तुलना में 'ऐन्द्रिय' और 'आवेगाश्रित' बिम्बों के काव्यात्मक महत्व पर

अधिक बल देते थे। तीसरे सप्तक तक बिम्ब का पूर्ण प्रभुत्व कविता पर दिखाई देने लगा। बिम्ब के व्यापीकरण के कारण डॉ. केदारनाथ सिंह ने लिखा कि 'मैं बिम्ब निर्माण की प्रक्रिया पर जोर इसलिए दे रहा हूँ कि आज काव्य के मूल्यांकन का प्रतिमान लगभग वही मान लिया गया है।''[152] बिम्ब रचना प्रक्रिया का एक अंग है जो हमारी ऐन्द्रिक अनुभूति को समृद्ध और समृद्धतर करता है।

अज्ञेय प्रयोगवाद के पुरस्कर्त्ता है। उन्होंने 'तारसप्तक' का संपादन किया है वस्तुतः नयी कविता प्रयोगवादी कविता का ही एक परवर्ती रूप है। राम विलास शर्मा, गिरिजा शंकर माथुर, नेमिचंद्र जैन, प्रभाकर माचवे, मुक्ति बोध, भारत भूषण अग्रवाल, नरेश मेहता, भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्त माथुर, हरिव्यास, शमशेर बहादुर सिंह, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, लक्ष्मी कांत वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, दुष्यंत कुमार, केदारनाथ सिंह, विजय देवनारायण साही आदि इस धारा के सशक्त हस्ताक्षर हैं। शिल्प की दृष्टि से नये कवियों का प्रयोग अनूठा है। दृश्यात्मकता और प्रकृति का बिम्बात्मक चित्रण कविता को पारदर्शी बनाते हैं। पर्वत, नदी, पेड़ प्रकृति के ये महत्वपूर्ण उपादान कवि को संवेदित कर देते हैं, देखिए, अज्ञेय की दृष्टि कितनी सूक्ष्म और प्रभावशील है –

आज मैंने पर्वत को नई आँख से देखा
आज मैंने नदी को नई आँख से देखा
आज मैंने पेड़ को नई आँख से देखा। [153]

उक्त उदाहरण में पर्वत, नदी, पेड़ का सहज बिम्ब प्रस्तुत हुआ है। मर्म 'आंख' से देखने में नहीं है, 'नई आँख' से देखने में है। नई आँख यानी नवीन रूप, नवीन दृष्टिकोण।

प्रायः कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से शाम, प्रात, समुद्र, दिन, रात, सूर्य, आकाश, क्षितिज, धूम, लहरें, किरणें, बादल आदि की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति की है। 'उषा' कविता में डॉ. शमशेर बहादुर सिंह ने भोर से लेकर सूर्योदय तक का वर्णन किया है। आकाश की नीलिमा के विस्तार का उद्‌घाटन कवि नीले शंख से करता हुआ भोर और प्रात की मांगलिक ध्वन्यात्मकता को भी व्यक्त करता है– 'प्रात नभ था। बहुत नीला शंख जैसे। भोर का नभ।' कवि ने प्रातः कालीन नीलिमा के

लिए नीले शंख का बिम्ब चुना है। इस बिम्ब से कवि यह भी बताना चाहता है कि शंखध्वनि मांगल्य का प्रतीक है और 'प्रात नभ था, बहुत नीला शंख जैसे' पंक्ति मंगलमय बेला की सूचना दे देती है।

प्रयोगवाद की केवल प्रयोगिनी परम्परा की सीमा को तोड़कर एक स्वतंत्र कवि के रूप में महाकवि निराला की साफ–सुथरी खुली मानवतावादी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए समाज के शोषण का सशक्त विरोध मुक्तिबोध ने अपनी लेखनी से किया है। इनकी कविताओं में भावों के साथ–साथ शब्दों की दौड़ इतनी सार्थक और सटीक है कि ऐसा लगता है, जैसे कोई चितेरा विशाल कैनवास तैयार कर रहा हो, जिसमें समतल और गहराइयों के साथ–साथ ऊँचाइयों का भी समावेश स्वतः ही होता चला जाता है। इनके हर शब्द चित्र के पीछे एक अभिनव काव्यशक्ति के दर्शन होते हैं। इनकी भाषा की शक्ति इनमें हर वर्णन को अर्थपूर्ण और चित्रमय बना देती है। इन्होंने कभी भी विशिष्ट शब्द की खोज नहीं की, अपितु वह अपनी अभिव्यक्ति को सहज और स्वाभाविक रूप देने के लिए विशिष्ट बिम्ब और विशिष्ट प्रतीक–योजना की खोज में रत रहे हैं। जैसे– 'मैं तुम लोगों से दूर हूँ' कविता देखी जा सकती है –

मैं तुम लोगों से इतना दूर हूँ
तुम्हारी प्रेरणाओं से मेरी प्रेरणा
इतनी भिन्न है –
कि जो तुम्हारे लिए विष है,
मेरे लिए अन्न है
मेरी असंग स्थिति में चलता–फिरता साथ है
अकेले में साहचर्य का हाथ है
उनका जो तुम्हारे द्वारा गर्हित है
किंतु वे मेरी व्याकुल आत्मा में, बिम्बिल है, पुरस्कृत,
इसलिए तुम्हारा मुझ पर सतत आघात है। – मुक्तिबोध

उक्त कविता में समाज की दुर्व्यवस्था का बिम्ब उभरा है। कवि ने पुरी कविता में 'मैं' 'तुम' 'वे' 'तुम्हारे' 'तुम्हारा' जैसे सर्वनामों के द्वारा निर्दिष्ट रूपों की

ओर अर्थगर्भित संकेत करके बिम्ब को अनुभूति पूर्ण बनाया है। पूँजीपति और निर्धन वर्ग के संघर्ष में संपूर्ण कविता निर्धन वर्ग के दुख निराशा और पीड़ा के यथार्थ परक बिम्ब को प्रस्तुत करती है। उनकी कविताओं में व्यक्त होता संघर्ष ऐसे आदमी का संघर्ष है जो पीड़ित, अभावग्रस्त परिस्थतियों के बोझ से दबा हुआ किंतु प्रत्येक समस्याओं का सामना कर रहा है। मुक्ति बोध अभिव्यक्ति की अपेक्षा अनुभूतियों को ठोस, नवीन बिम्बों से प्रस्तुत करते हैं। पशुता, क्रूरता मानव के भीतर ही समायी हुयी है जो मानव के विनाश का कारण बनती है, जैसे –

भीतर जो शून्य है,
उसका एक जबड़ा है,
जबड़े में मांस काट खाने के दाँत हैं।
जबड़े के भीतर अँधेरी खाई में,
खून का तालाब है,
ऐसा वह शून्य है।
शून्य–चाँद का मुँह टेढ़ा है, ऋ.पृ. 143

कवि ने मानव के भीतर की शून्यता, अभाव ग्रस्तता, शारीरिक अंगों के बिम्बों द्वारा व्यक्त किया है। वस्तुतः मुक्ति बोध की कविताओं में मानव जीवन एवं दैनिक जीवन से सम्बन्धित बिम्बों की अधिकता है। आदिम जीवन के कुछ उपकरणों की कई बार आकृति ध्यान देने योग्य है। जैसे–'बरगद की घनघोर शाखाओं की गढ़ियल अजगरी मेहराब' और 'परित्यक्त सूनी बावड़ी'(154) आदि। उनके लोक विश्वास संबंधी भूत प्रेत, ब्रह्मराक्षस आदि में बिम्ब के साथ मिलकर ये उपकरण एक आदिम वन्यजीवन के भय पूर्ण वातावरण को सामने लाते हैं।

नये कवियों का ध्यान प्रायः नये बिम्बों की तलाश में रहा है। शमशेर के बिम्बविधान पर विजयदेव नारायण शाही का कथन है कि 'उन्होंने ऐसे प्रतीकों और नये बिम्बों का सृजन किया है जो कविता के अभ्यस्त पाठकों और श्रोताओं को अक्सर चुनौती की तरह लग सकते है।'(155) कविता में बिम्बों के नये प्रयोग की आवश्यकता इसलिये पड़ी कि जिस प्रकार पुराने उपकरण अपनी आभा को खो देते हैं, उसी प्रकार घिसे–पिटे बिम्ब भी संवेदन शून्य हो जाते हैं।' पुराने बिम्ब विधान

में लिखी रचनाएँ आज के जीवन एवं जागृत आदमी की चेतना को उद्वेलित कर सकने में असमर्थ हो सकती है, अतः पुराने बिम्ब–विधान त्याग कर नये बिम्ब–विधान को ग्रहण करना होता है।'[156] वस्तुतः कविता के इतिहास में नये बिम्बों की आवश्यकता पड़ा करती है, क्योंकि शब्दों की मौलिक प्रकृति में निहित रूपक धीरे–धीरे घिसकर अमूर्त्त हो जाते हैं। केदारनाथ सिंह के अनुसार 'युग और साहित्यिक प्रवृत्तियों में होने वाले परिवर्तनों के साथ–साथ बिम्ब विधान की पद्धति में भी परिवर्तन होता जाता है। आदि कवि वाल्मीकि के बिम्बों में एक सरलता और स्वाभाविकता है, जो वस्तुतः आदिम संस्कृति की सहजता की ही छाप है। यदि उसके ठीक सामानान्तर रखकर कालिदास के बिम्बों को देखा जाय तो उनमें कल्पना की अधिक ऊँची उड़ान और रूप विन्यास में अपेक्षाकृत अधिक जटिलता दिखाई देगी।[157]

बिम्बों के प्रयोग में कवि को सहज एवं बौद्धिक प्रदर्शन से युक्त होना आवश्यक है। शमशेर इस बात को मानते हैं कि 'कविता काम्पलेक्स तो होनी ही नहीं चाहिए, जबकि स्वयं उनकी कविता में बिम्बों की दुरूहता देखी गयी है।'[158] आधे–अधूरे तथा अशक्त बिम्ब भी अपना प्रभाव नहीं छोड़ पाते। बिम्ब कवि के रागात्मक सम्बन्धों पर आधारित होने के कारण सूक्ष्म होते हैं। सूक्ष्मता में अस्पष्टता एवं दुरूहता नहीं प्रत्युत भाव प्रवणता आवश्यक है। कवि जहाँ भी कविता की सहज बुनियाद की अवहेलना कर बौद्धिकता का प्रदर्शन करता है, वहीं उसकी कविता अस्पष्ट एवं दुरूह हो जाती है और बिम्बों के ग्रहण में बाधा उपस्थित होती है। उदाहरण के तौर पर सर्वेश्वर की 'इंतजार' कविता को देखा जा सकता है– 'इंतजार शत्रु है, उस पर यकीन मत करो।' बात स्पष्ट है कि जो कुछ करना है उसे तुरंत कर लेना चाहिए। अंत में यह कथन कि 'उससे बचो'। जो पाना है फौरन पालो। जो करना है फौरन कर लो।'– इससे कविता को संरचना में दोष आ गया है। [159] जबकि बिम्ब के क्षेत्र में वे सशक्त हस्ताक्षर हैं। सरल बिम्बों का भावमय प्रयोग उनकी विशेषता है। आशा, विश्वास आस्था, प्रगति एवं चेतना से परिपूर्ण जीवन के प्रति उनके चिंतन में एक प्रवाह है, जिसकी चरितार्थता उनकी रचनाओं में देखी जा सकती है। 'सूरज को नहीं डूबने दूंगा' कविता युवा पीढ़ी के प्रति

विविध सूक्ष्म बिम्बों से उकेरी गयी है –

अब मैं सूरज को नहीं डूबने दूंगा !
देखो मैंने कंधे चौड़े कर लिए हैं
मुट्ठियाँ मजबूत कर ली हैं
और ढलान पर एड़ियाँ जमाकर,
खड़ा होना मैंने सीख लिया है
घबराओ मत, मैं क्षितिज पर आ रहा हूँ
सूरज जब ठीक पहाड़ी से लुढ़कने लगेगा
मैं कंधे अड़ा दूंगा
देखना, वह वही ठहरा होगा। (160)

प्रतीक और मुहावरों से संवरी यह कविता 'प्रतिभा के रूप में 'सूरज' को मूर्त्तित करती है। पूर्व दिशा से पश्चिम दिशा की ओर ढलने वाले 'सूरज' के बिम्ब से अपने देश (भारत) से पाश्चात्य जगत की ओर आर्थिक लाभ हेतु पलायन कर रही युवा पीढ़ी को रेखांकित किया गया है। पूरी कविता में मुहावरे व प्रतीक परक बिम्ब उभरे हैं।

कविता में कथ्य और बिम्ब दोनों महत्वपूर्ण हैं। कथ्य साध्य है बिम्ब साधन। जहाँ भी कवि कथ्य की उपेक्षा कर बिम्ब को ही सर्वोपरि मानकर चलता है अर्थात् बिम्ब को ही साध्य मान लेता है तो वह सशक्त के बजाय अशक्त कविता लिखता है।(161) रचना की दृष्टि से दोनों प्रकार के कवि मिलते हैं, वे भी हैं जो अभिव्यक्ति को महत्व देते हैं और एक तरह से रूपकार वादी हैं, और वे भी हैं जो कथ्य पर अधिक जोर देते हैं। अज्ञेय और मुक्तिबोध के सम्बन्ध में रणजीत और रशाद अब्दुल वाजिद लिखते हैं कि – 'अज्ञेय की कविता मुक्तिबोध की अपेक्षा अधिक बिम्बात्मक है। यह बात और तथ्यों से पुष्ट होती है कि मुक्तिबोध कथ्य पर अधिक जोर देते हैं, जबकि अज्ञेय के यहाँ कथन का, व्यक्ति का अधिक महत्व है। एक वाक्य में मुक्तिबोध अधिक विषय वस्तुवादी और अज्ञेय अधिक रूपकार वादी है।'(162) बिम्ब प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों का होता है, जबकि नये कवियों ने अप्रस्तुत विधान को प्रस्तुत की तुलना में अधिक महत्व दिया, जिससे क्षुब्ध हो डॉ.

नामवरसिंह ने लिखा कि – 'इसे विरोधाभास ही कहना चाहिए कि जब से कवियों में बिम्बों की प्रवृत्ति बढ़ी, सामाजिक जीवन के सजीव चित्र दुर्लभ हो चले। सुंदर चयन की ओर कवियों की ऐसी वृत्ति हुयी कि प्रस्तुत गौण हो गया और अप्रस्तुत प्रधान/..... कविता को चित्र बनाने का नतीजा क्या है यह बात पिछले 15 वर्षो के अनुभव से स्पष्ट हो गयी।'(163)

एक समय ऐसा भी आया कि बिम्बों का अन्धाधुन्ध प्रयोग होने के कारण तथा बिम्ब को ही कविता का मूल मानने के कारण सन् 60 के बाद भारी विरोध होने लगा। इस संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह ने लिखा– 'छठवें दशक के अंत और सातवें दशक के आरंभ में सामाजिक स्थिति इतनी विषम हो चुकी थी कि उसकी चुनौती के सामने बिम्ब–विधान कविता के लिए अनावश्यक भार प्रतीत होने लगे। जिस प्रकार सन् 36 तक आते–आते स्वयं छायावादी कवियों को भी सुंदर शब्दों और 'चित्रों' से लदी हुई कविता निस्सार लगने लगी, उसी प्रकार सन् 60 के आसपास नई कविता की बिम्ब धर्मिता की निरर्थकता का एहसास होने लगा।'(164) सर्वेश्वर ने तो यहाँ तक लिख दिया कि –

बिम्ब प्रतीक को मारो गोली,
बोलिए मेरे साथ
खड़ी फर्रूखावादी बोली। (165)

बिम्ब के विरोध में नामवर सिंह यह तर्क देते हैं कि सामान्यतः जिसे बिम्ब कहा जा सकता है, उसके बिना भी कविताएँ लिखी गयी हैं, और वे बिम्ब धर्मी कविताओं से किसी भी तरह कम अच्छी नहीं कही जा सकती।'(166)

'बिम्ब' का विरोध केवल हमारे देश में ही नहीं हुआ। पाश्चात्य जगत में भी इसे विरोध का दंश सहना पड़ा है। विरोध चाहे जितना हो उसकी उपयोगिता को अनदेखा नहीं किया जा सकता। केदारनाथ अग्रवाल के शब्दों में – 'कविता में बिम्ब विधान भी होना चाहिए अन्यथा वह आदमी के मन पर प्रभाव नहीं डाल सकती और टिकाऊ नहीं बन सकती। उसकी लय और उसका बिम्ब–विधान ही कविता को अधिक सम्प्रेषणीय बनाता है और रचना को रूचिर बनाए रखता है। इसे कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि कथ्य कुछ न हो कविता लय और बिम्ब मात्र ही हो।'(167)

निष्कर्षतः काव्य में बिम्बों के प्रयोग ने भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षा को एक नवीन आकाश दिया है। केवल कवियों ने ही नहीं बल्कि आलोचकों ने भी बिम्ब को एक आधार देने में अपना महत्वपूर्ण सहयोग दिया है। नये कवियों ने तो बिम्ब विधान को एक महत्वपूर्ण शैली मानते हुए, जो अलंकार की तरह ऊपरी न होने के कारण कविता का जरूरी हिस्सा माना है। बिम्ब के सृजन में वे कवि के भावात्मक तादात्मय या उसकी गहरी अनुभूति को अनिवार्य मानते हैं। मात्र शब्दिक चित्र की अपेक्षा वे बिम्ब का रागपूरित होना जरूरी समझते हैं। उनके अनुसार ऐन्द्रियता बिम्ब की पहली शर्त हैं। बिम्ब के प्रति अतिशय मोह और चमत्कार प्रवृत्ति का वे विरोध करते हैं। सिद्धांततः वे बिम्ब जन्य दुरूहता को उचित नहीं मानते किंतु युगीन विवशताओं के कारण नये–नये बिम्बों की योजना आवश्यक समझते हैं। (168)

––00––

➢ बिम्ब के प्रकार

काव्य की विविध विधाओं में 'बिम्ब' कविता का महत्वपूर्ण उपादान है। कवि की अमूर्त अनुभूतियों एवम् धारणाओं की संप्रेषणीयता उसकी बिम्बमयी अभिव्यक्ति पर आधारित होती है। बिम्ब जितना स्पष्ट होगा, उसका प्रभाव भी उतना ही गहरा होगा। आज के कवियों के लिए बिम्बमयी कविता जहाँ एक चुनौती है वहीं उनकी अमूर्त एवं मूर्त अनुभूतियों को प्रकाशित करने का एक सशक्त माध्यम भी है। लैंगर ने 'बिम्ब' को ऐन्द्रिय माध्यम द्वारा आध्यात्मिक तथा भौतिक सत्यों तक पहुंचने का मार्ग बताया है। बिम्बवाद के जनक टी.ई.हुल्मे ने तो बिम्ब को ही कविता की सार वस्तु माना है।[169] दिनकर ने बिम्ब को कविता का एक मात्र शाश्वत सत्य[170] स्वीकार करते हुए इसके महत्व का प्रतिपादन किया है। एजरा पाउण्ड ने तो यहाँ तक लिख दिया कि 'एक सुंदर बिम्ब रचना के सामने बड़े बड़े पोथे बेकार हैं। जीवन में एक सुंदर बिम्ब की रचना बड़े–बड़े पोथे लिखने से ज्यादा बेहतर हैं।[171]

बिम्ब के महत्व की स्वीकृति एडीसनके समय से ही अंग्रेजी साहित्य में मिलती हैं। बीसवी शताब्दी के आरम्भिक दशकों में इसे अधिक उभारा गया और एक नये साहित्यिक आंदोलन के रूप में सन् 1908 के आसपास बिम्बवाद के नाम से टी.ई.हुल्मे और एफ.एस.फ्लिट ने बिम्ब को कवि कर्म की चरम उपलब्धि बताया। इस प्रकार विविध मान्यताओं, धारणाओं से व्याख्यायित होती हुयी हुल्मे की कविता 'पतझड़' से बिम्बवाद का सूत्रपात हुआ।[172]

बिम्बों का वर्गीकरण

पाश्चात्य एवम् भारतीय विद्वानों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से बिम्बों का वर्गीकरण किया है, जिसका उल्लेख निम्नलिखित रूप से किया जा सकता है –

लेविस ने बिम्बों के दो प्रकार बतायें हैं :– [173]

(1) सजीव बिम्ब और (2) खण्डित बिम्ब

स्केल्टन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'पोएटिक पैटर्न' में काव्यात्मक बिम्बों के कुछ इस प्रकार भेद किए हैं–सरल, तात्कालिक, विकीर्ण, अमूर्त, संयुक्त मिश्र, संयुक्त अमूर्त, मिश्र अमूर्त, अमूर्त संयुक्त और अमूर्त मिश्र–यह विभाजन अपने में उलझा हुआ है जिस कारण उसके स्वरूप, सीमा तथा क्षेत्र का निर्धारण असम्भव हो जाता है।[174]

डॉ.शम्भूनाथ चतुर्वेदी के अनुसार बिम्ब दो प्रकार के होते हैं :–

(क) ऐन्द्रिय बिम्ब और (ख) मानस बिम्ब [175]

डौ. कैलाश बाजपेयी ने बिम्बों के छह प्रकार माना है :–

दृश्य बिम्ब, वस्तु बिम्ब, भाव बिम्ब, अलंकृत बिम्ब, सान्द्र बिम्ब, और विकृत बिम्ब [176]

डॉ. उमाकान्तगुप्त ने बिम्बों का वर्गीकरण तीन रूपों में करते हुए उसके भेद भी सुनिश्चित किए हैं।[177]

(1) दृश्य बिम्ब – (क) स्थिर, (ख) गतिशील, (ग) व्यापार विषयक

(2) मानस बिम्ब–(क) भावानुमोदित, (ख) विचारोनुमोदित, (ग) वैज्ञानिक एवं यांत्रिक

(3) संवेद बिम्ब–(क) स्पर्श संवेद, (ख) घ्राण संवेद, (ग) श्रवण संदेव (घ) वर्ण संवेद, (ड़) आस्वाद्य संवेद

उपर्युक्त सभी वर्गीकरण अपूर्ण एवं अधूरे हैं। बिम्बों का संसार विस्तृत है जिसकी गहन पड़ताल आवश्यक है।

डॉ. नगेन्द्र ने बिम्बों की विशद चर्चा करते हुए स्थूल रूप से उसके प्रकारों का उल्लेख निम्नलिखित वर्गो में किया है [178] :–

वर्ग 1– दृश्य (चाक्षुष), श्रव्य (श्रौत), स्पर्श्य, घ्रातव्य और रस्य (आस्वाद्य)

वर्ग 2– लक्षित और उपलक्षित

वर्ग 3– सरल और संश्लिष्ट

वर्ग 4– खण्डित और समाकलित

वर्ग 5– वस्तु परक और स्वच्छंद

यह विभाजन बिम्बों की आधारगत व्याख्या करने में उपयुक्त एवं समीचीन है।

अस्तु विविध भेदों और उपभेदों को ध्यान में रखते हुए बिम्बों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है।[179]

1. विषय वस्तु के आधार पर
2. ऐन्द्रियता के आधार पर
3. भावों के आधार पर
4. अनुभूति के आधार पर
5. अभिव्यक्ति के आधार पर

(1) <u>विषय वस्तु के आधार पर</u> –

विषय वस्तु के आधार पर बिम्बों का वर्गीकरण दो रूपों में किया जा सकता है :–[180]

(क) पारम्परिक विषयों से सम्बद्ध बिम्ब।

(ख) जीवन से सम्बन्धित बिम्ब।

(क) पारम्परिक विषयों से सम्बन्धित बिम्बों को पांच भागों में विभक्त किया जा सकता है :–

1. प्रकृति परक बिम्ब
2. आद्य या आदिम बिम्ब
3. पौराणिक बिम्ब
4. निजन्धरी बिम्ब
5. ऐतिहासिक बिम्ब

प्रकृति परक बिम्बों के अंतर्गत पृथ्वी, आकाश, सागर, सरिता, सरोवर, वन, पर्वत, अग्नि, वायु, ऋतु, दिन–रात, पशु, पक्षी, जीव–जन्तु आदि के

वर्णन होते हैं। आद्य बिम्बों की अभिव्यक्ति प्रायः आदिम जातियों की विद्या, पुराकथा या परियों की कहानियों के माध्यम से होती है। युग–युग के और देश–देश के मानव के अचेतन मन में ये आद्य बिम्ब वंशानुक्रम से – जन्म से ही वरन् जन्म के पहले से ही विद्यमान रहते हैं और अनेक रहस्यमयी विधियों के द्वारा उसके मनोव्यापार को प्रभावित करते रहते हैं।''[181] पौराणिक बिम्ब में पुराण से सम्बन्धित घटनाओं अथवा कथाओं का समावेश रहता है। निजन्धरी बिम्बों का प्रकाशन परियों, जादू–टोना की कथाओं तथा चमत्कारिक कपोल कल्पित कहानियों में होता है। 'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'Legendary' की ध्वनि पर उसके समानार्थक निजन्धरी शब्द का प्रयोग किया है।' [182] इनमें प्रायः अबौद्धिक और भ्रममूलक तत्वों का समावेश अधिक होता है। पौराणिक कथाओं की तरह इन कहानियों का मुख्य स्वर उपदेशात्मक न होकर विशुद्ध मनोरंजन प्रधान होता है। [183] इतिहास से सम्बन्धित बिम्ब ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित होते हैं।

(ख) जीवन से सम्बन्धित बिम्बों के अंतर्गत पहला लोकजीवन एवम् दूसरा मानव के सामान्य जीवन से सम्बन्धित बिम्ब आते हैं। ग्रामीण परिवेश, रहन–सहन तथा कृषि से सम्बन्धित बिम्ब लोकजीवन के अंतर्गत आते हैं। मानवजीवन पर आधारित बिम्बों में उत्सव, तीर्थ, पूजा, परिवार, कल–कारखाने, शारीरिक अवयव, उद्योग–धंधे, विज्ञान, राजनीति, अस्त्र–शस्त्रों, कलाओं आदि से सम्बन्धित बिम्बों को समावेशित किया जा सकता है।[184]

(2) <u>ऐन्द्रियता के आधार पर</u> :–

केदारनाथसिंह ऐन्द्रियता को बिम्ब का प्रथम एवं अनिवार्य गुण मानते हुए लिखते हैं कि 'ऐन्द्रियता बिम्ब की प्रथम एवं अंतिम कसौटी है। इस कसौटी के आधार पर वह सब कुछ, जिसका हमें किसी इन्द्रिय के कारण प्रत्यक्षीकरण होता है, बिम्ब कहला सकता है।[185] ऐन्द्रिय संवेदनाओं के आधार पर बिम्बों का रूपांकन निम्नलिखित रूपों में किया गया है :–

1. दृश्य या चाक्षुष बिम्ब
2. ध्वनि या श्रव्य बिम्ब

3. गंध या घ्रातव्य बिम्ब

4. रस्य या आस्वाद्य बिम्ब

5. स्पशर्य बिम्ब

इसके अतिरिक्त मन की संवेदनाओं, भूख, प्यास, वेदना, थकान, संतोष आदि के भी अपने बिम्ब होते हैं, जिन्हें आंतरिक संवेदनात्मक बिम्ब कहा जा सकता है।[186]

प्रत्यक्षतः लोक का दिग्दर्शन नेत्र द्वारा ही होता है। इसलिए काव्य में अन्य इन्द्रियों की बनिस्पत दृश्य बिम्बों की अधिकता मिलती है। यों भी सौंदर्य मूलतः दृष्टि का विषय है, इसलिए सौंदर्य वर्णन से उत्पन्न बिम्ब भी अधिकांशतः चाक्षुष ही होते हैं। इस प्रकार रूप, रंग, आकृति, गति आदि के चित्रण दृश्य बिम्ब के अंतर्गत आते हैं। 'कुछ विद्वान उक्त पांच से स्वतंत्र छठी ऐन्द्रिय 'अनुभूति' मानते हैं जो पेशियों और स्नायुओं से उत्पन्न होती है ... वास्तव में गति बिम्ब में रूप और शब्द के तत्व ही अधिक स्पष्ट रहते हैं, अतः रूप बिम्ब तथा शब्द बिम्ब से सर्वथा भिन्न गति बिम्ब की स्वतंत्र कल्पना अधिक ग्राह्य नहीं है।[187] यह बात अवश्य है कि 'स्थिर वस्तुओं की अपेक्षा गतिशील वस्तुओं का बिम्बांकन दुरूह होता है, इसलिए भाषाविद् एवं कला निष्णात कवि ही गत्वर बिम्ब विधान में सफल होते हैं।'[188] सुमित्रा नंदन पंत की निम्नलिखित पंक्तियों में गत्वर बिम्ब की छटा दर्शनीय है :–

मृदु मंद मंद, मंथर मंथर
लघु तरणि हंसिनी की सुन्दर
तिर रही खोल पालों के पर।

गंगा में 'नौका विहार' का दृश्य हैं। हंसिनी के समान सुंदर वह छोटी सी नौका पाल रूपी पंखों के सहारे मधु मंथर गति से तैर रही है। नौका की मंद मंथर गति का चित्र स्पृहणीय है।

श्रवणेन्द्रियों के द्वारा श्रव्य बिम्ब की सृष्टि होती है। यह बिम्ब नादात्मकता अथवा ध्वन्यात्मकता पर आधारित होता है। नगेन्द्र के अनुसार–वर्ण,

ध्वनि, छान्दस, लय, तुकान्त आदि के बिम्ब श्रव्य हैं, अनुप्रास, वृत्ति आदि से भी श्रव्य बिम्बों का उत्पादन होता है।[189] जैसे :–

झूम–झूम मृदु गरज–गरज घनघोर।
राग अमर! अम्बर में भर निज रोर।
झर झर, निर्झर गिरि सर में,
घर, मरू, तरू, मर्मर सागर में,
सरित, तड़ित गति चकित पवन में,
मन में, विजन गहन कानन में
आनन आनन में रव घोर कठोर।
राग अमर! अम्बर में भर निज रोर।[190]

उक्त उदाहरण में अनुरणनात्मक शब्द विधान द्वारा श्रव्य बिम्ब की सहज एवं प्रभावशाली अभिव्यक्ति हुई है।

गंध बिम्बों का प्रयोग काव्य में विरल है। 'विश्व के काव्य में, डॉ. नगेन्द्र के अनुसार ऐसे उदाहरण एकत्र करना कठिन है जिनमें संश्लिष्ट घ्रातव्य बिम्ब प्रस्तुत किये गये हैं। कीट्स जैसे कवि के काव्य में भी, जिसका' ऐन्द्रिय सम्वेदन अत्यन्त प्रखर था, इस प्रकार के उदाहरण दो बार ही मिलते हैं और उनका ग्रहण भी सर्वसुलभ नहीं।[191] भिन्न–भिन्न गंध रूपों के प्रतीक फूलों एवं चंदन आदि के द्वारा भी गंध बिम्ब बनाए जाते हैं। निराला की 'बनबेला' कविता में घ्रातव्य बिम्ब की प्रस्तुति देखी जा सकती है।

खोली आंखे आतुरता से, देखा अमन्द,
प्रेयसी के अलक से आती ज्यों स्निग्ध गंध।

रसना से संबंधित संवेदनों की अभिव्यक्ति आस्वाद्य बिम्बों से होती है। ध्वनि, रूप, प्रेम आदि की प्रभावाभिव्यक्ति के लिए भी आस्वाद्य बिम्बों का प्रयोग किया जाता है। जैसे–निराला की ही पंक्ति, 'मधु ऋतुरात, मधुर अधरों की पी मधु, सुध बुध खोली' में प्रयुक्त 'मधुर अधर' व 'मधु ऋतुरात' में आस्वाद्य बिम्ब है।

त्वक् इंद्रिय के संवेदनों से स्पर्श्य बिम्ब प्रादुर्भूत होते हैं। उष्ण, शीत, कोमल, कठोर, रूक्ष, मसृण आदि स्पर्श बिम्ब के रूप हैं। जैसे :–

साड़ी की सिकुड़न सी, जिस पर
शशि की रेशमी विभा से भर,
सिमटी है वर्तुल, मृदुल लहर [192]

उक्त उदाहरण में 'रेशमी विभा' और 'मृदुल लहर' में स्पर्श्य बिम्ब है।

दृश्य, श्रव्य, घ्रातव्य, आस्वाद्य, स्पर्श्य, ऐन्द्रिक बिम्बों के अतिरिक्त ऐन्द्रिक संवेदनाओं के आधार पर – 1. सह संवेदनात्मक, 2. वेगोद्भेदक और 3. समानुभूतिक बिम्बों को भी माना गया है। सह सम्वेदनात्मक बिम्ब में भावनाओं, अनुभूतियों और प्रेरणाओं का विशेष योग होता है। जब कविता में ध्वनि, वर्ण, गंध का एक साथ ही बोध हो तो ऐसे बिम्बों को सहसंवेदनात्मक या मिश्र बिम्ब कहते हैं। 'ऐसे बिम्बों के श्रष्टा कवि किसी एक ही भाव भूमि पर स्थिर नहीं रहते बल्कि एक प्रकार के संवेग और संवेदन से दूसरे प्रकार के संवेग और संवेदन तक आसानी से पहुंचते रहते हैं।'[193] ये संवेदनाएँ अपने में गहन एवं विविधता को एकाकार किए रहती है, जैसे अग्नि को स्पर्श किए बिना उष्ण, फूल को सूंघे बिना सुगंधित और मधु के चखे बिना हम स्वादिष्ट कह देते हैं। इसमें एक इन्द्रिय के कार्य के साथ दूसरी इन्द्रियाँ भी सजग रहती हैं। 'इस भावना की आवृत्ति से बने संस्कारों के कारण हमारे इन्द्रियबोध में विनिमय सा होता रहता है। इसी विनिमय के या विपर्यय के परिणामस्वरूप ही सह–संवेदनात्मक बिम्बों का निर्माण होता है, इसे मिश्र बिम्ब भी कहा जाता है। क्योंकि ऐसे बिम्बों में विविध प्रकार के इंद्रिय बोधों का मिश्रण होता है।'[194] जैसे :–

भर गया जुही के गन्ध पवन।
उमड़ा उपवन वारिद वर्षण।
तोड़े तोड़े खिल गये फूल,
छाये गंगा के कूल–कूल।

महके तरूणी के नव दुकूल।
गजरों से भर दी गयी रवन। (195)

उक्त उदाहरण में 'जूही के गंध' एवं 'गजरों से भर दी गयी रवन' में घ्राण, 'उमड़ा उपवन', 'वारित वर्णन' में दृश्य तथा गंगा के 'कूल–कूल' में श्रव्य बिम्बों की योजना की गयी है।

वेगोद्भेदक बिम्ब प्रायः गति और ध्वनि के विरूप सम्मिश्रण से उत्पन्न होते हैं। कुमार विमल के शब्दों में 'वेगोद्भेदक, बिम्बों की सृष्टि अधिकतर गति और ध्वनि के विरूप मिश्रण से हुआ करती है। कहा जाता है कि जिस कवि के पास सम्मूर्तन प्रधान कल्पना की प्रधानता रहती है, उसकी कृतियों में चाक्षुष वेगोद्भेदक बिम्बों की अधिकता मिलती है। उत्कृष्ट कोटि के वेगोद्भेदक बिम्बों में 'वेग' और 'उद्भेद', गति और विस्फोट ये सब एक साथ रहते हैं।(196) जैसे :–

अहे वासुकि सहस्त्र फन
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरंतर,
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षःस्थल पर।
शत्–शत् फेनोच्छवसित, स्फीत फूत्कार भयंकर,
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर।(197)

समानुभूतिक बिम्ब में कवि अपनी भावना, स्वभाव, मनोदशा, एवं व्यक्तित्व का आरोप बहिर्जगत या दृश्य जगत पर करता है। 'समानुभूतिक बिम्बों में कवि एक ओर अपने वर्ण्य–विषय को इन्द्रिय ग्राह्य बनाता है, वहीं दूसरी ओर अपनी पूरी संवेदना को भी व्यक्त करने की चेष्टा करता है। यह कहा गया है कि समानुभूतिक बिम्ब अधिकांश में चाक्षुष ही हुआ करते हैं।(198) इसमें रचनाकार अनुभूति के स्तर पर वर्ण्यवस्तु से अभिन्न हो जाता है। जब जड़ प्रकृति पर चेतना का आरोप करके कवि उसे चेतन प्राणी के रूप में वर्णित करता है, तो समानुभूतिक बिम्ब की सृष्टि होती है।(199) जैसे :–

है अमानिशा, उगलता गगन घन अंधकार,

खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन चार,
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल,
भूधर ज्यों ध्यान मग्न, केवल जलती मशाल।[200]

उक्त उदाहरण में उगलना, खोना, स्तब्ध होना, गरजना, ध्यानमग्न होना आदि चेतन क्रियाओं का अचेतन वस्तुओं पर ऐसा आरोप किया गया है कि उससे वर्णित जड़ सृष्टि चेतन हो उठी है। 'इस तरह मानवीकरण से लेकर' 'पैथटिक फैलेसी' तक का क्षेत्र समानुभूतिक बिम्बों के अंतर्गत पड़ता है।'[201]

(3) <u>भावों के आधार पर</u> –

भाव बिम्ब का अनिवार्य तत्व है। "काव्य बिम्ब स्वभावतः सामान्य बिम्ब की अपेक्षा अधिक रंगमय और समृद्ध होता है और उसे यह रंग या समृद्धि भाव से ही प्राप्त होती है।"[202] आचार्य भरत के अनुसार – 'आत्माभिनयनंभावो' अर्थात् आत्मा का अभिनय भाव है। भाव ही आत्म चैतन्य में विश्रान्ति पा जाने पर रस होते हैं।'[203] भाव ही विभाव, अनुभाव, संचारी भाव से पुष्ट होकर काव्य को रसमय बनाते हैं।[204] रति, हास, उत्साह, विस्मय, भय, शोक, जुगुप्सा, क्रोध, निर्वेद, वात्सल्य के अलावा, भक्ति एवं विचारणा सम्बन्धित तथा स्मृति, गर्व, उत्सुकता, विबोध, मोह, स्वप्न आदि संचारी भावों से सम्बद्ध बिम्ब भी काव्य में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

(4) <u>अनुभूतियों के आधार पर</u> –

अनुभूतियों के अनुक्रम में सरल, विरल, जटिल तथा संश्लिष्ट अनुभूति के द्वारा क्रमशः सरल, विकीर्ण, जटिल और संश्लिष्ट या मिश्र बिम्ब निर्मित होते हैं।[205] सरल अनुभूति से प्रेरित बिम्ब सरल होता है, जैसे :–

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या सुंदरी परी–सी
धीरे–धीरे–धीरे।[206]

'परी' के रूप में 'सन्ध्यासुन्दरी' की एक स्थिति, एक रेखा, एक रंग तथा एक दृश्य की अभिव्यक्ति सरल अथवा एकल बिम्ब के रूप में हुयी है।

संश्लिष्ट (मिश्र) अनुभूति का बिम्ब संश्लिष्ट या मिश्र होता है। इसमें अनेक बिम्ब परस्पर सम्बद्ध रहते हैं। जैसे पंत की 'एकतारा' कविता :–

नीरव संध्या में प्रशान्त
डूबा है सारा ग्राम प्रान्त
पत्रों के आनन अधरों पर
सो गया निखिल वन का 'मर्मर'।
ज्यों वीणा का तारों में स्वर।[207]

उक्त उदाहरण की प्रथम दो पंक्तियों में चाक्षुष एवं अंतिम दो पंक्तियों में ध्वनि बिम्ब है।

पंत जी की ही एक अन्य कविता 'अल्मोड़ा का बसंत' में 'शीतल हरीतिमा की ज्वाला में स्पर्श्य (शीतल और ज्वाला) और दृश्य (हरितिमा और ज्वाला) बिम्बों के मिश्रण को देखा जासकता है। 'कविता में न केवल बिम्ब मिश्रित हो जाते हैं, बल्कि एक प्रकार के बिम्ब दूसरे प्रकार के बिम्ब में रूपान्तरित भी हो जाते हैं।'[208] पंत जी ने ही लिखा है :–

"दूर उन खेतों के उस पार, जहाँ तक गयी नील झंकार'

इस पंक्ति में क्षितिज की नीलिमा का दृश्य बिम्ब 'झंकार' के श्रव्य बिम्ब में परिवर्तित हो गया है।

(5) <u>अभिव्यक्ति के आधार पर</u> –

अभिव्यक्ति के आधार पर बिम्बों का वर्गीकरण दो रूपों में किया जा सकता है – 1. लक्षित बिम्ब और 2. उपलक्षित बिम्ब।

कविता में लक्षित बिम्ब का आधार वर्ण्य विषय या प्रस्तुत होता है और उपलक्षित बिम्ब का आधार अप्रस्तुत होता है। लक्षित बिम्ब विधान में केवल प्रत्यक्ष वस्तु का चित्रांकन किया जाता है, इसलिए लक्षित बिम्ब प्रायः इकहरे और चित्रात्मक होते हैं। उपलक्षित बिम्ब सादृश्य मूलक एवं वैषम्य मूलक अलंकारों से संबंधित तथा कवि के 'अवचेतन' में स्थित होने के कारण दुहरे

रूप में बिम्बांकित होते हैं।

'कुछ आलोचक लक्षित बिम्ब को ही शुद्ध बिम्ब मानते हैं, दूसरी कोटि के बिम्ब को (उपलक्षित) वे सादृश्यमूलक अलंकारों के अंतर्गत रखते हैं। उनके अनुसार तीव्र संवेदनशीलता बिम्ब की पहली शर्त हैं। जो दूसरी कोटि के बिम्बों में नहीं होती।'[209] जैसे :–

दृढ़ जटा मुकुट हो विपर्यस्त, प्रति लट से खुल,
फैला पृष्ठ पर बाहुओं पर, वृक्ष पर विपुल।
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर, नैशांधकार,
चमकती दूर ताराएँ हों, ज्यों कहीं पार।

–– राम की शक्ति पूजा, निराला।

यहाँ पहली दो पंक्तियों में 'राम के पृष्ठ पर', 'बाहुओं पर' तथा 'वक्ष पर' फैला 'जटाजूट' प्रत्यक्षतः प्रस्तुत है जिससे लक्षित बिम्ब तथा अंतिम दो पंक्तियों में 'राम' के रूप में 'दुर्गम पर्वत' एवं 'कालीजटा' के रूप में 'नैशांधकार' का चित्रण अप्रस्तुत के रूप में होने से उपलक्षित बिम्ब की योजना हुई है।

'प्रबंध काव्य में घटना, प्रकरण, कथानक के अपने–अपने बिम्ब होते हैं। डॉ. नगेन्द्र ने स्पष्टतः संकेत करते हुए लिखा है कि 'घटना बिम्बों के समन्वय से प्रकरण बिम्बों का निर्माण होता है, ... इसी प्रकार संपूर्ण कथानक भी एक वृहद् बिम्ब है, जिसका निर्माण अनेक प्रकरण बिम्बों से मिलकर होता है, यही प्रबंध बिम्ब है।'[210]

बिम्बों का संसार परिमित नहीं है, अलंकार, शब्द शक्तियाँ, लोकोक्तियाँ, सूक्तियाँ, मुहावरे, प्रतीक, मानवीकरण, पौराणिक कथाएँ आदि अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम हैं, जो बिम्बों की निर्माण प्रक्रिया में अपनी प्रभावशाली भूमिका निभाते हैं। उपर्युक्त बिम्बों के अलावा 'मनोविज्ञान' में परोक्ष अनुभव से सम्बद्ध अनुबिम्ब, प्रत्यक्ष बिम्ब, स्मृति बिम्ब, कल्पना बिम्ब, स्वप्न बिम्ब, तन्द्रा बिम्ब तथा मिथ्या प्रत्यक्ष 'बिम्ब' [211] का भी उल्लेख किया गया है।

––00––

संदर्भ सूची

1. दि एडवान्स्ड लर्नर्स डिक्सनरी आव करेण्ट इंगलिश सेकेंड एडीशन 1963, पृष्ठ–490.
2. अंग्रेजी–हिन्दी कोश–फॉदर कमिल बुल्के, प्रथम संस्करण 1968, पृष्ठ–309.
3. A picture or representation (not Necersarily Visual) in the Imagination or memory - Chamber's Twenteeth Century Dictionary-Latest Impression 1960, Page-527.
4. हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश–संकलनकर्ता–विश्वेश्वर नारायण श्रीवास्तव, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, पेज–1065.
5. द पोएटिक इमेज पृष्ठ–19.
6. इन साइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका, 12, 103
7. काव्य बिम्ब, पृष्ठ–2.
8. आलोचना–कविता की मुक्ति, डॉ. नवल किशोर, 'नवल' के लेख से उद्धृत
9. शेक्सपीयर इमेजनरी एण्ड हवाट इट टेल्स अस. पृष्ठ–9
10. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब–विधान का विकास केदारनाथ सिंह, पृष्ठ–15.
11. महादेवी के काव्य में बिम्ब विधान, पृष्ठ–15.
12. नई कविता और नरेश मेहता – विमला सिंह, पृष्ठ–35.
13. द इमेजरी ऑफ कीट्स एण्ड शेली– 'रिचर्ड हर्टर फागले', पृष्ठ–03.
14. धर्मवीर भारती, अनुभव और अभिव्यक्ति–बिम्ब विधान, हरिश्चन्द्र वर्मा, पृष्ठ–135.
15. डॉ.नगेन्द्र–काव्य बिम्ब, पृष्ठ–6.
16. रामचन्द्र शुक्ल–चिंतामणी (भाग–1) 1970, पृष्ठ–196.
17. काव्य बिम्ब – डॉ. नगेन्द्र 44.
18. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान – केदारनाथ सिंह पृ. 13
19. साहित्य दर्पण – पृ. 10/50
20. काव्य–दर्पण – रामदहिन मिश्र पृ. 380

21. काव्य बिम्ब – डॉ. नगेन्द्र पृ. 44
22. काव्य बिम्ब – डॉ. नगेन्द्र 40.
23. साहित्य दर्पण – 10/51
24. काव्य दर्पण – रामदहिन मिश्र पृ. 381
25. शोध और सिद्धांत – 'भारतीय काव्य शास्त्र में बिम्ब विषयक संकेत' डॉ. नगेन्द्र पृ. 121
26. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान – डॉ. केदारनाथ सिंह पृ. 36
27. वही पृ. 41
28. शोध और सिद्धांत – भारतीय काव्यशास्त्र में बिम्ब विषयक संकेत–डॉ. नगेन्द्र पृ. 122
29. वही, पृ. 123 से उद्धृत्
30. उत्तर रामचरित, भवभूति 4/25
31. विश्वम्भरा पत्रिका, अंक 3 सन् 1970 पृ. 33–52 पर प्रकाशित
32. द पोएटिक इमेज, सी.डे. लेविस पृ. 17
33. कविता के नए प्रतिमान नामवर सिंह, पृ. 138
34. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान–केदारनाथ सिंह पृ. 32–33
35. शोध सिद्धांत–भारतीय और पाश्चात्य काव्य सिद्धांत, डॉ. नगेन्द्र पृ. 200
36. कालिदास की बिम्बयोजना, अमलेश गुप्ता पृ. 53
37. काव्य बिम्ब – डॉ. नगेन्द्र पृ. 13–14
38. अमलेश गुप्ता – कालिदास की बिम्ब योजना पृ. 54 से उद्धृत
39. डॉ. नगेन्द्र, भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका पृ. 245
40. कालिदास की बिम्ब योजना, अमलेश गुप्ता पृ. 58
41. वही पृ. 58
42. ध्वन्यालोक पृ. 1.13
43. कालिदास की बिम्ब योजना–संस्कृत काव्यशास्त्र एवं बिम्ब विधान अमलेश गुप्ता पृ.–59
44. शोध और सिद्धांत–भारतीय काव्य शास्त्र में बिम्ब विषयक संकेत – डॉ. नगेन्द्र पृ. 123

45. शोध और सिद्धांत – डॉ. नगेन्द्र पृ. 124

46. काव्य प्रकाश – आचार्य विश्वेश्वर पृ. 29–30

47. काव्य बिम्ब – डॉ. नगेन्द्र पृ. 43

48. अभिनव भारती – अभिनव गुप्त पृ. 279

49. डॉ. नगेन्द्र : साधना के आयाम सं. कुमार विमल पृ. 123

50. तार सप्तक सं. अज्ञेय – पृ. 262.

51. कालिदास की बिम्ब योजना से उद्धृत

52. चिंतामणी भाग 1, रामचंद्र शुक्ल पृ. 148

53. काव्यात्मक बिम्ब–अखौरी ब्रजनन्दन प्रसाद पृ. 215

54. भारतीय काव्य शास्त्र में बिम्ब विषयक संकेत–शोध सिद्धांत –
डॉ. नगेन्द्र पृ. 125

55. भारतीय तथा पाश्चात्य काव्य शास्त्र – शांति स्वरूप गुप्त पृ. 146 से उद्धृत

56. वक्रोक्ति जीवित चर्चा – क्षेमेन्द्र, 18 (वृत्ति)

57. डॉ. नगेन्द्र, पाश्चात्य समीक्षा की रूपरेखा – पृ. 28 से 66

58. पोएटिक्स । x 6,

59. एरिस्टोटल, फिजिक्स, II 188.

60. L. Abererombe - Principal of Literary criticism, पृ.–81

61. अंग्रेजी की स्वच्छंद कविता, प्रमोद वर्मा, पृ.–78

62. भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र – शांति स्वरूप गुप्त पृ. 217

63. वही, पृ. 278

64. वही, पृ. 278

65. अपारे काव्य संसारे कवि रेकः प्रजापतिः ।
यथा स्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्त्तते ।। ध्वन्यालोक, पृ.–498.

66. ध्वन्यालोक, पृष्ठ–542.

67. चिंतामणि भाग–1, पृष्ठ–204.

68. छायावादी काव्य, पृष्ठ–364.

69. ऋषभायण – 254.

70. डॉ.भगीरथ मिश्र, नया काव्य शास्त्र, पृष्ठ–108

71. चिंतामणि भाग–1, पृष्ठ–198.

72. अनुकृति, जतन लाल रामपुरिया, पृष्ठ–7 से उद्धृत

73. छायावादी काव्य, लेखक डॉ. कृष्णचंद्र वर्मा, पृष्ठ–366

74. अंग्रेजी की स्वच्छन्द कविता, लेखक प्रमोद वर्मा, पृष्ठ–76.

75. शेक्सपीअर्स इमेजरी एण्ड व्हाट इट टेल्स अस, केंब्रिज, प्रथम संस्करण 1939, पृष्ठ–14.

76. काव्यालंकार सूत्र

77. काव्य प्रकाश, प्रथम सूत्र–1

78. साहित्य दर्पण 1/3.

79. रस गंगाधर : काव्यमाला, पृष्ठ–4.

80. चिंतामणी भाग 1 इंडियन प्रेस प्रयाग 1970, पृष्ठ–113.

81. जयशंकर प्रसाद–काव्य और कला, प्रथम संस्करण, पृष्ठ–17–18.

82. Poetry is the spontaneous over flow of powerful feeling attakes its origin from emotion recallected in tranguitity.

83. डॉ. आदित्य प्रसाद तिवारी–सूरसागर और रामचरित मानस का तुलनात्मक अनुशीलन, पृष्ठ–22–23.

84. Poetic image.

85. अमलेश गुप्ता–कालिदास की बिम्ब योजना, पृष्ठ–1.

86. मेमो मलिक–रीति इतर काल में बिम्ब विधान, पृष्ठ–3.

87. डॉ. आदित्य प्रसाद तिवारी–सूरसागर और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 23–24.

88. R.H. Fogle in imagery of Keats and Shelley, Emotion is the beginning and the end of the poetry in a sense unknown to prose. Page-17.

89. डॉ. आदित्य प्रसाद तिवारी–सूरसागर और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ–24.

90. सेन गुप्ता, S.C. पृष्ठ–37.

91. कालिदास की बिम्ब योजना–अमलेश गुप्ता, पृष्ठ–18.

92. काव्य मीमांसा अध्याय–4, पृष्ठ–15, प्रकाशक ओरिएण्ट इन्स्टीट्यूट बड़ौदा, 1934.

93. बायोग्राफिया लिटरेरिया, पेज–154.

94. डॉ. कृष्णदेव झारी–भारतीय काव्य शास्त्र के सिद्धान्त, प्रथम संस्करण, पृष्ठ–251.

95. काव्यांग कौमुदी, पृष्ठ–31.

96. वासवदत्ता, पृष्ठ–343.

97. कालिदास की बिम्ब योजना, अमलेश गुप्ता, पृष्ठ–23.

98. पोएटिक इमेज, पृष्ठ–7.

99. वही, पृष्ठ–39.

100. कालीदास की बिम्ब योजना, पृष्ठ–23.

101. गणपति चंद्र गुप्त, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सूत्र, पृष्ठ–143.

102. पल्लव की भूमिका, सुमित्रा नंदन पंत, पृष्ठ–17.

103. नाट्य शास्त्र, काव्य माला, पृष्ठ–93.

104. वही, पृष्ठ–93.

105. दशरूपक, देखें–भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र, डॉ. कृष्णदेव शर्मा, पृष्ठ–171–172.

106. कालिदास की बिम्ब योजना, अमलेश गुप्ता, पृष्ठ–62.

107. शोध और सिद्धांत, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ–144.

108. शोध और सिद्धांत, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ–144.

109. तुलसी प्रज्ञा , देखें अश्रुवीणा में बिम्ब योजना, डॉ.हरिशंकर पांडेय, पृष्ठ–42.

110. देखें–सूरसागर और रामचरित मानस का तुलनात्मक अनुशीलन, डॉ. आदित्य प्रसाद तिवारी, पृष्ठ–174.

111. रस मीमांसा, पृष्ठ–119.

112. रामचरित मानस, पृष्ठ–224.

113. रामचरित मानस, पृष्ठ–223.

114. मेक इट न्यू, पृष्ठ–36.

115. संस्कृत पोएटिक्स, पृष्ठ–94.

116. देखें, नयी कविता का अनुशीलन–डॉ.ललिता अरोड़ा, पृष्ठ–206.

117. देखें, नयी कविता का अनुशीलन–डॉ.ललिता अरोड़ा, पृष्ठ–206.

118. रामचरित मानस बालकाण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ–251.

119. देखे, काव्यांग कौमुदी (तृतीय कला)–विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृष्ठ–50.

120. तुलसी–प्रज्ञा अप्रैल जून–1992, देखें अश्रुवीणा में बिम्ब योजना, डॉ. हरिशंकर पाण्डेय

121. काव्य शोभा करान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते या अलंकरोतीति अलंकारः।

122. काव्य मीमांसा, अध्याय–2, पृष्ठ–3.

123. नन्द दुलारे बाजपेयी–आधुनिक साहित्य, पृष्ठ–354.

124. डॉ. भगीरथ मिश्र–हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास, पृष्ठ–220.

125. डॉ. माधुरी नाथ–मीरा काव्य का गीतिकाव्यात्मक विवेचन, पृष्ठ–165.

126. कृष्ण देव शर्मा–भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र, पृष्ठ–38.

127. नयी कविता स्वरूप और समस्याएँ, पृष्ठ–75.

128. स्पेक्यू लेसन्स, पृष्ठ–281.

129. उपमा कालिदासस्य, पृष्ठ 5–6.

130. अमलेश गुप्ता–कालिदास की बिम्ब योजना, पृष्ठ–45.

131. तीसरा सप्तक–सम्पादकीय, अज्ञेय, पृष्ठ–125.

132. छायावादी काव्य संदर्भ वैविध्य–सं. शीतला प्रसाद दुबे, पृष्ठ–15.

133. वही, पृष्ठ–15 से उद्धृत।

134. हिन्दी कविता : तीन दशक पृष्ठ–123.

135. नयी कविता की भाषा – डॉ. रविनाथ सिंह, पृष्ठ–72.

136. नये कवियों के काव्य शिल्प सिद्धांत दिविक रमेश, पृष्ठ–286.

137. पोयटिक इमेज, पृष्ठ–40.

138. अज्ञेय, आत्मनेपद, पृष्ठ–45.

139. अज्ञेय काव्य : सौंदर्य चेतना के बहिरंग आयाम, पृष्ठ–243.

140. वही, पृष्ठ–241.

141. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब, विधान, केदारनाथ सिंह, पृष्ठ–28, 31.

142. भाषा और संवेदना–रामस्वरूप चतुर्वेदी।

143. फिलासफी इन ए न्यू की – एक.के.लैंगर, पृष्ठ–32.

144. चिंतामणी, भाग–2, पृष्ठ–25.

145. सायक्लाजी टाईम्स, पृष्ठ–291.

146. अज्ञेय काव्य का शास्त्री अध्ययन, डॉ. फुलवंत कौर, पृष्ठ–239

147. साहित्य समीक्षा के पाश्चात्य मानदंड, डॉ. राजेन्द्र वर्मा, पृ.–121

148. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान, केदारनाथ सिंह पृ.–15.

149. शिल्प और दर्शन, पंत. पृ.–14

150. चिंतामणि भाग–1, पृ.–15

151. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान पृ. 13

152. तीसरा तार सप्तक, सं. अज्ञेय, पृ. 116

153. नदी की बाँक पर छाया, अज्ञेय, पृ. 49

154. चाँद का मुँह टेढ़ा है – मुक्तिबोध पृ. 27

155. नये कवियों के मान्य शिल्प सिद्धांत, दिविक रमेश, पृ. 309

156. विचार बोध–केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 235

157. आधुनिकता कविता में बिम्ब विधान, केदारनाथ सिंह, पृ. 89

158. समय–समय पर केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 191

159. कवियों के कवि शमशेर – रंजना अरगड़े, पृ. 166

160. जंगल का दर्द, पृ. 42 सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

161. विचार बोध – केदारनाथ अग्रवाल पृ. 235

162. आलोचना जुलाई से सितम्बर 1968 पृ. 74

163. ज्ञानोदय, सितम्बर 1963 पृ. 13

164. कविता के नये प्रतिमान – डॉ. नामवर सिंह, पृ. 133

165. कविताएँ – 2 पृ. 117

166. कविता के नये प्रतिमान – डॉ. नामवर सिंह पृ. 139

167. विचार बोध – केदारनाथ अग्रवाल पृ. 234 – 235

168. नये कवियों के काव्य शिल्प सिद्धांत–दिविक रमेश पृ. 314

169. डॉ. राजेन्द्र वर्मा–साहित्य समीक्षा के पाश्चात्य मानदंड, प्रथम संस्करण, पृष्ठ–124.

170. चक्रकाल (भूमिका) पृष्ठ–72.

171. लिटरेरी एसेज ऑफ एजरा पाउण्ड, पृष्ठ–23.

172. डॉ.कृष्णदेव शर्मा–पाश्चात्य काव्य शास्त्र, सप्तम संस्करण 1979, पृष्ठ–178.

173. पोएटिक इमेज, पृष्ठ–90.

174. शोध और सिद्धांत, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ–119.

175. नया हिन्दी काव्य और विवेचन, पृष्ठ–334.

176. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, पृष्ठ–81.

177. नई कविता के प्रबन्ध काव्य–शिल्प और जीवन दर्शन, पृष्ठ–215.

178. शोध और सिद्धांत–काव्य बिम्ब : स्वरूप और प्रकार, पृष्ठ–119.

179. डॉ. सुधा सक्सेना, जायसी की बिम्ब योजना, पृष्ठ–115.

180. केदारनाथ सिंह–आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान का विकास, पृष्ठ–223.

181. डॉ.नगेन्द्र–शोध और सिद्धांत–मनोविज्ञान में बिम्ब का स्वरूप, पृष्ठ–134.

182. डॉ.केदारनाथ सिंह–आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान का विकास, पृष्ठ–223.

183. वही, पृष्ठ–232.

184. डॉ. आदित्य प्रसाद तिवारी, सूरसागर और रामचरित मानस का तुलनात्मक अनुशीलन, पृष्ठ–50.

185. डॉ.केदारनाथ सिंह–आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान, पृष्ठ–21.

186. डॉ. आदित्य प्रसाद तिवारी–सूरसागर और रामचरित मानस का तुलनात्मक अनुशीलन, पृष्ठ–50.

187. डॉ.नगेन्द्र, शोध और सिद्धान्त, पृष्ठ–130.

188. डॉ.आदित्य प्रसाद तिवारी, सूरसागर और रामचरित मानस का तुलनात्मक अनुशीलन, पृष्ठ–50.

189. डॉ. नगेन्द्र, काव्य–बिम्ब, पृष्ठ–09.

190. निराला, परिमल, पृष्ठ–175.

191. डॉ. कृष्णदेव शर्मा, पाश्चात्य काव्य शास्त्र, पृष्ठ–184.

192. सुमित्रानन्दन पंत, नौका विहार

193. डॉ. कृष्णचंद्र वर्मा, छायावादी काव्य, पृष्ठ–380.

194. डॉ. कृष्णचंद्र वर्मा–छायावादी काव्य, पृष्ठ–380–81.

195. निराला – गीत कुंज

196. डॉ.कुमार विमल–छायावाद का सौंदर्य शास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ–211.

197. पंत–परिवर्तन.

198. डॉ.कृष्णचंद्र वर्मा–छायावादी काव्य, पृष्ठ–370.

199. डॉ. आदित्य प्रसाद तिवारी, सूरसागर और रामचरित मानस का तुलनात्मक अनुशीलन, पृष्ठ–52.

200. निराला – राम की शक्तिपूजा

201. डॉ.कुमार विमल–सौंदर्यशास्त्र के तत्व, पृष्ठ–225.

202. डॉ. नगेन्द्र – शोध और सिद्धांत – काव्य बिम्ब स्वरूप और प्रकार, पृष्ठ–109.

203. जयशंकर प्रसाद–काव्य और कला, पृष्ठ–59.

204. 'विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रस निष्पत्ति–भरत का नाट्य शास्त्र, षष्ठ अध्याय', पृष्ठ–274.

205. डॉ. नगेन्द्र–काव्य बिम्ब, पृष्ठ–10–11.

206. निराला, अपरा, पृष्ठ–22.

207. सुमित्रानंदन पंत, एक तारा ।

208. नंदकिशोर नवल – कविता की मुक्ति।

209. डॉ. केदारनाथ सिंह–आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान का विकास, पृष्ठ–106.

210. डॉ. नगेन्द्र – काव्य बिम्ब, पृष्ठ–13–14.

211. डॉ. नगेन्द्र शोध और सिद्धान्त–मनोविज्ञान में बिम्ब का स्वरूप, पृष्ठ–131.

–00–

तृतीय अध्याय
ऋषभायण में ऐन्द्रिक बिम्ब

ऐन्द्रिक बिम्ब का स्वरूप एवं प्रकार

इंद्रियों का कार्यक्षेत्र व्यापक है। मूल रूप से इन्द्रियों का विभाजन दो रूपों में किया गया है, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय। किसी भी वस्तु की स्थिति का अनुभव ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ही सम्भव हो पाता है। वस्तुतः ऐन्द्रियता का आशय उन प्रत्यक्ष अनुभूतियों से है, जो किसी न किसी संवेदना के आधार पर ग्राह्य होती हैं। विभिन्न ज्ञानेन्द्रियाँ चक्षु, कर्ण, नासिका, रसना, त्वचा का विषय क्रमशः दृश्य, नाद, गंध, आस्वाद्य एवं स्पर्श्य है, जिसके आधार पर बिम्बों का निर्माण होता है। कवि की जितनी भी संवेदनात्मक अवस्थाएँ होती है, वे इंद्रियों के द्वारा ही अभिव्यक्त होती हैं। इसीलिए ऐन्द्रियता को बिम्ब का अनिवार्य तत्व माना गया है। कवि में संवेदनात्मकता जितनी गहरी एवम् वैविध्यपूर्ण होगी उसका बिम्बाकंन भी उतना ही स्पष्ट एवं सहज होगा। ऋषभायण में संवेदनाओं के आधार पर ऐन्द्रिक बिम्बों का विभाजन निम्नलिखित रूपों में किया गया है :–

(1) चाक्षुष बिम्ब
(2) श्रोत बिम्ब
(3) घ्राण बिम्ब
(4) रस बिम्ब
(5) स्पर्श बिम्ब (त्वग्)
(6) एकल ऐन्द्रिक बिम्ब
(7) संश्लिष्ट ऐन्द्रिक बिम्ब
(8) गतिक ऐन्द्रिक बिम्ब
(9) स्थित ऐन्द्रिक बिम्ब

(1) चाक्षुष बिम्ब :–

काव्यात्मक बिम्बों में चाक्षुष बिम्बों की संख्या सबसे अधिक रहती है क्योंकि चक्षु इन्द्रिय के ज्ञान का मुख्य साधन है। अन्य संवेदनाओं से संबंधित वस्तुओं में भी कुछ न कुछ दृश्यता का गुण विद्यमान रहता है। इसलिए काव्य में दृश्य बिम्बों की प्रचुरता स्वाभाविक है। 'ऋषभायण' में चाक्षुष बिम्बों की प्रबलता एवं बहुलता है। मनुष्य और वस्तुओं के संबंध में कवि का ज्ञान क्षेत्र जितना विस्तृत है उतने ही विविध उनके दृश्य बिम्ब हैं। कवि सृष्टि की अनेक वस्तुओं, व्यापारों, घटनाओं, स्थलों से प्रभावित हुआ है। जिससे उनका बिम्बांकन इतने श्रेष्ठ रूप में हुआ है जिसकी अनुभूति पाठक को साकार रूप में होती है। दृश्य बिम्ब के अन्तर्गत रूप, रंग, आकृति, गति आदि के आधार पर 'बिम्बों का दृश्यांकन' किया जाता है। आचार्य महाप्रज्ञ ने नट जल, किनारा, लता, नक्षत्र, अंधकार, प्रकाश, बीज, सूर्य, माला, बादल, दुपहरी, कली, सागर, गगरी, दीप, वैडूर्य, तिलक, विद्युत, मुकुर, चाँद–चाँदनी, चकोर, कमल, वृक्ष, धारा, पर्यंक, कुहरा, पत्थर, नदी, अंतरिक्ष, पृथ्वी, पाताल, वर्षा, गज, हिमगिरि आदि का सफल एवं मनोहारी बिम्ब प्रस्तुत किया है। सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति ऐसे सहज एवम् बोधमय बिम्बों से की गयी है जहाँ गंभीर अर्थों का उद्घाटन बहुत ही सहजता से होता जाता है। इस प्रकार ऋषभायण में घटना, परिस्थिति, वातावरण तथा स्थितियों के द्वारा भावों का ऐसा सजीव चित्रण हुआ है कि पाठक के नेत्रों के समक्ष संपूर्ण दृश्य झूलने लगता है। जीव की संरचना अद्भुत है। क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर इन पाँच तत्वों के द्वारा प्राणी का निर्माण होता है, यह प्रकृति की सतत् प्रक्रिया है। जीव का शरीर इससे ही आबद्ध है। विविध पुदगलों से निर्मित जीव की सत्ता शरीर पर ही केन्द्रित है, यानी 'जीव' की अभिव्यक्ति का माध्यम है शरीर। शरीर व्यक्त है और जीव (प्राण) अव्यक्त। शरीर की सम्पूर्ण जीवन्तता का कारण है 'प्राण'। प्राण, आत्मा, चैतन्यमय है जो शरीर के स्पंदन का कारण है। सामान्य अर्थ में 'जीव' शब्द का प्रयोग प्राणी अथवा जीवधारियों के लिए किया जाता है, जिसमें स्पन्दन प्राण सत्ता के कारण ही हो पाता है। भाव के इस सूक्ष्म रूप का दृश्यांकन 'तीर' से आबद्ध 'नीर' से किया गया है। 'तीर' में मनोरमता तब रहती है, जब उसका सम्पर्क बराबर

'नीर' से बना रहता है। इस प्रकार 'तीर' से 'नीर' की प्रतिबद्धता के बिम्ब से शरीर और आत्मा की एकसूत्रता को व्यक्त किया गया है, जिसे निम्नलिखित उदाहरण में देखा जा सकता है :–

पृथ्वी, सलिल, कृशानु, समीरण,
तरूगण, सब हैं जीव शरीर,
पुद्गल वेष्टित जीव सकल हैं,
बद्ध तीर से जैसे नीर। ऋ.पृ.–5.

लोक और सृष्टि में 'चेतन' और 'अचेतन' ये दो गतिविधियाँ सक्रिय हैं। चेतन, भोक्ता है, जीवन का कारण है, 'अचेतन' भोग्य है जिस पर जीवन टिका हुआ है। एक प्रकार से संपूर्ण सृष्टि भोक्ता और भोग्य का सम्मिश्रण है। सृष्टि में व्याप्त चेतन और अचेतन के इस सूक्ष्म एवं स्थूल रूप को विविध खेलों के माध्यम से अपनी कला–कौशल का रोमांचक प्रदर्शन करने वाले 'नट' के 'बिम्ब' से प्रस्तुत किया गया है। 'चेतन' और 'अचेतन' की वैविध्यता जटिल है 'नट' का कौतुक भी जटिल है, किन्तु बोधमयता की दृष्टि से सहज है। संपूर्ण प्रकृति दशा के उद्घाटन के लिए कलाव्यापार में निपुण 'नट' का बिम्ब सार्थक और प्रशंसनीय है :––

चेतन और अचेतन दो हैं –
मूल तत्व ये नित्यानित्य ऋ.पृ.–04

\+ + +

रंगभूमि में ये दोनों नट,
खेल रहे हैं नाना खेल।
इनके पर्यायों से ही है,
हरी भरी जीवन की बेल। ऋ.पृ.–05.

यहाँ गौर करने की यह भी बात है कि जब तक 'नट' अपना कौतुक दिखलाता रहता है, तब तक दर्शक की दृष्टि उससे बँधी होती है, अलग नहीं हो पाती। संसार में भी लोग इस सृष्टि की लोकमाया में बंधे रहते हैं, उससे उबर नहीं पाते। इस प्रकार संसार में जीवन का विकास होता रहता है, जीवन के इस विकास

को 'हरी भरी बेल' के बिम्ब से व्यक्त किया गया है।

युगलों का प्रारम्भिक जीवन शिक्षा दीक्षा से अछूता है, पठन, पाठन, भाषा, शब्दाकोष का रंचमात्र भी विकास नहीं हुआ है। इन सब के विकास की सम्भावनाएँ हैं किन्तु कुशल मार्गदर्शन का अभाव है। जिस प्रकार दिवस में नक्षत्रों की स्थिति आसमान में होती है किंतु वे दिखाई नहीं देते, उसी प्रकार से भाषा विकास की संभावनाएँ होते हुए भी उसके अस्तित्व का प्रकाशन नहीं हो पा रहा है। पठन, पाठन व भाषा के इस अविकास की स्थिति को दिवस में तिरोहित 'नक्षत्र' के बिम्ब से प्रस्तुत किया गया है :–

पठन–पाठन काव्य भाषा, शब्दकोश वितर्कणा।
सब तिरोहित हैं, दिवस में, ज्यों नखत की अर्पणा। ऋ. पृ.–10.

दृश्य बिम्बों के उद्‌घाटन में कवि ने 'चीरहरण' बिम्ब का सार्थक उपयोग किया है। कल्पवृक्ष जब युगलों की आवश्यकता पूर्ण करने में कार्पण्य करने लगे, तब उनमें संग्रह की प्रवृत्ति का जन्म होने लगा जिससे समाज में कलह बढ़ने लगा। यहाँ कलहरूपी 'तिमिर' के विनाश एवं विकास रूपी प्रकाश की स्थापना के संबंध में 'चीरहरण' बिम्ब का प्रयोग सार्थक है। अंधकार का शमन धीरे–धीरे होता है, एक बारगी नहीं। चीरहरण की एक–एक क्रिया अंधकार को निर्वस्त्र कर प्रकाश का संकेत देती है।[1] (ऋषभायण पृ. 20)

'दिनकर' उपमान का बिम्ब विविध रूपों में प्रस्तुत किया गया है। सूर्य निष्पक्ष रूप से संपूर्ण सृष्टि को आलोकित करता है, उसमें कहीं भी किसी क्षेत्र को अधिक अथवा किसी क्षेत्र को कम प्रकाशित करने का भाव नहीं होता। समाज व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित 'निष्पक्ष' कुलकर ही कर सकता है। यहाँ निष्पक्ष रूप से कुलकर के कार्य संपादन को 'दिनकर' के बिम्ब से प्रस्तुत किया गया है :–

हो पक्षपात अज्ञात धर्म कुलकर का,
केवल प्रकाश का प्रसर काम दिनकर का। ऋ.पृ.–21.

सामान्यतः कवियों द्वारा 'अज्ञान' के लिए 'तमस' शब्द का प्रयोग होता

रहा है। समाज में प्राचीन काल से ही शिक्षा के क्षेत्र में नारियाँ पिछड़ी रही हैं। इस क्षेत्र में पुरूष समाज द्वारा उनका शोषण होता रहा है जिस कारण नारियाँ एक लम्बी अवधि तक अज्ञान के अंधकार में भटकती रही। दीर्घावधि तक नारियों की अज्ञान दशा को 'तमस' के बिम्ब से प्रस्तुत किया गया है :—

पशु–पक्षी शिक्षित हो सकते, फिर नारी की कौन कथा ?
दीर्घकाल अज्ञान तमस की, झेली उसने मौन व्यथा। ऋ.पृ.–67.

शिक्षा–दीक्षा के समुचित विकास हेतु ऋषभदेव ने बाहुबली को मानव, पशु तथा मणि के पहचान की विधिवत् शिक्षा दी जिससे इस विद्या का प्रचुर मात्रा में विकास हुआ। इस प्रकार निम्न उदाहरण में विद्या वैभव को 'दीवट' एवं ज्ञान को 'ज्योति दीप' के दृश्य बिम्ब से चित्रित किया गया है :—

'बाहुबली को मानव–मणि–पशु,–लक्षण का संज्ञान दिया।
विद्या वैभव के दीवट पर, ज्योतिदीप संधान किया।' ऋ.पृ.–67.

नैसर्गिक जीवन की समाप्ति के बाद युगलों में कलह, दमन, अतिक्रमण वृत्ति धीरे–धीरे बढ़ने लगी। पूर्व में संबंधों से दूर युगल अधिकार भाव से प्रेरित हो अब एक सूत्रता में बंधने लगे जिसे 'माला के मनका' के बिम्ब से तथा युगलों के प्राकृतिक जीवन से कुलकर व्यवस्था में परिवर्तित जीवन को निरभ्र आकाश में छाए हुए 'बादल' के बिम्ब से चित्रित किया गया है :–

नैसर्गिकता की इति, अथ हुआ दमन का।
हर युगल बना है अब माला का मनका।
नव युग का नव जीवन आकस्मिक आया।
जैसे निरभ्र अंबर में बादल छाया। ऋ.पृ.–22

आकाशीय बिम्बों में तारा, बिजली, सूर्य एवं बादल का बिम्बात्मक चित्रण महाकाव्य में प्रचुर मात्रा में हुआ है। अयोध्या के पुरिमताल के शकटानन उद्यान में ऋषभ देवताओं एवं विशाल जनसमूह को सम्बोधित करने के लिए उपस्थित हुए हैं। श्रोताओं एवं दर्शनार्थियों की असंख्य भीड़ है, जिसे आकाश में व्याप्त असंख्य 'तारों'

के दृश्य बिम्ब से प्रस्तुत किया गया है :—

पुरिमताल के शकटानन में, प्रभुवर ऋषभ पधारे हैं।
एकत्रित हैं अनगिन सुर–नर, नभ में जितने तारे हैं। ऋ.पृ.–150.

जनधारणा के आधार पर भी 'तारा' एवं सूर्य का बिम्ब नियोजित किया गया है। बाहुबली को संदेश देने के लिए भरत द्वारा प्रेषित दूत बहली देश की जनता की पूर्वधारणा का चिंतन करते हुए सोचता है कि क्या भरत को 'तारा' के समान तथा बाहुबली को 'आदित्य' के समान तेजस्वी मानना औचित्य पूर्ण है? यहाँ शौर्य एवं तेजस्विता को ध्यान में रखते हुए भरत को 'तारा' एवं बाहुबली को 'आदित्य' दृश्य बिम्ब से प्रस्तुत किया गया है :–

बाहुबली की कीर्ति–गाथा, क्या यहां औचित्य है ?
धारणा क्यों भरत तारा, बाहुबलि आदित्य है । ऋ.पृ.–229

'भरत को 'रत्नमणि' और 'रत्न काकिणी' जैसे दिव्य आयुध रत्नों की उपलब्धि ा हुई थी जिसकी तेजस्विता का चित्रण 'सूर्य' की तेजस्विता से किया गया हैं :–

रत्न प्रवर मणि और काकिणी,
सूर्य सदृश्य तेजस्वी. ऋ.पृ.–165.

विकेन्द्रित शासन पद्धति के लिए कवि ने मेघखण्डों का बिम्ब निर्मित किया है। ऋषभ ने राज्य व्यवस्था के संचालन हेतु उग्र, भोज, राजन्य, क्षत्रिय आदि विभागों की स्थापना की। जिस प्रकार से मेघखण्ड सम्पूर्ण आसमान में अपने अलग अस्तित्व का प्रकाशन करते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक विभागों के स्वतंत्र प्रभार से सुदृढ़ राज्य व्यवस्था की नींव पड़ी। यहाँ विकेन्द्रित शासन पद्धति को गगन खण्ड में फैले हुए बादल के बिम्ब से प्रस्तुत किया गया है :–

सवया सम अधिकार प्राप्त जन, श्रेणी प्रज्ञापित 'राजन्य'
बनी विकेंद्रित शासन–पद्धति, गगनखंड में ज्यों पर्जन्य। ऋ.पृ.–70.

आसमान में कौंधने वाली 'विद्युत' का बिम्बात्मक प्रयोग परम्परा से कान्ति या चमक के रूप में होता रहा है। यहाँ परम्परित रूप से 'विद्युतलेखा' का बिम्ब

युगलों के खानपान व्यवस्था में रत 'गृही रत्न' के लिए किया गया है, जिससे उसकी तीक्ष्ण आभा का प्रकटीकरण होता है :—

प्रतिदिन भोजन–पान व्यवस्था, गृह–रत्न की रेखा।
दिव्यशक्ति की अद्‌भुत माया, नभ में विद्युत्‌लेखा। ऋ.पृ.–165.

दृश्य बिम्बों के उद्‌घाटन में जलीय बिम्बों का उपयोग कवि ने खूब किया है। प्राकृतिक जीवन में बदलाव आने के कारण सौधर्म लोक के अधिपति के सहयोग से युगलों का प्रवेश नगरीय जीवन में हुआ। जो युगल अभी तक कल्पवृक्षों की छाया में खुशहाली का जीवन जीते थे, उनका निवास स्थान अब नगर बना। उनके जीवन का रूपांतरण ऐसा था, जैसे 'सागर' का प्रवेश 'गगरी' में हो रहा हो। यहाँ 'सागर' के बिम्ब से युगलों के उन्मुक्त, स्वतंत्र जीवन तथा 'गगरी' के बिम्ब से उनके सीमित किंतु अनुशासित जीवन को बिम्बित किया गया है :–

तरूवासी जग का संप्रवेश नगरी में,
मानों सागर का सन्निवेश गगरी में। ऋ.पृ.–56.

आत्म विस्तार अथवा आत्ममंथन से ही एक व्यक्ति में दूसरों के प्रति समत्व दृष्टि का विकास होता है, इस स्थिति में अपने और पराए का ज्ञान नहीं रहता। यहाँ प्रवहमान धारा की निर्मलता से आत्मा की पवित्रता को दृश्यांकित किया गया है :—

आत्मा की निर्मल धारा से, हुआ प्रवाहित समता बोध। ऋ.पृ.–215.

'सुरसरिता' पवित्रता के लिए ख्यात है, इसीलिए व्यक्ति की पवित्रता की तुलना गंगा से की जाती है भरत के सेनानी उनकी विजय का स्वप्न देख रहे हैं, यहाँ सैनिकों के सुखद स्वप्न 'वृत्त' (आचरण) को सुरसरिता की पवित्रता से चित्रित किया गया है :–

स्वप्निल रात्रि, स्वप्निल निद्रा,
एक स्वप्न ही पुनरावृत्त,
विजयी होगा नाथ हमारा,
निर्मल सुरसरिता सा वृत्त।' ऋ.पृ.–273.

खण्डित जीवन की अभिव्यक्ति के लिए 'शाखाहीन वृक्ष' का बिम्ब भी कवि ने प्रस्तुत किया हे। बन्धु विहीन भरत अपने अपूर्ण जीवन के संबंध में आत्मालोचन करते हैं। जिससे उनमें 'विषाद' भाव का प्रस्फुरण होता है, उनकी स्थिति तो शाखा विहीन उस वृक्ष की भाँति है जिसमें कोई आकर्षण नहीं रह जाता। यहाँ 'शाखाविहीन वृक्ष' के बिम्ब से भरत के अपूर्ण जीवन को रेखांकित किया गया है :–

भरत! तुम्हारा कैसा जीवन, तरूवर जैसे शाखाहीन,
बन्धुजनों से विरहित कोई, कैसे हो सकता है पीन। ऋ.पृ.–211.

कवि ने चंद्रमा के प्रति चकोर पक्षी के प्रेम एवं समर्पण का चित्र भी निर्मित किया है। भरत की युद्धेच्छा से खिन्न उनके अट्ठानबे भाई पिता ऋषभ से मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए हिमालय की ओर प्रस्थान करते हैं। ऋषभ का स्वभाव कोमल एवं समत्व दृष्टि से मण्डित है। यहाँ 'चाँद चांदनी' के बिम्ब से ऋषभ के शीतल स्वभाव व 'चकोर' के बिम्ब से 98 पुत्रों के प्रगाढ़ समर्पण भाव को व्यक्त किया गया है :–

राजदूत गण को प्रेषित कर, प्रस्थित सब हिमगिरि की ओर।
चाँद–चाँदनी के आशय से, लेता जीवन तत्व चकोर।। ऋ.पृ.–194.

दिव्य विभा की दमक के लिए 'नवयौवना' का दृश्य बिम्ब भी कवि ने प्रयुक्त किया है। आयुध शाला में प्रस्थित भरत जब चक्ररत्न को देखते हैं तो उसकी विभा से वे चमत्कृत हो उठते हैं। चक्ररत्न की विभा ऐसे प्रतीत होती है जैसे 'नवबाला' का यौवन उमड़ रहा हो। सौंदर्य व विभा के लिए 'नवबाला' का बिम्ब आकर्षक बन गया है :–

नृपति भरत अर्चा करने को, पहुँचा आयुधशाला।
चक्ररत्न की दिव्य विभा तब, दमकी बन नव बाला। ऋ.पृ.–163.

भरत के नेत्रों की निर्मलता का उद्घाटन कवि ने दर्पण के बिम्ब से किया है, जिसे निम्नलिखित उदाहरण में देखा जा सकता है :––

हुयी घोषणा शुभ बेला में, चक्रीश्वर होगा अभिषिक्त।
निर्मल नयन–मुकुर में होगी, प्रतिबिम्बित सुषमा अतिरिक्त।। ऋ.पृ.–189.

पिता की गोद संतान के लिए बहुत ही सुरक्षित एवं आरामदायक होती है, जिसके कारण यहाँ पिता ऋषभ की गोद को (पलंग) 'पर्यंक' के बिम्ब से प्रस्तुत किया गया है। पिता की गोद में बैठने के लिए छोटे–छोटे पुत्रों में हमेशा नोंक–झोंक होती रही है। भरत बड़े हैं, बाहुबली छोटे। यदि बड़े भाई का अधिकार होता है तो छोटे का हठ! यहाँ भरत की स्तब्धता छोटे भाई के हठ को भी व्यक्त करती है :–

अंक यह पर्यक जैसा,
तात का उपलब्ध था
मैं प्रथम आसीन होता
भरत उससे स्तब्ध था। ऋ.पृ.–234.

व्यक्ति जब स्मृति की दुनियाँ में विचरण करता है, तब बचपन के एक–एक दृश्य उसकी आँखों के सामने प्रत्यक्ष दिखाई देने लगते हैं। भरत के दूत के उपस्थित होने पर बाहुबली बचपन की स्मृति में लौट आते हैं। उन्हें, बचपन का बीता हुआ क्षण परिवार की सम्पूर्णता का ज्ञान कराता हैं। उस समय उन्हें ऐसा प्रतीत होता है मानो ऋषभदेव का वह सुंदर कक्ष हो जहाँ संपूर्ण भाईयों सहित जीवन विहँसता था :–

आगमन तव भूत क्षण को
कर रहा प्रत्यक्ष है,
हो रहा साक्षात मानो,
प्रभु ऋषभ का कक्ष है। ऋ.पृ.–236.

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि अचार्य महाप्रज्ञ ने दृश्य बिम्बों के उद्‌घाटन में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। प्रकृति के बहुआयामी दृश्यों से भाव का उद्‌घाटन जिस सहजता के धरातल पर हुआ है, उसकी जितनी ही प्रशंसा किया जाय उतना ही कम है।

––00––

(2) श्रोत अथवा ध्वनि बिम्ब

श्रोत अथवा ध्वनि बिम्ब का संबंध श्रवणेन्द्रिय से है। शब्दों का ध्वन्यार्थक प्रयोग जितना ही सार्थक होगा, उसका अर्थ उतना ही गंभीर सहज एवं प्रभावोत्पादक होगा। शब्द जहाँ एक ओर अर्थ की प्रतीति करा वस्तु अथवा भाव का बिम्ब मानसिक स्तर पर उजागर करते हैं वहीं दूसरी ओर ध्वन्यार्थ को मुखर कर आन्तरिक श्रवणों पर एक ध्वनि चित्र भी निर्मित करते हैं। काव्य में ध्वनिपरक स्थितियों का उद्‌घाटन कवियों द्वारा मुख्यतः तीन रूपों में मिलता है। प्रथम रूप में वर्ण सौंदर्य द्वारा ध्वनि संवेदना को प्रस्तुत किया जाता है। इसमें वर्णों की आनुप्रासिक योजना तथा पुनुरूक्त शब्दों के द्वारा ध्वनि की अभिव्यक्ति होती है। इस ध्वनि सौंदर्य का कारण सजातीय वर्णों व शब्दों की व्यवस्था होती है। दूसरे रूप में वे शब्द आते हैं जो अपना अनुकरणात्मक अथवा अनुरणनात्मक महत्व रखते हैं, इससे वातावरण का यथेष्ट सम्मूर्त्तन होता है। तीसरे रूप में श्रव्य बिम्ब ध्वनि प्रतीकों पर आधारित होते हैं, जैसे तंत्री, कोकिल, वंशी, तुरही आदि की ध्वनि। ये ध्वनि, प्रतीक लक्षित एवं सार्थक अर्थ प्रदान करते हैं। छन्द, लय का कविता में विशेष स्थान है। इनके द्वारा भी छान्दस लय परक बिम्बों की रचना होती है।

वस्तुतः यह संपूर्ण सृष्टि विविध प्रकार की ध्वनियों का संगम है। सभी ध्वनियाँ अपने में विशिष्ट होती हैं और उसी अनुरूप अपना मधुर अथवा कर्कश प्रभाव छोड़ती हैं। वर्षा की ध्वनि, बादलों के गरजने की ध्वनि, पवन के प्रभाव से वृक्षों की पत्तियों के हिलने से उत्पन्न ध्वनि, झरना की ध्वनि, नदी की ध्वनि, पशु पक्षियों की ध्वनि, भेरी, शंख आदि की ध्वनियों में पर्याप्त भिन्नता है और इस भिन्नता के कारण ही ये काव्य के क्षेत्र में ध्वनि बिम्बों का निष्पादन करते हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ की वर्ण योजना अत्यन्त सशक्त एवं समृद्ध है। उन्होंने भावों के अनुकूल वर्णों की योजना कर नादसौंदर्य की सृष्टि की है। भावों के अनुरूप मार्दव एवं ओजमय शब्दों के गुम्फन में आप सिद्धहस्त हैं। कोमल भावों की प्रस्तुति के अन्तर्गत वसन्त–उत्सव का निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है :–

मंद–मंद समीरण सुरभित, कर–कर विटपि–स्पर्श,
आगे बढ़ता लगता तरू को, इष्ट वियोग प्रकर्ष,

कण–कण दृष्ट करूण साकार, शाखा–शाखा कंप विकार। ऋ.पृ.–79.

मधु मंथर गति से प्रवहमान समीर जब वृक्षों का स्पर्श कर आगे बढ़ जाता है। तब प्रिय पवन के वियोग से उसकी व्याकुलता और भी बढ़ जाती है। इस प्रकार उक्त उदाहरण में कोमलकान्त पदावली व छान्दस लय मिलकर उपयुक्त वातावरण के सृजन में सहायक हुए हैं।

ओजमय भावों के अनुक्रम में ऐसे शब्दों की योजना की गई है जिससे क्रोध अथवा शौर्य की अभिव्यकित होती है। युद्ध के संदर्भ में परूष शब्दों के मेल से ओजमय भावों का अवलोकन आसानी से किया जा सकता है। अनिलवेग के शौर्य–प्रदर्शन से भरत की सेना पलायन करने लगी, जो एक शक्तिशाली सेना के लिए उपहास का विषय है। इस दृश्य को देख क्रोधाग्नि में जलते हुए भरत ने अनिलवेग पर चक्र से प्रहार किया। परिणामस्वरूप भरत के 'कोपानल' एवं चक्र की ज्वाला से अंतरिक्ष भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवगण भी इस दृश्य को देख आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रह सके :–

गजारूढ़ चक्री ने देखा
अनिलवेग का शौर्य–विलास
देखा अपनी सेना का वह
घोर पलायन कृत उपहास ऋ.पृ.– 260.

कोपानल से ज्वलित भरत ने
फेंका दिव्य शक्तिमय चक्र
अंतरिक्ष की ज्वालाओं से,
विस्मित चकित हुआ सुर–शक्र ऋ.पृ.–261.

यहाँ कवि का पद बन्ध देखने योग्य है एक ओर कोपानल से 'ज्वलित' भरत का गात्र है तो दूसरी ओर 'ज्वालाओं से परिपूर्ण' अन्तरिक्ष का क्षेत्र है। 'सुर शक्र' के चकित होने के केन्द्र में भरत की अपरिमित शक्ति ही है। इस प्रकार ओजमय वर्णों के साहचर्य से यथेष्ट भावों का सृजन हुआ है।

काव्य में वर्णों की आनुप्रासिक संगति से भी नादात्मक सौंदर्य का सृजन होता है। लगता है आचार्य महाप्रज्ञ का कवि मन अनुप्रासों की छटा बिखरने में अधिक रमा है। सम्पूर्ण महाकाव्य में सजातीय अथवा समान वर्णों का प्रयोग अधिक किया गया है, जिससे वर्णों अथवा शब्दों से सहज ही ध्वन्यात्मकता प्रकट होती है, जैसे :—

जेठ मास की तपी दुपहरी, तप्त धूलि धरती भी तप्त,
तप्त पवन का तपा हुआ तन, मन कैसे हो तदा अतप्त ? ऋ.पृ.—198.

\+ + +

क्रीड़ा की कोमल कलियों में, अंकित सबका हाथ। ऋ.पृ.—80.

\+ + +

लीलालीन ललित ललना की, पादाहति से रूष्ट। ऋ.पृ.—79.

\+ + +

सुख की सरिता में सारे जन, है आकंठ निमग्न। ऋ.पृ.—79.

उक्त उदाहरणों में 'त', 'क', 'ल' और 'स' वर्णों के आधिक्य से वर्ण ध्वनि परिलक्षित होती है।

शब्दों के अनुकरणात्मक प्रयोग से सार्थक ध्वनि बिम्बों का सृजन होता है। इसमें एक शब्द दुबारा प्रयुक्त होकर ध्वन्यार्थक रूप में अर्थ गांभीर्य का प्रकटीकरण करते हैं। ऋषभायण में पुनुरूक्त शब्दों की बहुलता से ध्वनि बिम्बों का विस्तार आसानी से देखा जा सकता है, जैसे :—

धन्य धन्य की अन्तर्वाणी, गूँज उठा सारा आकाश। ऋ.पृ.—160.

\+ + +

भाई भाई साथ रहे हैं, चक्षु चक्षु से परिचित पूर्ण। ऋ.पृ.—276.

\+ + +

अग्रज—अग्रज, अनुज—अनुज है, सत्य रहेगा कवि का सूक्त। ऋ.पृ.—274.

उक्त उदाहरणों में पुनुरूक्त शब्द ध्वनि व्यंजक है। प्रथम उदाहरण में माँ मरूदेवा के मोक्ष के पश्चात् ऋषभ के उपदेश से अभिभूत जनमानसकी अन्तर्वाणी

के धन्य–धन्य के उद्‌घोष से संपूर्ण आकाश गूँजने लगा। यहाँ यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि प्रथम शब्द उसी अर्थ में दुबारा प्रयुक्त होकर भाव को सबलता प्रदान करता है। द्वितीय उदाहरण में प्रयुक्त शब्द 'भाई–भाई' और 'चक्षु–चक्षु' से ध्वनित होता है कि भरत और बाहुबली बचपन से ही साथ–साथ रहे हैं, खेले हैं, कूदे हैं और एक दूसरे की आँखों की भाषा भली–भांति समझते हैं। तृतीय उदाहरण में 'अग्रज' और 'अनुज' की पुनुरूक्ति से 'अग्रज' की श्रेष्ठता एवं अनुज की कनिष्ठता व्यक्त की गयी है जिसमें दोनों की मर्यादाएँ भी झलकती हैं।

कवियों के द्वारा ऐसे शब्दों की भी योजना की जाती है जो सामान्य अर्थ के साथ ही साथ सम्बन्धित ध्वनि को भी व्यक्त करते हैं। गुंजारव, कलरव, सिंहनाद, रिमझिम, रम्भाना, झंकार, गर्जन, तर्जन आदि ऐसे शब्द हैं जो अपना ध्वनि परक अर्थ देते हैं। इन अनुरणनात्मक शब्दों में ध्वनि मात्र से अर्थ मुखर करने की विशेष शक्ति होती है, जैसे :–

परिमल रसमय शीतल जलभृत
पूर्णकलश यह अभिनव है
पद्‌माकर के मधु पराग पर,
मधुकर का गुंजारव है। ऋ.पृ.–33.

भ्रमर, कमल का रसपान करने के लिए अधीर रहता है, इसीलिए जब भी उसे 'कमलाकर' के मधुर रसपान का अवसर मिलता है, वह उन्मत्त होकर गुंजार करने लगता है।

भौंरे के गुंजार के साथ कोयल की कल–कूंजन एवम् उसके पंचम स्वर से परिवेश की ध्वनिमयता का अच्छा चित्रण हुआ है। वसंतोत्सव के समय भरत के राज्याभिषेक का आयोजन किया गया है। संपूर्ण प्रकृति में उल्लास है। भौंरे मालती लता का रसपान करते हुए जहाँ गुंजार कर रहे हैं, वहीं कोयल की मधुर ध्वनि भी झंकृत हो रही है। मधु मंथर गति से प्रवहमान पवन का स्पर्श आह्‌लादक एवं प्रसन्नदायी है। यहाँ मधुकर की गुंजार तथा कोयल की 'कलकंठ काकली' से संपूर्ण वातावरण को ध्वनिमय दिखाया गया है :–

लता मालती के मंडप में, मधुकर का गुंजार।
कोकिल का कलकंठ काकली, मंजुलतम उपहार।।

उर्मिल मंद–मंद पवमान, सबके होठों पर मुस्कान। ऋ.पृ.–77.

'कोयल' एवं 'केका' पक्षी के कलरव से मंगल संदेश की भी ध्वनि व्यंजना की गयी है। जब नमि और विनमि से संधि के पश्चात् दिग्विजयी भरत का प्रस्थान अपनी प्रिय नगरी विनीता के लिए होता है, तब उन्हें मातृभूति का प्रत्येक परिवेश आह्लादक प्रतीत होता है। वृक्ष, वानर, कोयल, केका सब परिचित से लग रहे हैं। उस समय कोयल की कल ध्वनि से ऐसा लगता है जैसे वह लोकप्रिय नरेश के आगमन पर विजय के अपने अज्ञात प्रण को दुहरा रही हो और मयूर पक्षी भी अपने मनोरम नृत्य एवम् कलकूजन से कोई कोमल आमंत्रण दे रहा हो। यहाँ कोयल का 'अनजाना सा प्रण' और मयूर के 'कोमल आमंत्रण' को उनकी 'कल ध्वनि' से ही व्यक्त किया गया है :–

कोयल का कलरव अनजाना–सा प्रण है।
केका का कोई कोमल आमंत्रण है। ऋ.पृ.–185.

'श्रावण मास की 'रिमझिम–रिमझिम' वर्षा का ध्वनिमय चित्रण मांगलिक कार्यों के मंगल संदेश के रूप में किया गया है। ऋषभ के पाणिग्रहण संस्कार का दृश्य है।' पाणिग्रहण संस्कार की बेला मांगलिक भावनाओं से परिपूर्ण होती है।' 'सावन की रिमझिम वर्षा' भी आह्लादक, आनंदमयी होती हैं। यहाँ ऋषभ के पाणिग्रहण संस्कार की सरसता को श्रावणी वर्षा की 'रिमझिम' ध्वनि से व्यक्त किया गया है :–

सम्पन्न पाणि से ग्रहण पाणि का पावन,
जैसा बरसा हो रिमझिम–रिमझिम सावन। ऋ.पृ.–51.

कवि ने 'यशोगान' के लिए भी सावन की 'रिमझिम' वर्षा का अनुरणनात्मक बिम्ब प्रस्तुत किया है। भरत के 'चक्री' रूप से अभिभूत कृषक गण उनका स्वागत करने के लिए आतुर हैं। यह गुणगान मात्र वाचिक ही नहीं, हृदय के अन्तः प्रदेश

से उठा हुआ वह मौन आह्लाद है, जिसमें वाचिकता गुप्त है। इस गुप्त यशः ध्वनि को वर्षा की रिमझिम ध्वनि से चित्रित किया गया है :–

विरूदावलि के ये मूक बोल मन भावन।
रिमझिम–रिमझिम बूँदों से जैसे सावन।। ऋ.पृ.–185.

सावन के अतिरिक्त धारासार वर्षा का ध्वनिमय बिम्बांकन भी अभूतपूर्व है। तीव्र वर्षा जिसकी बूँदे पृथ्वी पर प्रबलता के साथ लम्बवत पड़ती हैं, उसे लोक प्रचलन में मूसलाधार वर्षा के नाम से जाना जाता है। अन्न को छाँटते या कूटते समय मुसल से एक विशेष प्रकार की ध्वनि निकलती है। यहाँ 'मुसल' के ध्वन्यात्मक बिम्ब से वर्षा की धारा को चित्रित किया गया है :–

मुसल सदृश वर्षा की धारा, कांप उठा सेनानी। ऋ.पृ.–175.

बिजली की चमक व बादलों की गर्जन–तर्जन का अनुरणनात्मक बिम्ब भी प्रस्तुत किया गया है। गंगा, मागध तथा सिन्धु के क्षेत्रों को विजित करने के पश्चात् भरत की सेना दिव्य आयुधों से सुसज्जित उत्तर दिशा में स्थित राज्यों को जीतने के लिए प्रस्थान की। उस समय दिव्य रत्नमणि के प्रभाव व प्रतिष्ठा से भरत का गज–मस्तक दमकने लगा, जिससे प्रकृति भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी। जैसे बिजली अपनी चमक एवं जलधर अपनी गंभीर गर्जना से भरत की 'गौरव गाथा' को दुहरा रहा हो :–

दिव्य रत्न मणि किया प्रतिष्ठित, दमक उठा गज–माथा।
बिजली चमकी गरजा जलधर, गूंजी गौरव गाथा। ऋ.पृ.–169.

मंगलाचरण के सस्वर पाठ का ध्वनिमय चित्रण अभूतपूर्व है। दिग्विजय के उपरान्त सिंहासनासीन भरत की अभ्यर्थना में जनसमूह का 'मंगल स्वर' लोगों को कर्णप्रिय तो लग ही रहा था। आसमान में भी उसकी अनुगूँज व्याप्त थी :–

मंगल स्वर मंगल पाठक का, बना कर्ण–कोटर का मित्र,
सहसा नील गगन के पट पर, व्यक्त हुआ भावों का चित्र। पृ.–190.

आहार के लिए चक्रमण कर रहे ऋषभ का स्वागत सामान्य जन

'मंगल–स्तवन' से कर रहे हैं जिससे संपूर्ण परिवेश ध्वनिमय हो जाता है :––

थाल मुक्ता से भरा, उपहार कोई ला रहा।
भक्ति भावित भाव कोई, स्तवन–मंगल गा रहा। ऋ.पृ.–118.

व्यक्ति द्वारा किया गया 'सिंहनाद' उसके पौरूष एवं सामर्थ्य को व्यक्त करता है। 'हुंकार' जितनी गुरू गंभीर होगी, प्रभाव भी उतना गहरा होगा। भरत और बाहुबली के सिंहनाद से स्वर की उच्चता एवं सर्वोच्चता यह निर्णय दे देती है कि विजयी कौन होगा ? यदि भरत के सिंहनाद से संपूर्ण दिग–दिगन्त निनादित हो गया, तो वहीं बहलीश्वर का सिंहनाद संपूर्ण 'दिक्कोणों' में व्याप्त हो गया। इस प्रकार बाहुबली के स्वर में भरत का स्वर समाहित हो गया। कवि ने दोनों के सिंहनाद की प्रभावोत्पादकता को ऐरावत गज (बाहुबली) एवं सामान्यगज (भरत) के चिग्घाड़ से व्यक्त की है :––

भरतेश्वर के सिंहनाद से, दिग् दिगन्त में हुआ निनाद।
\+ + +
बहलीवर के सिंहनाद से, व्याप्त हुए सारे दिक्कोण,
हुआ तिरोहित नाद भरत का, ऐरावत सम्मुख गज गौण। ऋ.पृ.–278.

अनुकरणात्मक तथा अनुरणनात्मक शब्दों के अतिरिक्त जब काव्य में किसी विशेष स्थिति, भाव दशा अथवा क्रिया व्यापार की अभिव्यक्ति ऐन्द्रिय ग्राह्य ध्वनि द्वारा की जाती है, तब वहाँ ध्वनि बिम्ब का श्रेष्ठ रूप होता है। इस प्रकार के बिम्बों के निर्माण में ध्वनि प्रतीकों की यथेष्ट भूमिका होती है, जैसे–तंत्री, शहनाई, बंशी, कोयल, केकी, झिल्ली आदि ये प्रतीक जहाँ अपना ध्वनिपरक अर्थ देते हैं वहीं अन्यत्र ये दृश्य बिम्ब के भी माध्यम बनते हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ ने हृदय की आनन्दावस्था का प्रकाशन तंत्री वाद्य यंत्र की झंकार ध्वनि से किया है। चैतन्यावस्था में हृदयरूपी तंत्री के तार जब झंकृत होते हैं, तब उसकी झंकार बहुत ही कोमल होती है, उस समय धरती और आकाश की दूरी भी समाप्त हो जाती है। यहाँ साधना पथ पर अग्रसर ऋषभ के मन और हृदय का सुरूचिपूर्ण बिम्बांकन निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है :––

अन्तर्मानस की उंगली से, हृत् तंत्री का तार।
झंकृत हो कर देता अभिनव, मंजुलतम झंकार।
धरती अंबर सहज समीप, जलता है जब चिन्मय दीप। ऋ.पृ.–91.

प्राकृतिक उपादानों में 'पवन' एवं 'पल्लव' अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। 'पवन' की ध्वनि तथा उसके स्पर्श से 'पल्लव' की ध्वनि संपूर्ण वातावरण को जीवन्त करती है। यहाँ पवन एवं पल्लव की ध्वन्यात्मकता क्रमशः संगीत एवं शहनाई के बिम्ब से जहां प्रभावशाली बन गई है, वहीं संगीत के प्रति कवि की रूझान का भी पता चलता है :–

सुरभि–पवन संगीत गा रहा, पल्लव–रव की शहनाई।
किंशुक कुंकुम रूप हो गया, पुष्पों ने ली अंगड़ाई। ऋ.पृ.–35.

ऋषभायण में 'झिल्ली' जैसे अंधेरा प्रिय कीट का भी ध्वनि रूप में बिम्बाकंन किया गया है। रात्रि के समय झिल्ली की झीं–झीं की ध्वनि से पूरा परिवेश अभिकंपित सा हो जाता है। उसकी ध्वनि में उच्चता सहित इतनी प्रखरता होती है कि वह रात्रि भर गूँजती रहती है। यहाँ झिल्ली रव का विस्तार सहज और स्वाभाविक रूप से दृष्टव्य है :––

उद्योतित खद्योत चमक से, तरू का किसलय–पत्र।
झिंगुर की ध्वनि से अभिकंपित, बीता रजनी–सत्र। ऋ.पृ.–77.

उक्त ध्वनि बिम्बों के अतिरिक्त सागर, लहर एवं निर्झर का ध्वनि परक चित्रण भी कवि द्वारा किया गया है। चंद्रमा के आकर्षण से समुद्र में गगनचुम्बिनी लहरें उठती हैं जिसके कारण कोलाहल ही कोलाहल सुनाई देने लगता है। यहाँ चन्द्रमा के आकर्षण से 'सागर' की 'कोलाहल' ध्वनि को व्यक्त किया गया है :––

चन्द्रमा आकाश में, प्रतिबिम्बि सागर ले रहा,
तुमुल कोलाहल प्रसृत, संकेत अपना दे रहा। ऋ.पृ.–128.

ऋषभ अवतार के पूर्व माँ मरूदेवा के स्वप्न दर्शन के पश्चात् उनके हर्षभाव की अभिव्यक्ति समन्दर के अन्तस्तल से उठी हुयी गगनचुम्बिनी उत्ताल लहरों की वाचालता से की गयी है :––

पता नहीं क्यों आज अहेतुक, हर्ष–वीचि उत्ताल हुई ?
मौन समन्दर, गननचुम्बिनी, लहरी ज्यों वाचाल हुई। ऋ.पृ.–34.

माँ मरूदेवा की समाधि के पश्चात् ऋषभ द्वारा सामान्य जन को दिया गया उपदेश निर्झर की ध्वनि से प्रस्तुत किया गया है :––

सुनो सुनो तुम कान! सजग हो
निर्झर का नूतन संदेश
छिपा हुआ है अपना आश्रय
आकर्षित कर रहा विदेश। ऋ.पृ.–157.

ऋषभ द्वारा राज्य का परित्याग एवं दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् करूणा से परिपूर्ण भरत के स्वर को भी निर्झर की ध्वनि से व्यक्त किया गया है :––

भरतेश्वर के स्वर में करूणा –
रस ने वर निर्झर रूप लिया
जन मानस हर्ष–विभोर हुआ
सबने स्वर में स्वर घोल दिया। ऋ.पृ.–104.

लोकजीवन में, पशुओं में, विशेषतः गाय का सर्वोपरि स्थान है। ग्रामीण परिवेश में प्रातः एवं सायंकाल गायों का रम्भाना एक स्वाभाविक क्रिया है। गोकुल में गायों के रम्भानेसे ध्वनि का सहज प्रसार कर्णप्रिय बन जाता है :–

शस्य – शस्य श्यामल खेतों का,
सरस इक्षुवाटों का व्रात
गोकुल में गौ रंभाने की
ध्वनि होती थी सांय प्रात। ऋ.पृ.–69.

'अहिंसा परमो धर्मः' जीवन का एक ऐसा सूत्र है, जिससे मानवता विहँसती है। किन्तु जहाँ पर हिंसात्मक गतिविधियाँ सक्रिय रहती हैं, वहाँ समाज को अशान्ति एवं दुःख का सामना करना पड़ता है। वस्तुतः हिंसा एक कुप्रवृत्ति है, जिसमें हिंसक का पतित रूप दिखाई देता है। हिंसा के हँसने का तात्पर्य हिंसक की वे क्रूर गतिविधियाँ हैं, जो संपूर्ण मानवता के समक्ष एक जटिल प्रश्न है। जहाँ

अहिंसा का सम्बन्ध सदाचरण, सद्व्यवहार तथा मानवता के विकास से है, वहीं हिंसा का सम्बन्ध अनाचार से है जिसमें हिंसक की संपूर्ण पतनकारी वृत्तियां समाहित हैं। निम्नलिखित उदाहरण में हिंसा को अशांति तथा दुःख के बीज के रूप में आरोपित कर उसके क्रूर अट्टहास को ध्वनित किया गया है :–

मानवीय आचार–संहिता, का आधार अहिंसा है।
शांति भंग दुःख–बीज वपन कर, हंसने वाली हिंसा है। ऋ.पृ.–159.

आज विश्वस्तर पर हिंसा की चरम व्याप्ति विश्व मानव एवं कवि की चिन्ता का कारण है। 'हिंसा' एक ऐसी धारणा है जो संपूर्ण मानवता को पंगु बनाए हुए है। आचार्य श्री ने हिंसा के क्रूर अट्टहास को भी ध्वनि बिम्ब के रूप में व्यक्त किया है। इस प्रकार उक्त संदर्भों के आधार पर कहा जा सकता है कि आचार्य महाप्रज्ञ ने श्रोत संवेदनाओं को मुखरित कर ऋषभायण में उनकी ध्वनि परक प्रतिष्ठा की है।

––00––

(3) घ्राण (गंध) बिम्ब

घ्राणेन्द्रिय का संबंध गंध से है। जिस कवि में गंध संवेदना जितनी तीव्र होगी उसका रूपायण भी भावानुरूप उतना ही सहज एवं सार्थक होगा। यों तो गंध बिम्ब काव्य में विरल होते हैं, जबकि प्रकृति का समूचा विस्तार गंधमय है। गोस्वामी तुलसीदास जैसे महाकवि भी रामचरितमानस में अत्यल्प गंध बिम्बों को निरूपित किया है। गंध बिम्बों की बिम्बात्मकता बहुत कुछ पाठक की गंध संवेदना पर भी आधारित होती है। ऋषभायण में गंधमय बिम्बों का उद्‌घाटन अधिकतर पुष्पों के माध्यम से ही हुआ है, जो परम्परानुसार ही लक्षित होते हैं। इसके अतिरिक्त जल, पवन, उद्यान, वातावरण, सत्य–संयम, आदि को भी गंधमयता प्रदान की गयी है। ऋतुराज वसंत की गंधमय छटा का वर्णन कवि ने अत्यधिक किया है।

गंध वायु का गुण है। वायु के कारण ही गंध का प्रसार होता है। ऋषभ जन्म के पश्चात् सुरभित पवन के प्रभाव से संपूर्ण दिशाएं सुगंधमय हो जाती हैं। विविध पुष्पों के विकास तथा किंशुक कुसुम की लालिमा से युक्त प्रकृति का संपूर्ण दृश्य संगीतमय एवं रूपमय हो जाता है। यहाँ गंधमयता के साथ ध्वनि एवं दृश्य बिम्ब का मिश्रित रूप देखते ही बनता है –

सुरभि–पवन संगीत गा रहा , पल्लव–रव की शहनाई।
किंशुक कुंकुम रूप हो गया, पुष्पों ने ली अँगड़ाई । ऋ. पृ. 35

सृष्टि में जब जब महान आत्माओं का अवतार होता है। तब तब उनके संपूर्ण जीवन का पूर्वाभास प्रकृति स्वमेव ही दे दती है, यहाँ सुरभित पवन के संचार से मानवीयता के मांगलिक भाव के विस्तार को गंधमयता प्रदान की गयी है।

ऋषभराज्य लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना का विश्व मानव को अमर संदेश है। यौगलिक युग को एक सूत्र में पिरोकर जीवन की संपूर्ण सुविधा प्रदान कर जब वे मुनिदीक्षा के लिए अग्रसर होते हैं उस समय भी पवन सुमनों की सुगंधि को परिवेश में प्रसारित कर रहा होता है, इस गंधमय प्रसार में आत्म मुक्ति का दिव्य संदेश भी है –

सुमन–परिमल को पवन गति, प्रगति जैसे दे रहा
एक जन ने दूसरे को, प्रवण बन सब कुछ कहा। ऋ.पृ. 93

वसंत, ऋतुओं का राजा ही नहीं, प्रकृति का श्रृंगार भी है। कवि ने वसंत के स्वभाव के अनुरूप कोमल शब्दों का प्रयोग कर उसकी कोमलता को तो दर्शाया ही है, मध्ुमंथर गति से प्रवहमान सुरभित बयार के संस्पर्श से वृक्षों की वियोग दशा का भी अनुभावन कराया है जिसे निम्न उदाहरण में देखा जा सकता है –

मंद–मंद समीरण सुरभित, कर–कर विटपि–स्पर्श
आगे बढ़ता लगता तरू को, इष्ट वियोग प्रकर्ष। ऋ.पृ. 79

परिमल से परिपूर्ण मधुऋतु स्निग्ध भावों के विस्तारण का कारण है, उसके प्रभाव मात्र से ही पराग से परिपूर्ण पुष्पों का विहंसना सहज हो जाता है। वसंत के इस अनुपम विलास से उपवन का कोना–कोना सुगंधि से परिपूर्ण हो राग भाव की अभिवृद्धि करने लगता है –

परिमल मधुसारथि का मंत्र, विरचित मदनोत्सव का तंत्र,
सुरभित उपवन का हर कोना, विहसित पुष्प पराग,
राग झांकता पूर्ण युवा बन, मीलित नयन विराग। ऋ.पृ. 77

वसंतोत्सव के समय बालाएँ पुष्पाभरण से सुसज्जित हैं, जिससे उनका सौंदर्य मृदु सौरभ से परिपूर्ण है। वसंत का यह प्रदेय अद्भुत है, लोक को समर्पित उसका संपूर्ण साम्राज्य (सौंदर्य, मार्दव, सौरभ) स्तुत्य है –

अलंकरण आभूषण मनहर, पुष्प विनिर्मित सर्व
सुंदरता मृदुता सौरभ के, लोकार्पण का पर्व। ऋ.पृ. 78

पुष्पाभरण से विभूषित ऋषभ के सौदर्य का दृश्यांकन गंधमय वातावरण से किया गया है। वे पुष्पवास गृह में ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, जैसे उनके रूप में स्वयं वसंत मूर्त्तित हो गया हो। यहाँ पुष्पाभरण 'पुष्पवास गृह' तथा 'पुष्पभास' पाठक को तीव्र सुगंध की अनुभूति से परिपूर्ण कर देता है –

पुष्पाभरण विभूषित भास्वर, आदीश्वर संस्फूर्त
पुष्पवास गृह में शोभित है, पुष्पमास ज्यों मूर्त्त। ऋ.पृ. 78

संयममय जीवन की अभिव्यक्ति भी सौरभ से परिपूर्ण वसंत से की गयी है। कण–कण में पुष्पों के रूप में सन्तों का विस्तार अपने में अनाम सुगन्धि को

समेटे हुए है। यहां बसंत की दृश्यता में गंध की चरम व्याप्ति का सहज अनुभव होता है –

संयम जीवन सही वसंत, कण–कण में पुष्पित है संत। ऋ.पृ. 82

सत्य और संयम मुनिजीवन की जहाँ आधारशिला है वहीं जीवन का समग्र यशस्वी रूप भी है। इसके प्रभाव से संपूर्ण जीवन कल्मषों से दूर हो सौहार्द्र, प्रेम और करूणा से सराबोर हो जाता है। ऋषभ–दीक्षा के सुअवसर पर अर्द्धविकसित कलियाँ पूर्ण विकसित हो सम्पूर्ण प्राकार में सत्य–संयम के सौरभ का प्रसार कर रही हैं –

अधखिली कली में विकस्वर, कुसुम का आकार है,
सत्य संयम की सुरभि का, बन रहा प्राकार है। ऋ.पृ. 93

महान आत्माओं की उपस्थिति प्रकृति के लिए विशेष आह्लादक होती है। आत्म सिद्धांत प्रतिपादन हेतु ऋषभ जब पुरिमताल के शकटानन में उपस्थित होते हैं, तब सहसा उद्यान में सभी वृक्ष हरे–भरे हो जाते हैं तथा उसका कण–कण सौरभ से स्नात हो जाता है –

कण–कण में सौरभ फैला है, करता है सबको आह्वान। ऋ.पृ. 152

कवि ने स्वतंत्रता की दिव्य अनुभूति का आस्वादन पारिजात पुष्प के परिमल के रूप में की है। भरत की सेना के प्रकोप से गिरिजनों को रक्षित तथा उनकी स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए कुलदेवता मेघमुख का कथन गन्धानुभूति से परिपूर्ण है –

पारिजात यह स्वतंत्रता का, पुष्पित रहे तुम्हारा ।
बन समीर परिमल फैलना, पावन कृत्य हमारा।। ऋ.पृ. 174

यही नहीं, नमि और विनमि से संधि के पश्चात् भरत जब विनीता नगरी में प्रवेश करते हैं तब प्रकृति के सुरभिमय वातावरण में कृषकगण सोत्सव नयनों से उनका दीदार करते हैं –

सुरभिततर वातावरण प्रकृति का सारा
कृषकों ने नृप को सोत्सव नयन निहारा। ऋ.पृ. 185

प्रिय सम्बन्धों की अभिव्यक्ति भी कवि ने सुवासित सुमन से की है। सांसारिक दृष्टि से संबंधों में खटास आना कोई आश्चर्य की बात नहीं है, उस खटास का निवारण मधुर सम्भाषण से आसानी से किया जा सकता है। युद्ध तो अंतिम विकल्प है, प्राथमिक नहीं। भरत का यह चिंतन सम्बन्धों की प्रियता को लेकर है। मधुर सम्बन्ध रूपी तरू पर भातृत्व रूपी सुरभि सुमन तभी खिल सकता है, जब उसमें मधुरता हो, प्रेम हो।

समर चरम विकल्प उसको, स्थान यदि पहला मिले।
तो मधुर सम्बन्ध तरू पर, सुरभि–सुम कैसे खिले ? ऋ.पृ. 227

युद्ध की वितृष्णा से बाहुबली तपस्या का मार्ग चुनते हैं स्थाणुवत् वे स्थितप्रज्ञ हो जाते हैं, लताएँ उनके गात्र के अवलम्ब से अपना पूर्ण विकास कर उन्हें आवृत्त कर देती हैं, जिससे उनकी केश राशि और अंग–अंग केशर की क्यारी की भांति संपूर्ण क्षेत्र को सुगंधमय कर देती है। यहाँ 'केशर की सी क्यारी' पाठक को सहज ही गन्धानुभूति करा देती है –

आच्छन्न हरित से देह हुई है सारी
कच उत्तमांग के केशर की सी क्यारी। ऋ.पृ. 292

राजनीतिक संदर्भ में गंधमय बिम्बों का प्रयोग अनूठा है। भरत दिग्विजय कर नगर में प्रवेश करते हैं, किन्तु चक्र नगर के बाहर ही स्थिर हो जाता हैं। मंत्री इस बात को जानता है कि बाहुबली के अविजित होने के कारण ही भरत का दिग्विजय का सपना अधूरा ही है। भरत इसका कारण जानना चाहते है किन्तु मंत्री के मौन रहने पर वे कहते है कि यदि समस्या के क्षणों में सचिव ही मंत्रणा के कार्य से सन्यास ले ले तो वह रोहित वृक्ष पर खिले उस फूल की भांति है जिसकी सुरभि वातावरण में तो फैलती है, किन्तु उसकी उपलब्धि नहीं हो पाती । यहाँ मंत्री के चातुर्य पूर्ण आश्वासन को 'रोहितक' के फूल की सुवास से व्यक्त किया गया है –

यदि समस्या के क्षणों में, सचिव ही सन्यास ले,
रोहितक का फूल बनकर, सुरभि का आश्वास दे। ऋ.पृ. 222

भरत को दिए गए 'राजनीति–संबोध' में ऋषभ ने दमनकारी शासन को हेय बताते हुए उसे 'अधः सुवास' के रूप में निरूपति कर उसकी निन्दा की है–

निग्रह कंटक अधः सुवास
वह शासन होता आश्वास । ऋ.पृ. 88

शिक्षा–दीक्षा के ज्ञानमय भावभूमि के विस्तार को भी कवि द्वारा गन्धमयता प्रदान की गयी है। ऋषभ ने अपनी दोनों पुत्रियों ब्राह्मी और सुंदरी को क्रमशः लिपिन्यास एवं गणित के ज्ञान से मण्डित कर नारी को शिक्षा के क्षेत्र में पहला स्थान दिया। इस प्रकार उनके कोमल हृदयों में लिपि एवं गणित रूपी सुवासित पुष्प का विकास हुआ –

लिपि – गणित की शिक्षा में, नारी को पहला स्थान मिला,
कोमलतम अन्तर में कोई, परिमल परिवृत्त पुष्प खिला। ऋ.पृ. 67

उक्त गंध बिम्बों के अलावा परोक्ष अनुभव से सम्बन्धित स्वप्न में गंध बिम्बों का भी उद्‌घाटन माँ मरूदेवा के स्वप्न के अन्तर्गत किया गया है। माँ मरूदेवा ऋषभ जन्म के पूर्व स्वप्न में चौदह मंगलकारी वस्तुओं को देखती हैं जिसमें पुष्पमाला, कुम्भ एवं पद्‌म सरोवर भी हैं, जिसकी गंधमयता चित्ताकर्षक एवं सुरूचिपूर्ण है –

सुरभि–सुमन से गुंफित माला, आलम्बन बनने आई। ऋ.पृ. 32

x x x x

परिमल रसमय शीतल जलभृत, पूर्णकलश यह अभिनव है ऋ.पृ. 33

उक्त गंधमय बिम्बों के आधार पर कहा जा सकता है कि आचार्य श्री ने परंपरानुसार पुष्पों की गंधों का ही अधिकतर बिम्बांकन किया है। प्रकृति का रूप उन्हें विशेषतः आकर्षित किया है, इसलिए महाकाव्य में उन्हें प्रमुखता से स्थान भी मिला है। गंधों के अन्य कारकों का अभाव सा ही दिखाई देता है। फिर भी गंधों की एकरसता का अपना आनंद है, जिससे इंकार नहीं किया जा सकता ।

––00––

4. रस या आस्वाद्य बिम्ब

रसनेन्द्रिय का संबंध स्वाद से है पूर्वानुभूति मधुर, तिक्त, कटु, कषैला और लवणीय आदि रसना के अनुभवों का काव्य में बिम्बात्मक ऐन्द्रियानुभव कराना स्वाद बिम्बों का कार्य है। प्रायः कवियों ने ध्वनि, प्रेम, रूप आदि की प्रभावाभिव्यक्ति आस्वाद्य बिम्बों से की है। आचार्य महाप्रज्ञ ने आस्वाद्य बिम्ब निर्माण में अमृत का सर्वाधिक आश्रय लिया है। अमृत एक कल्पित पदार्थ है जिसका स्वाद अत्यन्त मीठा माना जाता है। शांत वातावरण की मनोमयता का दृश्यांकन सुधापान से किया गया है। युगलों का प्राकृतिक जीवन कलह विहीन था। चारों और शांति ही शांति थी। ऐसे परिवेश में युगल शांत–सुधा का पान कर कलह की व्याकुलता से मुक्त थे –

बात सही है, सोच सही है, हम स्वतंत्र जीने वाले।
किन्तु कलह से व्याकुल, प्रतिपल, शांत सुधा पीने वाले। ऋ.पृ. 19

संयममय जीवन के लिए अमृत का स्वाद परक बिम्ब देखने योग्य है। ऋषभ सामान्यजन को संयम का उपदेश देते हुए कहते हैं कि अतिभोग आत्मिक उत्थान में बाधक है। वह विकृति का कारण है। संयम सुधा के आचमन से ही धर्माचरण सुलभ होता है –

भोग की सीमा करे यह, धर्म है संयम–सुधा ।
सत्य को जाने बिना ही, उलझता मानव मुधा। ऋ.पृ. 96

अंगुष्ठपान के द्वारा भी अमृत की स्वादानुभूति करायी गयी है। स्वभावतः नवजात शिशु अपना अंगुष्ठ पान करता है। यह अंगुष्ठ पान बालक के लिए स्वास्थ्य वर्धक व हितकारी है। बालक ऋषभ भी अंगुष्ठपान में अमृत का आस्वादन कर रहे हैं –

मिला अमृत अंगुष्ठ–पान में, अति पोषक आहार बना।
फलाहार, फिर स्वास्थ्य विधायक, मूल पुष्ट तो पुष्ट तना। ऋ.पृ. 37

सद्भाव की स्वादानुभूति भी अमृत के समान नारिकेल के मीठे जल से कराई गयी है। परोपकार सद्भावना का विशिष्ट गुण है। परोपकारी बाह्यरूप से

कितना ही कठोर हो, आन्तरिक रूप से द्रवीभूत ही होता है –

प्रथम क्षण में पीत जल–स्मृति का प्रकट प्रभाव
देता है जल अमृतसम, नालिकेर सद्भाव । ऋ.पृ. 99

ऋषभ के हस्तिनापुर आगमन पर युवराज श्रेयांस द्वारा उनके रूप का अवलोकन अमृत के आस्वाद से परिपूर्ण है। नेत्र के विषय सौंदर्य का स्वादमय चित्रण अभूतपूर्व है –

देखता अपलक रहा, पल–पल अमृत आस्वाद है।

रूप ऐसा दृष्ट मुझको, आ रहा फिर याद है। ऋ.पृ. 129

कवि ने ऋषभ की 'करूणा' एवं 'कृपा दृष्टि' का चित्रण 'अमृत विकिरण' से कर उसके चरम स्वरूप को रेखांकित किया है। श्रेयांस आहार के लिए चक्रमण कर रहे ऋषभ से निरवद्य इक्षुरस का पान करने के लिए निवेदन करते हैं, साथ ही वे अपने भावना रूपी रिक्त पात्र को भी उनकी कृपा दृष्टि रूपी 'अमृत विकिरण' से पूर्ण कर लेना चाहते हैं –

देव ! यह निरवद्य है, आहार लो, करूणा करो
भावना का पात्र खाली, अमृत–विकिरण से भरो । ऋ. पृ. 131

ऋषभ के इक्षुरस पान को सुधारस की मिठास से व्यक्त किया गया है।

तप से श्याम बना प्रभु का वपु, इक्षु सुधारस सिक्त किया। ऋ.पृ. 135

ऋषभ के स्नेह एवं प्रजाजनों के प्रति वात्सल्य भाव का चित्रण भी सुधा के आस्वाद से किया गया है। ऋषभ तो जन समाज के लिए पिता के समान थे जो उन पर अपने अक्षय वात्सल्य को लुटाते हुए उनकी संपूर्ण पीड़ाओं का शमन कर स्नेह सिक्त नयनों की अमृत वर्षा से सबको तृप्त करते थे –

स्नेह सिक्त नयनों से बरसा, सुधा, तृप्त कर देते थे। ऋ.पृ. 133

मनोरम बंधुप्रेम की स्मृति को भी स्वादमयता प्रदान की गयी है। भरत द्वारा भेजे गए दूत को अपने समक्ष देखकर बाहुबली के मानसपटल पर बचपन की

स्मृति उभर आती है, जिसके आह्लाद की अनुभूति का आस्वादन वे अमृत के स्वाद के रूप में करते है –

उन दिनों की याद में ही, अमृत जैसा स्वाद है,
स्वाद की अनुभूति में जनु, ले रहा आह्लाद है। ऋ.पृ. 234

दिव्य स्वप्नों का बिम्बांकन भी अमृतमय स्वाद से किया गया है। युगल जन्म के पूर्व सुमंगला का आह्लादक स्वप्न, पान किए हुए अमृत–प्याला के समान है। वे ऋषभ से कहती हैं –

बोली, मैंने देखी स्वप्नों की माला,
इस दिव्य निशा में पिया अमृत का प्याला । ऋ.पृ. 51

श्रेयांस का स्वप्न दर्शन, जिसमें वे 'श्याम स्वर्णगिरि' का अभिषेक 'पयस' से करते हैं, वह अमृत के स्वाद के समान है –

स्वर्णगिरि श्यामल, पयस, अभिषेक कर उज्जवल किया,
स्वप्न वह श्रेयांस ने, देखा अमृत जैसे पिया। ऋ.पृ. 125

अमृत और विष का मिश्रित आस्वाद्य बिम्ब भी महाकाव्य में नियोजित है। 'शांति' और 'अशांति' ये दो शक्तियाँ समाज को कल्याण अथवा अकल्याण की ओर ले जाती हैं। शांति कर्म में लीन 'प्रवर पुरोधा' का कार्य अमृतवत् है तो अशांतिकर्मा का कार्य 'गरलवत'। अमृत का आस्वाद गरल की संहारक तीक्ष्णता को निर्वीर्य करने में सर्वथा समर्थ है –

शांति कर्म के प्रवर पुरोधा, ने दायित्व संभाला
कर देता निर्वीर्य गरल को, एक सुधा का प्याला । ऋ.पृ. 165

रत्न काकिणी की ज्योति का आस्वादमय चित्रण अभूतपूर्व है। उस अमित ज्योति के प्रभाव मात्र से ही विष का हरण हो जाता है, उसका मिष्ठ प्रभाव तो अमृत से भी अधिक है –

रत्नकाकिणी विश्व–रश्मिधर, अमित ज्योति की धारा,
अतुल शक्ति है विष हरने की, किंकर अमृत विचारा। ऋ.पृ. 169

भरत के अंतर्द्वन्द्व का प्रकाशन भी अमृत और विष के स्वाद से किया गया है। भरत सोचते हैं कि जिस ऋषभवंश ने समाज को भाई चारे का पाठ पढ़ाया तो क्या उसी वंश के अमृत कलश से भ्रातृ युद्ध रूपी विष का वपन होगा। यहाँ ऋषभ के कल्याणक कार्य को अमृत एवं युद्ध के सम्भावित विनाश लीला को 'विष' से व्यक्त किया गया है –

क्या आज तमस को वही निमंत्रण देगा ?
क्या अमृत–कलश भी कलिमय विष उगलेगा ? ऋ.पृ. 248

प्रिय एवं कटु वाणी के प्रभाव का वर्णन भी 'अमृत' व 'विष' के बिम्ब से किया गया है –

मृदुता कटुता शब्दराशि की, सतत तरंगित लहर हुई,
प्रिय–अप्रिय भावों से आंदोलित अमरित या जहर हुई। ऋ.पृ. 27

प्रिय भावों के प्रकाशन में मधु आस्वाद बिम्ब का आश्रयण प्रशंसनीय है। वर्तमान में भूखप्यास से पीड़ित मुनि बने ऋषभ के अनुयायी अतीत की स्मृति के द्वारा उनकी ममता का आस्वादन मधु के मिठास के रूप में करते हैं –

वर्तमान में मधु ममतामय, वे अतीत के क्षण स्मर्तव्य। ऋ.पृ. 112

स्मृति पटल पर अंकित बाललीला की मधुरता का अंकन मधु के मीठे स्वाद से किया गया है। बाहुबली बचपन की याद करते हुये भरत के दूत से कहते हैं –

बाल लीला की कहानी, मधुर मधु के तुल्य है।
उन दिनों की उन क्षणों की, याद अमिट अमूल्य है। ऋ.पृ. 236

वाणी की मधुरता की अभिव्यक्ति भी मधु के आस्वाद्य से की गयी है। दूत भरत की संदेश सुनाते हुए बाहुबली से कहता है कि यदि मेरे भाइयों को मेरे विजय उत्सव का ज्ञान होता तो वे मुझसे दूर नहीं रहते, प्रत्युत् विनीता पहुँचकर मधुर सम्भाषण करते –

ज्ञात होता तो भरत से, दूर सब रहते नहीं,
क्या विनीता पहुँचकर, दो शब्द मधु कहते नहीं ? ऋ.पृ. 237

मोहभाव का बिम्बांकन भी मधु के स्वाद से किया गया है। सुत, स्वजन परिवार का बंधन 'मोह' का कारण है। इस मोह मधु से ही भरत के तलवार की धार कुण्ठित हो गयी है –

सुत स्वजन का मोह मधु से, लिप्त असि की धार है। ऋ.पृ. 239

शर्करा की मिठास के आस्वादमय बिम्बों का भी चित्रण 'ऋषभायण' में किया गया है। युगलों के प्राकृतिक जीवन की मिष्ठता की अभिव्यक्ति मिट्टी एवं सरिता के मीठे जल से की गयी है, जिसका स्वाद शर्करा के स्वाद से भी अनंत गुना है –

मधुर शर्करा से अनन्त गुण, मिट्टी का रसमय आस्वाद
सरिता के जल की मिठास में, भी मिलता उसका संवाद। ऋ.पृ. 9

छन्द शास्त्र के आत्मसातीकरण के लिए शर्करा मिश्रित दुग्ध का स्वादमय बिम्ब अवलोकनीय है। विद्या विकास के सन्बन्ध में ऋषभ भरत से कहते हैं कि शब्द सिद्धि का द्वार खुलने पर ही छन्दशास्त्र में पारंगत हुआ जा सकता है –

छन्द शास्त्र हो आत्मसात तब, सिता दूध में सहज घुले। ऋ.पृ. 66

इक्षुवाटों से परिपूर्ण सरस भूमि पर रस का आवर्षण इस प्रकार होता है कि उसका कण–कण 'मिठास' से परिपूर्ण हो सबकी भावनाओं को मधुर गुणों से आपूरित कर देता है –

सरस भूमि रस का आवर्षण, कण–कण मे संभरित मिठास
मनस मधुरिमा से आपूरित, गगन–धरा–व्यापी उल्लास। ऋ.पृ. 74

लवण रहित फीके स्वाद का आकर्षक बिम्ब भी प्रस्तुत किया गया है। 'चिंता' की अभिव्यक्ति सीट्ठे या फीके स्वाद से की गयी है। अनिल वेग के तीव्र प्रहार से भरत के सेनापति की मनःस्थिति क्षणिक पराजय बोध से ऐसी हो गयी जैसे लवण रहित शाक का स्वाद फीका होता है –

क्षणिक पराजय से सेनानी, हुआ हतप्रभ हुआ अवाक्
बना अचिंतन चिंतन सारा, लवण रहित पत्ती का शाक। ऋ.पृ. 258

'कड़वे' स्वाद की भी योजना कवि द्वारा की गयी है। सत्यवचन की कर्ण कटुता को औषधीय गुणों से परिपूर्ण 'निम्ब' के कटुस्वाद से व्यक्त किया गया है। मंत्री द्वारा सत्य किन्तु कर्ण–कटु न कहने पर भरत उसे अभय दान देते हुए कहते है –

कटुक औषधि प्रिय नहीं पर, क्या न हितकर निंब है ? ऋ.पृ. 223

बैर भाव से पूर्ण भरत के सेनापति के कथन के उत्तर में अनिलवेग ने बहलीधरा के शौर्य प्रदर्शन को 'नीम' के कड़वे स्वाद से व्यक्त कर उसके अदृश्य गुणों का प्रकाशन किया है –

लब्ध नीम से कड़वाहट है,
नहीं दृश्य है गुण का व्यूह । ऋ.पृ. 257

परम पुरूष के बिम्ब का उद्घाटन भी हितकारी निम्ब के कड़वे स्वाद से की गयी है। आत्मसाक्षात्कार की साधनात्मक प्रक्रिया कठोर होती है किन्तु इस दिव्य उपलब्धि के पश्चात् वह परमानन्द का कारण भी बन जाती है –

मूल्य बिम्ब का नैसर्गिक है, क्या है मूल्यहीन प्रतिबिम्ब ?
सबकी अपनी–अपनी महिमा, कटुक किन्तु हितकर है निम्ब। ऋ.पृ. 300

राजनीतिक संदर्भ में स्वाद बिम्ब की यथेष्ट कल्पना की गयी है। भरत के राज्याभिषेक के शुभ अवसर पर ऋषभ लोककल्याणकारी राजा के गुणधर्म को निरूपति करते हुए क्रूर राजा के कार्य को जनता के लिए 'आमयकर पेय' के रूप में विनाशक मानते हैं ऐसा राजा असफल तो होता ही है, उसका शासन काल भी क्षणिक होता है –

जनता की दुविधा मिटे, शासन का है ध्येय ।
दुविधा की यदि वृद्धि हो, वह आमयकर पेय। ऋ.पृ. 89

इस प्रकार ऋषभायण महाकाव्य में विविध आस्वाद परक बिम्बों का सफल उद्घाटन सहज भाव भूमि पर किया गया है।

---00---

5. स्पर्श बिम्ब

त्वक संवेदनाओं पर आधारित स्पर्श्य बिम्बों का रूपायण ऋषभायण में प्रचुर मात्रा मे किया गया है। आचार्य महाप्रज्ञ ने कोमल, कठोर, उष्ण, शीतल, चुभन आदि स्पर्शपरक संवेदनाओं को रूपायित किया है। उक्त संवेदनाओं का नियोजन समान रूप से हुआ है। कोमल भावों की अभिव्यक्ति सुमन, किसलय आदि के बिम्ब से की गई है। शिशु की मृदुमुस्कान किसे प्रभावित नहीं करती ? शिशु ऋषभ की मृदुमुस्कान को देखकर पुष्पों में प्रतिस्पर्धा का भाव जागृत होने लगता है –

मृदु मुस्कान निहार, सुमन में, प्रतिस्पर्धा का भाव जगा। ऋ.पृ. 37

शिशु ऋषभ के लिए पिता की गोद का आश्रयण तथा पृथ्वी द्वारा प्रदत्त कोमल वानस्पतिक शैय्या कोमल स्पर्शिक बिम्ब से परिपूर्ण है –

अंबर विशद वितान मनोहर, वसुधा ने मृदु तल्प दिया।
पिता गोद वर विश्रामालय, सविता से संकल्प लिया। ऋ.पृ. 36

ऋषभ के चरण की कोमलता के लिए कमल उपमान का स्पर्शिक बिम्ब प्रस्तुत किया गया है। भरत को पिता के कमलवत् चरणों की सेवा में पूर्ण आनंदानुभूति होती है :–

चरणकमल–रजकण की सेवा, देती परम प्रमोद। ऋ.पृ. 84

सामाजिक जीवन में युगलों के नवप्रवेश का बिम्बांकन 'कोमल किसलय' से किया गया है –

पाँच श्रेणियों की रचना से, शिशु–समाज को प्राण मिला।
कर्मभूमि के कोमल किसलय, को आतप से त्राण मिला। ऋ.पृ. 64

शिक्षा के क्षेत्र में नारी का (ब्राह्मी, सुन्दरी) प्रथम प्रदेय तथा उसकी उदारता की अभिव्यक्ति कोमल हृदय में खिले हुए पुष्प से की गयी है –

लिपि–गणित की शिक्षा में, नारी को पहला स्थान मिला,
कोमलतम अन्तर में कोई, परिमल परिवृत पुष्प खिला। ऋ.पृ. 67

यौगिक क्रिया में लीन ऋषभ की साधनात्मक एवं प्रशांत स्थिति का बिम्बाकंन शरद चन्द्र की चाँदनी में पूर्ण विकसित सुकोमल कमल से किया गया है–

भूख, तृषा, अनुभूति अल्पतम, योग–विभूति प्रसाद मिला,
शरदचंद की प्रवर चाँदनी, कमल सुकोमल सुमन खिला। ऋ.पृ. 115

राजा के रूप में ऋषभ के चिकने केशों की स्मृति भी कोमल स्पार्शिक बिम्ब से की गयी है –

वे कहाँ चिकने मृदुल कच, पवन कम्पित यह जटा ? ऋ.पृ. 120

अयोध्या के उद्यान में विराजमान ऋषभ के आभामण्डल के प्रभाव से शाखाओं के कोमल पत्ते भी चमकने लगते हैं –

दमक रहा है, चमक रहा है, हर शाखा का कोमल पर्ण। ऋ.पृ. 154

मृदुल 'व्यवहार' का उद्‌घाटन भी स्पर्श जन्य अनुभूति से किया गया है। ज्येष्ठ भ्राता भरत के राज्य विस्तार से पीड़ित अपने अट्‌ठानबे पुत्रों को संबोध देते हुए ऋषभ कहते हैं कि कोमल व्यवहार संवेदनाओं के आदान प्रदान का सक्षम अस्त्र है। पारिवारिक कलह का शमन अस्त्र–शस्त्र से नहीं अपितु मृदुल व्यवहार से किया जा सकता है –

निजी कलह में काम ने देता, पुत्र! कहीं भी आयस अस्त्र।
मधुर मृदुल व्यवहार परस्पर, संवेदन का सक्षम शस्त्र ।। ऋ.पृ. 201

भरत के प्रति सेनापति की विनम्रता का प्रकाशन भी कोमल स्पर्शिक बिम्ब से किया गया है –

बद्धांजलि विनयानत मुद्रा, सेनापति मृदु स्वर में। ऋ.पृ. 167

'स्नेह' की अनुभूति भी कोमल स्पार्शिक बिम्ब से कराई गई है। भरत के दूत को देखकर बाहुबली को अपने बचपन की याद आ जाती है कि किस प्रकार उन्होंने गज पर आरूढ़ भरत का चरण पकड़कर उन्हें आकाश की ओर उछाल दिया था, किन्तु भ्रातृत्व प्रेम के कारण उनकी कोमल देह यष्टि को उसी प्रकार झेल लिया

था, जिस प्रकार क्रीड़ा में लीन बालक गेंद को झेल लेता है –

बाल–क्रीड़ा निरत बालक, गेंद जैसे झेलता।
भरत को झेला अधर में, स्नेह की कोमल लता।। ऋ.पृ. 235

युद्ध में सूर्ययशा को सम्मुख देखकर प्रेम की प्रगाढ़ता के कारण बाहुबली का शस्त्र कोमल धागे के समान प्रतीत हो रहा है –

शस्त्र बना है कोमल धागा, हो जाओ सहसा अव्यक्त। ऋ.पृ. 266

प्रातःकालीन सूर्य की किरणों का कोमल स्पर्श भी अति आनन्ददायी होता है –

दिनमणि की स्वर्णिम किरणों ने, किया धरा का कोमल स्पर्श। ऋ.पृ. 190

कोमलता के अतिरिक्त कठोरता के आधार पर भी स्पर्श्य बिम्बों का निर्माण कवि ने किया है। युगल नर शिशु के सिर पर तालफल के आघात को वज्र की कठोरता से व्यक्त किया गया है –

सुई समय की घूमी सहसा, एक तालफल टूट गिरा,
वज्राहत सा नर शिशु का सिर, आज हुई है मौन गिरा। ऋ.पृ. 39

युद्ध में भरत के चक्रप्रहार से सुरक्षित रहने के लिए अनिलवेग द्वारा विद्याबल से विनिर्मित सुरक्षा कवच की अभेद्य कठोरता को वज्र की कठोरता से बिम्बित किया गया है –

विद्याबल से किया विनिर्मित, सुदृढ़ वज्रपंजर अभिराम।
मान सुरक्षा–कवच विहग ने, लिया अभय बन कर विश्राम। ऋ.पृ. 261

भरत, बाहुबली के द्वन्द्व युद्ध की घोषणा से बहलीश्वर की सेना विजय के प्रति आश्वस्त है, क्योंकि बाहुबली की भुजा वज्र के समान कठोर एवं शक्तिशाली है –

हर्षित बहलीश्वर की सेना, अब निश्चित है विजयोल्लास
स्वामी का है बाहु वज्रमय, विफल बनेगा भरत प्रयास। ऋ.पृ. 272

पुत्र के कुशल क्षेम के प्रति व्याकुल माँ मरूदेवा की आशंकित मनः स्थिति देखने योग्य है। वे भरत से कहती हैं कि पदत्राण विहीन विचरण करते हुए ऋषभ के मार्ग में प्रस्तर खण्ड होंगे। सूर्य के प्रचण्ड ताप से धरती भी तपती होगी, यह कठोर धरती ही उसकी शैय्या होगी, भला इस स्थिति में उसे नींद कैसे आएगी ? यहाँ बीहड़ मार्ग की जटिलता, प्रचण्डताप से तापित धरती की उष्णता एवं शैय्या के रूप में उसकी कठोरता का उद्‌घाटन निम्नलिखित रूप में किया गया है –

पदत्राण नहीं चरणों में, पथ में होंगे प्रस्तर खंड,
तपती धरती, तपती बालू, होगा रवि का ताप प्रचंड,
भूमी शय्या, वही बिछौना, नींद कहां से आएगी,
रात्रि–जागरण करता होगा, स्मृति विस्मृति बन जाएगी। ऋ.पृ. 148–149

हृदय की कठोरता को भी पत्थर की कठोरता से व्यक्त किया गया है। बाहुबली के पास दूत भेजने के प्रक्रम में भरत चिंतन करते हैं कि क्या उनके द्वारा दूत–भेजना उचित था ? उस समय उनका कलेजा पत्थर के समान कठोर क्यों हो गया था। आत्मनिरीक्षण करते हुये भरत सोचते है कि –

क्या उचित अनुज के पास दूत को भेजा ?
क्यों बना न जाने प्रस्तर तुल्य कलेजा । ऋ.पृ. 245

कठोरता एवं कोमलता का मिश्रित बिम्ब भी महाकाव्य में नियोजित है। भरत द्वारा अट्‌ठानबे भाईयों को भेजे गए संदेश में सेवाभाव को कोमल सुमन का 'तल्प' तथा रणभूमि को कांटों के ताज से व्यक्त किया गया है –

सेवा में यदि मन की कुंठा, फिर रणभूमि अपर विकल्प,
कांटों का क्यों ताज काम्य हो, सेवा मृदुल सुमन का तल्प। ऋ.पृ. 192

भरत पर मुष्टि प्रहार के पश्चात् बाहुबली जहाँ अपनी 'मुष्टिका' को वज्र के समान कठोर कहते हैं, वहीं निर्मल सरोज के समान कोमल भी –

बंधो ! मुष्टि निलय है बल की ,
देखों उसमें कितना ओज,
वज्रादपि यह अति कठोर है,
कोमल जैसे अमल सरोज। ऋ.पृ. 280

कोमलता और उष्णता का एक साथ नियोजन भी सराहनीय है। ऋषभ के अदर्शन के अनुताप से उबल रहा बाहुबली का मन जहां उष्णता की अनुभूति कराता है वहीं सचिव की मधुरवाणी कोमलता का भी परिचय देती है –

बाहुबली का करूण विलाप, उबल रहा मन का अनुताप
बोला मृदु वच सचिव सुधीर, क्यों प्रभु इतने आज अधीर ? ऋ.पृ. 139

इसी सन्दर्भ में सचिव की मृदुवाणी को जलकण की शीतलता एवं बाहुबली की व्यग्रता को दुग्ध के उफान की उष्णता से व्यक्त किया गया है। उफनता हुआ दुग्ध जल के छींटे से शांत हो जाता है –

तप्त दूध में एक उफान, हुआ सचिव वच जल–कण पान।
बाहुबली अंतर्–आह्लाद, पहुँच गया अपने प्रासाद । ऋ.पृ. 140

ऋषभ की स्निग्ध मधुर वाणी की दिव्य अनुभूति जलद के शीतल जल के स्पर्श से की गयी है –

स्निग्ध मधुर मृद प्रभु की वाणी, शीतल जलद अमृत उपमान। ऋ.पृ. 198

बदले के भाव से उन्मत्त भरत पर प्राणघातक आघात के लिए व्याकुल बाहुबली का क्रोध देवताओं की मधुरवाणी से वैसे ही शान्त हो गया जैसे उफनता हुआ दुग्ध जल कण के प्रभाव से शान्त हो जाता है –

सलिल बिन्दु से सिक्त दुग्ध का, शान्त हो गया सहज उफान।
शांत हुआ आवेश जटिलतम, स्फुरित हुआ चिंतन अम्लान।। ऋ.पृ. 288

विरोधी स्पर्श्य अनुभूतियों के चित्रण में आचार्य महाप्रज्ञ की गहन दृष्टि का परिचय मिलता है। शीतलता और उष्णता का संगम अभूतपूर्व है। युद्ध की दाहकता को 'अग्नि' तथा त्याग वृत्ति को जल के 'शीतल' गुणधर्म से व्यक्त किया गया है –

युद्ध की इस अग्नि को यह, त्याग–नीर बुझा सकेगा। ऋ.पृ. 290

क्रोध एवं मधुर वाणी का दाहक व शीतल स्पर्श परक विम्बान्कन भी कवि ने किया है। बालपन में जब भरत बाहुबली के पृष्ठ भाग पर मुष्टि घात कर भाग

जाते हैं, तब बदले की भावना से क्रोधाग्नि में जलते हुये बाहुबली भी प्रतिघात करना चाहते है, किन्तु उनकी क्रोधाग्नि पिता की मधुर वाणी रूपी शीतल जलधारा से शान्त हो जाती है –

कर पृष्ठभाग में मुष्ठि–घात मै दौड़ा,
प्रतिघात हेतु जब भाई ने मुँह मोड़ा ।
उस महावह्नि पर शीतल जल की धारा,
बरसा कर प्रभु ने मुझको सहज उबारा । ऋ.पृ. 246

मानव प्रकृति की आन्तरिक एवं बाह्य दशा का उद्घाटन भी 'वैश्वानर' के दाहक व जल के 'शीतल' स्पर्श से किया गया है–

मानव दुनिया का है सुन्दरतम प्राणी, आकृति दर्शन से जन्मी है यह वाणी।
विज्ञान प्रकृति का कहता अमर कहानी, भीतर वैश्वानर ऊपर–ऊपर पानी।
ऋ.पृ. 250

महाकाव्य में शीतलोष्ण बिम्बों के अतिरिक्त उष्ण परक बिम्बों की भी बहुलता है। दिव्यास्त्र रत्नकाकिणी की प्रखर ज्योति 'अर्चिमय' (चिंगारी) धागे के समान प्रतीत होती है–

रत्नकाकिणी के आलेखन, बने अर्चिमय धागे। ऋ.पृ. 170

आक्रोश एवं अहंकार को दाहक स्पर्शजन्य संवेदना से व्यक्त किया गया है। भरत से युद्ध के लिए तत्पर नमि और विनामि कहते हैं कि अहंकार के वशीभूत युद्धोन्माद के दावानल में बान्धव प्रेम की केशर–क्यारी झुलस जाती है –

अपनी स्वतंत्रता लगती सबको प्यारी, क्या दावानल में खिलती केशर क्यारी?
ऋ.पृ. 180

ज्येष्ठ मास की दाहक स्पर्शानुभूति से मायामोह से ग्रस्त तथा सांसारिक भावनाओं से तप्त मन की दाहकता की अनुभूति निम्न पंक्तियों में दर्शनीय है –

जेठ मास की तपी दुपहरी, तप्त धूलि धरती भी तप्त।
तप्त पवन का तपा हुआ तन, मन कैसे हो तदा अतप्त । ऋ.पृ. 198

प्रबल एवं शक्तिसम्पन्न व्यक्तित्व का दाहक स्पर्श्यजन्य अनुभूति भी दर्शनीय है। दूत बाहुबली से कहता है –

धैर्य है सम्राट का जो, सह रहा है आपको,
सह न सकता शक्ति–विकलित, नर हुताशन ताप को। ऋ.पृ. 240

अरण्य में उत्पन्न प्रथमाग्नि के स्पर्श से युगलों के हाथ झुलस जाते हैं–

देखा युगलों ने तैजस का अर्पण है,
उत्सुक हो छूने आगे हाथ बढ़ाए
दव–अनल–दाह से अलसाए झुलसाए । ऋ.पृ. 58

शक्र से भी लोहा ले सकने में समर्थ चक्री सेना के शौर्य का बिम्बांकन 'ताप' की स्पर्शानुभूति से कराया गया है –

चक्री सेना का ताप कौन सह सकता ? यह चक्र शक्र से भी लोहा ले सकता।
ऋ.पृ. 247

लोभ वृत्ति अग्नि के समान दाहक होती है। इससे व्यक्ति का सामाजिक पतन तो होता ही है, वह स्वयं अपना और दूसरों का सर्वनाश कर देता है। यहाँ सबल युगलों के अतिक्रमण से उपजी लोभेषणा को अग्नि की दाहक स्पर्श बिम्ब से प्रस्तुत किया गया है –

पर वृक्षों पर अधिकार जमाना चाहा,
इस लोभ–अग्नि में सब कुछ होता स्वाहा । ऋ.पृ. 21

तीक्ष्ण वाणी के प्रभाव से हृदय में होने वाली पीड़ा की अनुभूति 'तीर की चुभन' से व्यंजित की गयी है। तीखे शब्दों के बाण लोहे के बाण से भी अधिक मर्मबेधक होते हैं –

1. तीखे शब्दों के तीर परस्पर पाती, जो वींध डालते बिना लोह के छाती।
ऋ.पृ. 251

2. तीर वचन का लोह–तीर से, अधिक बींध देता है मर्म। ऋ.पृ. 254

सेनापति द्वारा छोटी सेना के जीतने तथा बड़ी सेना के हारने के कथन की अनुभूति भरत पुत्र सूर्ययशा को तीर के चुभन के समान होती है। यहाँ सेनापति के 'वचन बाण' सूर्ययशा के लिए (मन को 'आहत' करने वाला) पीड़ा दायक है –

अपनेपन का मोह उदित है, अथवा कायरता का जाल ?
जीत रही है छोटी सेना, हार रहा है सैन्य विशाल। ऋ.पृ. 263
वचन तीर से आहत मानस, बोला सूर्ययशा उद्दाम। ऋ.पृ. 263

स्पर्श्यानुभूति द्वारा भावों का उद्घाटन कठिन होता है, जिसमें कवि को पूर्णरूपेण सफलता मिली है।

---00---

(6) एकल ऐन्द्रिक बिम्ब

एकल बिम्ब अपने में स्वतंत्र और अन्य बिम्बों के पूर्वा पर संबंधों से मुक्त होते हैं सरल बिम्ब एकल होते हैं।[2] इस प्रकार के बिम्बों में स्पष्टता होती है। यदि देखा जाय तो सभी बिम्बों का समाहार किसी न किसी रूप में ऐन्द्रिय परक बिम्बों में होता है। दृश्य बिम्ब सरल भी हो सकता है और संश्लिष्ट रूप में भी अपनी अभिव्यक्ति दे सकता है। सरल अनुभूति के आधार पर सरल अथवा एकल बिम्ब निर्मित होते हैं। ऋषभायण में बूँद, बादल, लहर, निर्झर, वनस्पति, पशु, सूर्य, मणि, विद्युत, मूर्ति, पक्षी, तारा, चीवर, योगी, मीन आदि का एकल बिम्ब प्रस्तुत किया गया है –

यौगलिक समाज में कुलकर व्यवस्था के साथ व्यक्तिवादी अवधारणा का विकास हुआ, विमलवाहन इस व्यवस्था के पहले कुलकर हुए। जनसहयोग से व्यवस्था का संपूर्ण प्रभार उनमें ही समाहित हुआ, व्यक्तिवादी इस धारणा की अभिव्यक्ति दूर्वा की नोक पर चमकती हुयी ओस की बूँद से की गई है –

एकछत्रता व्यक्तिवाद की, दूर्वा के सिर जैसे बिन्दु। ऋ.पृ. 20

कुलकर व्यवस्था के पश्चात् युगलों के नैसर्गिक जीवन का समापन एवं नीतियों से आबद्ध नवजीवन का प्रारंभ हुआ। इस नवजीवन की अभिव्यक्ति स्वच्छ आसमान में छाए हुए बादलों के एकल बिम्ब से की गयी है –

नवयुग का नव जीवन आकस्मिक आया,
जैसे निरभ्र अंबर में बादल छाया। ऋ.पृ. 22

'आशंका' भाव की अभिव्यक्ति की 'बादल' से की गयी है। ऋषभ सुनन्दा के विवाह के प्रति युगलों के मन में उठ रही आशंका को बादल के एकल बिम्ब से प्रस्तुत किया गया है। यहाँ कवि की टिप्पणी देखने योग्य है –

यह नियम निसर्गज, नव्य परिस्थिति आती
तब–तब आशंका बादल बन मंडराती । ऋ.पृ. 49

ऋषभ के राजा बनने के पश्चात् ही राजतंत्रीय शासन–प्रणाली का सूत्रपात हुआ। उन्होंने राज्यव्यवस्था के संचालन हेतु विविध श्रेणियों की स्थापना

की। राज्य व्यवस्था की इस विकेन्द्रित शासन पद्धति को गगनखण्ड में फैले हुए बादलों के बिम्ब से प्रस्तुत किया गया है –

सवया सम अधिकार प्राप्त जन, श्रेणी प्रज्ञापित 'राजन्य'
बनी विकेन्द्रित शासन–पद्धति, गगनखण्ड में ज्यों पर्जन्य। ऋ.पृ. 70

अतिक्रमण के लिए 'लहर' का बिम्ब प्रस्तुत किया गया है। अभाव से ग्रस्त युगलों के अतिक्रमण का बिम्बाकंन काम वासना से उद्वेलित उस व्यक्ति से किया गया है जो संपूर्ण सामाजिक मर्यादाओं का उल्लघंन करने में रंचमात्र संकोच नहीं करता।

अतिक्रमण का दौर चला अति, टूट गया संचित संभाग।
कामवीचि से उद्वेलित जन, देता ज्यों लज्जा को त्याग।। ऋ.पृ. 27

जन्म और मृत्यु का आरेखन सागर में उठती मिटती लहर तथा 'जलती–बुझती' बाती से किया गया है–

लहर सिंधु में उठती–मिटती, फिर उठती फिर मिट जाती।
जन्म–मृत्यु की यही कहानी, जलती–बुझती है बाती। ऋ.पृ. 42

असमय मृत्यु की संत्रासमयी संवेदना से प्रभावित मनःस्थिति का उद्‌घाटन भी कवि ने संवेद्य वनस्पति 'छुई मुई' के बिम्ब से किया है। नरशिशु की असामयिक मृत्यु को देखकर उसके मातापिता की मनो दशा वैसे ही हो गयी जैसे स्पर्शमात्र से 'छुईमुई' कुम्हला जाती है –

काल मृत्यु से परिचित था युग, असमय–मृत्यु कभी न हुई,
प्रश्न रहा होगा असमाहित, बनी मनःस्थिति छुई मुई। ऋ.पृ. 41

मृत्यु के लिए 'निद्रा' का बिम्ब सहज ही प्रयुक्त हुआ है। मृत्यु की चिरनिद्रा में सोए हुए अपने भाई को छोड़कर सुनन्दा कभी न मिल पाने की व्यथा से उस स्थान से अन्यत्र जाना नहीं चाहती –

चलो सुनन्दा ! कहा युगल ने, बोली, कैसे जाएँगे ?
भाई निद्रा की मुद्रा में, फिर न कहीं मिल पाएँगे ? ऋ.पृ. 41

मौन मनः स्थिति के लिए 'शांत सिंधु' का दृश्य प्रस्तुत किया गया है। सेनापति से अपनी सेना की पराजय सुनकर भी भरत शांत समुद्र की भांति गंभीर दिखाई देते है।

शांत–सिन्धु सा मौन भरत नृप, चिंतन की मुद्रा अभिराम। ऋ.पृ. 263

हारती हुई सेना के लिए जल से निर्वासित मीन का बिम्ब पराजय बोध की छटपटाहट से परिपूर्ण है। शक्तिशाली योद्धाओं से सुसज्जित बाहुबली की सेना के समक्ष दिव्य अस्त्रों से रक्षित हारती हुयी भरत की बलशाली सेना की स्थिति वैसे ही हो जाती है जैसे जल से वियुक्त मछली।

बहलीश्वर की सेना अपने, बलशाली सुभटों से पीन।
और हमारी सेना प्रभुवर! है जल से निर्वासित मीन। ऋ.पृ. 262

ओस, लहर, सागर के अतिरिक्त 'निर्झर' का भावात्मक बिम्ब भी प्रस्तुत किया गया है। ये जलीय बिम्ब भावों की विविध परतों का मोचन करते हैं। आहार के लिए चक्रमण कर रहे ऋषभ को हस्तिनापुर में देखकर उनके प्रति जनमानस के मृदुभाव निर्मल निर्झर की तरह प्रवाहित होने लगे –

अलख पदयात्री दशा में, लग रहे थे वे नए,
भावना का विमल निर्झर, जन–मनस में बह चला। ऋ.पृ. 127

पिता के द्वारा राज्यत्याग से व्यथित भरत की करूण पुकार का मर्मभेदी दृश्य भी निर्झर के बिम्ब से प्रस्तुत किया गया है –

भरतेश्वर के स्वर में करूणा, रस ने वर निर्झर रूप लिया। ऋ.पृ. 104

वनस्पतियों के स्वभाव और गुणधर्म के अनुरूप एकल बिम्बों की मुखरता के पर्याप्त उदाहरण भी महाकाव्य में मिलते हैं –

राजनीतिक संदर्भ में वानस्पति बिम्ब अपना गहरा अर्थ देते हैं। अमरबेल से आच्छादित वृक्ष के दृश्य से जहाँ 'धिक्कार' योग्य शोषक का बिम्ब उभरा है, वहीं निरंकुश शासक की शोषण वृत्ति का घातक रूप भी व्यक्त हुआ है –

1. अमरबेल ने आरोहण कर, किया वृक्ष का शोष
वह कैसा प्राणी जो करता, पर–शोषण, निज पोष। ऋ.पृ. 80

2. जनता के कंधे पर चढ़कर, चलने का अधिकार न हो,
सहजीवन में अमरबेल बन, फलने का अधिकार न हो। ऋ.पृ. 89

3. मनुज महत्वाकांक्षी पर, पर निज अधिकार जमाता।
अमरबेल–सा शोषक पर की , सत्ता पर इठलाता। ऋ.पृ. 162

बन्धु बान्धवों से विरहित भरत के जीवन को शाखाहीन वृक्ष से प्रस्तुत किया गया है। भरत स्वयं आत्मालोचन करते हुए इसका अनुभव भी करते है –

भरत ! तुम्हारा कैसा जीवन, तरूवर जैसे शाखा हीन। ऋ.पृ. 211

भावों के विविध बिम्ब पुष्पों के द्वारा भी व्यक्त हुए हैं। 'अप्राप्ति' के लिए अम्बर पुष्प का कल्पित बिम्ब सार्थक है। भिक्षा लाभ के लिए नगर में चक्रमण कर रहे ऋषभ के मनोभावों को जनमानस (समाज) द्वारा न समझने के कारण भिक्षा, लाभ उनके लिए अम्बर पुष्प की भाँति अनुपलब्ध बना रहा –

किन्तु भिक्षालाभ अंबर, पुष्प बन फलता रहा। ऋ.पृ. 119

समाधिस्थ ऋषभ के समक्ष राज्य के लिए नमि–विनमि की व्यर्थ अभ्यर्थना की अभिव्यक्ति 'कान्तार–कुसुम' के बिम्ब से की गयी है –

कान्तार–कुसुमवत व्यर्थ अर्थना सारी,
पल भर में कैसे खिलती केसर क्यारी ? ऋ.पृ. 122

स्वप्न के संदर्भ में श्रेयास, सोमयश और श्रेष्ठिवर्य के हर्षोल्लास से परिपूर्ण मुखमण्डल की आभा का अंकन पूर्ण विकसित कमलके बिम्ब से किया गया है –

राज–संसद में सहज ही, स्वप्न–द्रष्टा सब मिले।
हर्ष से उत्फुल्ल आनन,–कमल अविकल थे खिले। ऋ.पृ. 126

मन,वाणी, कर्म से पवित्र चारित्र की निर्मलता के लिए भी कमल का बिम्ब प्रयुक्त हुआ है। तप जप को जीवन का अंतिम लक्ष्य मानने वाली सुन्दरी के चरित्र

का आख्यान नियोगी 'कमलोपम' के कथन से करता है –

क्षमा करो हे भागिनि देवते ! कमलोपम तव अमल चरित्र । ऋ.पृ. 210

विविध भावों के सृजन के लिए पशुपक्षियों का बिम्ब भी प्रस्तुत किया गया है। एकाकी जीवन के लिए यूथ भ्रष्ट हरिणी के बिम्ब की सटीक योजना की गयी है। नर शिशु की मृत्यु के पश्चात् शोक संतप्त निरावलम्ब सुनन्दा अकेले वैसे ही विचरण कर रही है जैसे अपने समूह से च्युत मृगी इधर–उधर भटकती रहती है –

यूथभ्रष्ट जैसे हरिणी हो, एकल ही वह घूम रही।
हुए अगोचर सभी सहारे, आंख शून्य को चूम रही । ऋ.पृ. 42

रणक्षेत्र में विद्याधर मितकेतु द्वारा भरतपुत्र शार्दूल को नागपाश से बाँधने की क्रिया को पिंजरे में बंद 'सिंह' के बिम्ब से प्रस्तुत किया गया है –

नागपाश से बांधा पल में, पंजर में जैसे शार्दूल। ऋ.पृ. 264

गारूड़ी विद्याबल के प्रभाव से नागपाश से मुक्त शार्दूल सुगति पर आक्रमण कर उसका शिरोच्छेद वैसे ही कर देते हैं जैसे वाजपक्षी विहगों पर झपटकर उसका प्राणान्त कर देता है –

झपटा जैसे बाज विहग पर, किया सुगति के सिर का छेद। ऋ.पृ.264

भरत के पराक्रम का प्रदर्शन भी 'बाज' पक्षी के आक्रमण से किया गया है। अपनी सेना के पलायन से रूष्ट भरत, अनिलवेग के पराक्रम से रक्षित बाहुबली की सेना पर उसी प्रकार से आक्रमण करते हैं, जैसे बाज पक्षी कपोत पर आक्रमण करता है –

अनिलवेग की अनुश्रेणी में, झपटा पारापत पर बाज । ऋ.पृ. 261

माँ की ममता के प्रति पुत्र की निष्ठुरता का चित्रण हंस के उस नवोदित शिशु से किया गया है, जो पंख निकलते ही माँ का साथ छोड़ देता है–

माता की आंखों में आंसू, पुत्र निठुर हो जाते हैं।
विस्मृत माँ का पोष हंस शिशु, पंख उगे उड़ जाते हैं। ऋ.पृ. 149

आयुध शाला में आकस्मिक चक्ररत्न की उत्पत्ति से भरत के उल्लास भाव का चित्रण भी नवोदित पंख से मण्डित उड़ने के लिए विह्वल 'खग–शावक' से किया गया है –

पुलकित तन मन के अणु–अणु में, गौरवमय उल्लास जगा।
उड़ने को आतुर खग–शावक, नया–नया ज्यों पंख उगा।। ऋ.पृ.151

भावों के सृजन में कवि ने सूर्य, तारा, विद्युत का भी बिम्ब निर्मित किया है। पक्षपात विहीन कुलकर के कार्य का मूल्यांकन संपूर्ण प्रकृति को निष्पक्ष प्रकाश दान करने में रत सूर्य के बिम्ब से किया गया है –

हो पक्षपात अज्ञात धर्म कुलकर का, केवल प्रकाश का प्रसर काम दिनकर का।
ऋ. पृ. 21

युद्ध में सिंहवर्ण के प्रहार से क्षतविक्षत भरत के सेनापति को चित्रण असमय में अस्ताचल गामी सूर्य के बिम्ब से किया गया है –

हत–प्रहत क्षत–विक्षत होकर, लौटा सेनापति का यान।
मानो असमय में दिनमणि का, हुआ प्रतीची में प्रस्थान।। ऋ.पृ. 260

केवल ज्ञान उपलब्धि के पश्चात् पुरिमताल के शकटानन उद्यान में ऋषभ के दर्शन हेतु उपस्थित अगणित सुर नरों का बिम्बांकन नभ में प्रकाशमान तारों से किया गया है –

पुरिमताल के शकटानन में, प्रभुवर ऋषभ पधारे हैं,
एकत्रित हैं अनगिन सुर–नर, नभ में जितने तारे हैं। ऋ.पृ. 150

सुनंदा और ऋषभ के विवाह के संदर्भ में विस्मय, कौतुहल एवं औत्सुक्य से परिपूर्ण युगलों के हृदय में उठने वाले विविध प्रश्नों का बिम्बांकन आकाश में कौंधने वाली बिजली से किया गया है –

आश्चर्य कुतुहूल उत्सुकता जन–जन में,
प्रश्नों की बिजली कौंध रही है मन में। ऋ.पृ. 49

रत्नों के गुणधर्म के अनुरूप भी बिम्ब प्रस्तुत किए गए हैं। शरणागत के उद्धार के लिए पारसमणि का बिम्ब नियोजित है। युगलगण सुनंदा को पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करने के लिए नाभि से प्रार्थना करते हैं –

अनुनय विनय हमारा प्रभुवर ! बाला आज शरण्य बने।
पारसमणि का स्पर्श प्राप्त कर, मिट्टी पुण्य हिरण्य बने। ऋ.पृ. 44

सघन तमिस्त्रा को हरने में समर्थ ज्योतिर्मय रत्नकाकिणी का गुणधर्म भी पारसमणि के एकल बिम्ब से प्रस्तुत किया गया है। पारस के स्पर्शमात्र से ही लोहा स्वर्णमय हो जाता है –

रत्न काकिणी उसका कण–कण, ज्योर्तिमय कर देगी।
पारस का पा स्पर्श लोह की, काया की बदलेगी ।। ऋ.पृ. 170

सभी चिन्ताओं का शमन करने में समर्थ चिंतामणि का बिम्ब भी प्रस्तुत किया गया है। जनसमुदाय द्वारा आहार के लिए चक्रमण कर रहे ऋषभ की उपस्थिति का अंकन 'चिंतामणि' के रूप में किया गया है –

धन्य हैं हम रत्न, चिन्तामणि अहो प्रत्यक्ष है,
यह प्रतीक्षा में खड़ा, जैसे सुसज्जित कक्ष है। ऋ.पृ. 127

शिक्षा के समुचित विकास का चित्रण 'वैडूर्यमणि' के आलम्बन से किया गया है। शब्द, लय, अलंकरण से समन्वित शिक्षा ही संपूर्ण वाङ्मय को वैडूर्यमणि की भाँति प्रकाशित कर सकती है –

वाङ्मय की शिक्षा विकसित हो, शब्द–सिद्धि, लय का माधुर्य
अलंकरण, यह त्रिपद समन्वित, बनता वाङ्मय का वैडूर्य। ऋ.पृ. 66

सम्बन्धपरक भावों की अभिव्यक्ति के लिए 'धागा' का भी बिम्बांकन किया गया है। निम्नलिखित उदाहरण में जन्म और मृत्यु की रेखाएँ स्पष्ट हुयी है –

थी अन्त्येष्टि–क्रिया अनजानी, उनके चरण बढ़े आगे।
जुड़ते और टूटते आए, संबंधों के ये धागे। ऋ.पृ. 42

माया, मोह, ममता के बंधन के लिए भी कोमल धागे का बिम्ब प्रस्तुत किया गया है। ममता का त्याग किए बिना कोई भी व्यक्ति साधना के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता। ऋषभ चिंतन करते है –

ममता के कोमल धागों से, बनता मनुज समाज
ममता की अति ही करती है, मानव मन पर राज
तोडूं ममता का तटबंध, जिससे बनता सनयन अंध। ऋ.पृ. 82

उक्त बिम्बों के अतिरिक्त भी अन्य एकल बिम्बों की रचना हुयी है। जैसे – इन्द्रियों के वशीभूत स्वेच्छाचारी शासक के लिए 'अंकहीन शून्य'[3] का बिम्ब, सचिवों द्वारा सुसंचालित मंगलकारी राज्यव्यवस्था के लिए 'श्रीयंत्र'[4] का बिम्ब, जड़वत चेतना के लिए मूर्ति का बिम्ब,[5] ऋषभ के अदर्शन से व्याकुल बाहुबली की चिंता के लिए 'वातूल'[6] का बिम्ब, गिरिजनों की सहायता में तत्पर मेघमुख की हठधर्मिता के लिए 'चीवर'[7] का बिम्ब, हिमालय की दोनों श्रेणियों के लिए 'वनिता के वेणी बंधन'[8] का बिम्ब, कृषि कार्य में व्यस्त कृषकों के लिए 'सिद्ध योगी'[9] का बिम्ब तथा विद्या विकास के लिए 'कामधेनु'[10] का बिम्ब। इस प्रकार ऋषभायण महाकाव्य में एकल बिम्बों का विस्तार देखा जा सकता है।

––00––

7. संशिलष्ट ऐन्द्रिक बिम्ब

संशिलष्ट का आशय है जुड़ा हुआ, मिला हुआ अथवा मिश्रित। इसमें अनेक बिम्ब परस्पर सम्बद्ध रहते हैं। मिश्र तथा समाकलित बिम्ब संशिलष्ट होते हैं।[11] कुछ आलोचकों ने इसे खण्डित[12] बिम्ब की संज्ञा दी है। तो कुछ ने इसे सावयव बिम्ब[13] अंतर्गत माना है। वस्तुतः कविता में कवि द्वारा विविध संवेदनाओं के मूर्तिकरण हेतु मिश्रित रूप में अनेक बिम्बों की उपस्थापना की जाती है, जो अपना ऐन्द्रिय परक अर्थ देते हैं। संवेदनाओं को जागृत करने में दृश्य, स्पर्श्य, गंध, आस्वाद एवं शब्द परक बिम्बों की अहम् भूमिका होती है। कवि इन संवेदनाओं में जितनी गहरी डूबकी लगाता है उतना ही अधिक वह संगत बिम्ब प्रस्तुत करता है। अनेक वर्गो में विभक्त सभी बिम्बों का तिरोभाव किसी न किसी रूप में ऐन्द्रिय परक बिम्बों में होता है। प्रयोग एवं ऐन्द्रिय, स्वभाव के अनुरूप यदि कोई बिम्ब कहीं दृश्यता की अनुभूति कराता है तो अन्य स्थल पर स्पर्शबोध अथवा स्वादेन्द्रिय संवेदना को प्रगाढ़ करता है।

ऋषभायण में वसंत, युद्ध, मनोभाव, आदि के परिप्रेक्ष्य में विविध बिम्ब निर्मित हुए हैं। वसंत वर्णन के अंतर्गत प्रकृति जन्य मनोरम बिम्ब गंध, दृश्य एवं आस्वाद्य संवेदना का मिलाजुला रूप प्रस्तुत करते हैं, जैसे –

सुरभित उपवन का हर कोना, विहसित पुष्प पराग,
राग झांकता पूर्ण युवा बन, मीलितनयन विराग,
आया मधुमय वर मधुमास, कण–कण मुखर वसंत विलास। ऋ.पृ. 77

उक्त उदाहरण में सुरभित उपवन, विहँसित पुष्पराग, राग का पूर्ण युवा के रूप में झाँकने की स्थिति तथा मधुमय मधुमास, गंध, दृश्य एवं आस्वाद्य संवेदना को अनुभूति गम्य बनाते हैं।

वसंत का अमित प्रभाव भी संश्लिष्ट रूप में व्यक्त हुआ है। वसंत के कारण सुख सरिता मे आकंठ निमग्न जनमानस का प्रेमानन्द, मधुमंथर गति से प्रवहमान पवन का लास्य और प्रस्फुटित पुष्पों से हास्य की व्यंजना प्राकृतिक पटल पर मानवीय क्रियाओं का संश्लिष्ट चित्र निर्मित करती है –

सुख की सरिता में सारे जन, है आकंठ निमग्न
नव रस में श्रृंगार प्रथम रस, रज कण पद संलग्न
पवनेरित पर्वो में लास्य, प्रस्फुट पुष्प–प्रकर में हास्य। ऋ.पृ. 79

तक्षशिला के उद्यान की मनोहरता, साधना में रत ऋषभ की स्थिति तथा आत्मा के स्वरूप का चित्रण भी संश्लिष्ट रूप में किया गया है। समवसरण में आत्मस्थ ऋषभ प्रतिमा सदृश्य आत्मसाधना में लीन हैं। आत्मा का स्वरूप विराट भी है लघु भी है। यहाँ आत्मा की विराटता के लिए 'सागर' तथा उसकी लघुत के लिए 'मीन' का बिम्ब प्रयुक्त हुआ है। 'मीन' का आश्रयण 'सागर' है। सागर से मीन की विलगता जीवन की शून्यता है और सागर से मीन की एकरूपता आत्मा से आत्मा का चिर संबंध है। निम्न उदाहरण में वाटिका की दृश्यता ऋषभ की साधनात्मक स्थिति तथा आत्मा के सूक्ष्म रूप का स्थूल मूर्त्तन देखने योग्य है –

हरित वाटिका वृत उद्यान, उज्जवल आभा तरू अम्लान,
ऋषभ समवसृत प्रतिमालीन, आत्मा अर्णव आत्मा मीन। ऋ.पृ. 137

कवि ने अदर्शन से अनुतप्त मनोदशा का अंकन भी किया है। पितृदर्शन से वंचित बाहुबली के मन के अनुताप का 'उबाल' उष्णता की अनुभूति से पूर्ण है, तो सचिव की मृदुवाणी कोमलता से। यदि पितृ दर्शन की प्यास में अदर्शन की आकुलता समाहित है तो उनके अधैर्यजन्य चिंतन में वातूल का दृश्य भी गोचर होता हैं। इस प्रकार बाहुबली के करूण विलाप में ध्वनि बिम्ब, मन के अनुताप के उबाल तथा सचिव की मृदुवाणी में स्पर्श्य व चिंतन के वातूल में गतिज बिम्ब के सहप्रयोग से संश्लिष्ट बिम्ब की योजना हुई हैं।

बाहुबली का करूण विलाप, उबल रहा मन का अनुताप,
बोला मृदु वच सचिव सुधीर, क्यों प्रभु इतने आज अधीर ?
तक्षशिला में प्रभु आवास, चिंतन बुझी नहीं दर्शन की प्यास
यही वेदना का है मूल, चिंतन का उठता वातूल । ऋ.पृ. 139

कहीं–कहीं कवि ने एक ही भाव दशा के लिए अलग–अलग उपमानों का बिम्बप प्रस्तुत किया है। उद्यान से प्रस्थान कर चुके ऋषभ के लिए 'वैडूर्य' एवं

'सूर्य' का बिम्ब निर्मित किया गया है जिससे उनके आभामण्डल की तेजोमयता व्यक्त होती हैं। ऋषभ के प्रस्थान के पश्चात् उद्यानपाल बाहुबली से कहता है कि –

देव ! न देखेंगे दो सूर्य, नहीं सुलभ अब वह वैडूर्य
एक सूर्य का नभ में यान, अपर सूर्य का तब प्रस्थान। ऋ.पृ. 138

व्यक्ति की उदासीनता और प्रसन्नता के लिए भी मिश्रित बिम्ब प्रयुक्त हुए हैं। भरत के अयोध्या आगमन के पश्चात् हर्षित जनता उनका स्वागत पलक पाँवड़े बिछाकर करती है। भरत के दर्शन मात्र से ही उनकी पथराई आँखों में जीवन की नवीन लहरें तरंगायित हो हृदय रूपी स्त्रोतास्विनी के प्रवाह से उल्लास भाव का बिम्ब प्रस्तुत करती हैं। इस प्रकार निम्नलिखित उदाहरण में दृश्य एवं गतिज बिम्ब का मिश्रित रूप देखने को मिलता है –

कर पंथ पार द्रुत पुरी अयोध्या आए
थी खड़ी हुई जनता स्मित नयन बिछाए
पथराई आंखों में नवजीवन लहरी
अंतस की सरिता हुई प्रवाहित गहरी। ऋ.पृ. 186

वाणी एवं उसके मसृण प्रभाव की अभिव्यक्ति भी संश्लिष्ट रूप में की गई है। शरणागत पुत्रों को सम्बोध दे रहे ऋषभ की वाणी स्निग्ध मधुर और मृदु है। उनकी वाणी की शीतलता जलद के समान शीतल तथा अमृत के समान मिष्ठ है। अध्यात्म लोक में प्रवेश कर रहे पुत्रों के उस नवजीवन को नवोदित अंकुर, प्राण की संजीवनी शक्ति को पवन तथा उदक के बिम्ब से व्यंजित किया गया है। यहाँ आस्वाद्य, स्पर्श्य एवं दृश्य बिम्ब का मिलाजुला रूप देखने को मिलता है –

स्निग्ध मधुर मृदु प्रभु की वाणी, शीतल जलद अमृत उपमान,
नवजीवन के नव अंकुर को, प्राण पवन बनता उदपान। ऋ.पृ. 198

चुनौती पूर्ण कथ्यों के लिए दृश्य और आस्वाद्य परक बिम्ब मिश्रित रूप में नियोजित हुए हैं। अविजित बाहुबली के सम्बन्ध में भरत से मंत्री का यह कथन कि 'शेष सब नृप बिन्दु केवल एक है रेखा वही' – इस बात को दर्शाता है कि शक्ति में बाहुबली रेखा के समान असीम है किन्तु शेष सब नृप बिन्दुवत हैं, निर्बल

हैं। सर्वजित की पद प्रतिष्ठा केवल संकल्प से की जा सकती है। संकल्प तो सुवासित चूर्ण के समान है। संकल्प के लिए सुवासित चूर्ण का आस्वाद परक बिम्ब संकल्प की दृढ़ता को ही व्यक्त करता है।[14]

परिवेश स्थिति का अंकन भी विविध बिम्बों के साहचर्य से किया गया है। शकुनि पक्षियों का कलरव, वायु के द्वारा सुवासित गंध का प्रसार, कोमल किसलय की छटा, खेत खलिहानों में कार्यरत कृषकों पर साधनारत सिद्ध योगी का आरोपण– ध्वनि, स्पर्श, गंध एवं दृश्य बिम्ब से संपृक्त है। बहली देश में प्रवेश करते ही दूत की अनुभूति का परिवेशगत बिम्ब निम्न उदाहरण में द्रष्टव्य है –

शकुनि गण का मंजु कलरव, श्वास परिमल का लिया,
स्वागतं बहली धरा पर, मृदुल किसलय ने किया,
कृषक निज–निज खेत में, खलिहान में संलग्न हैं,
सिद्ध योगी भावनामय, साधना में मग्न हैं। ऋ.पृ. 230

चिंतन से आकुल तथा उस आकुलता से मुक्ति के लिए बिम्ब भी कवि ने प्रस्तुत किया हैं। बाहुबली के पास संदेश प्रेषण से व्यथित भरत सोचते हैं कि उस समय उनका हृदय पत्थर के समान कठोर क्यों हो गया ? यदि उसके स्थान पर वात्सल्य की जलधारा प्रवाहित हुई होती तो निश्चित ही उससे बाहुबली के हृदय में विनम्रता की बेल पल्लवित होती। इस प्रकार यहाँ स्पर्श्य, दृश्य एवं गतिज बिम्ब का मिला–जुला रूप नियोजित है –

क्या उचित अनुज के पास दूत को भेजा ?
क्यों बना न जाने प्रस्तर तुल्य कलेजा ?
वात्सल्य सलिल की धारा यदि बह जाती ,
तो विनय–बेल का अभिसिंचन कर पाती। ऋ.पृ. 245

दधि मंथन की क्रिया से रत्नारि के रण कौशल का बिम्ब युद्ध की सजीव झांकी प्रस्तुत करता है, जिसमें उसकी गदा को मथानी चक्रीसेना को मंथन पात्र तथा योद्धाओं के गात्र–मर्दन को 'बिलौना' के बिम्ब से प्रस्तुत किया गया है –

विद्या–साधित गदा मथानी, चक्री–सेना मंथन पात्र
किया बिलौना, हुआ विलोड़ित, योद्धा गण का ऊर्जित गात्र। ऋ.पृ. 261

युद्ध की समाप्ति के पश्चात् त्याग मार्ग पर अग्रसर बाहुबली के प्रति जनमानस में उत्थित विविध भावों का अंकन भी कवि ने सफलतापूर्वक किया है। यहाँ जनमानस में उठ रहे विविध प्रश्नों के लिए 'सरिता', कल्पना के लिए 'ज्वार' मौन उत्तर के लिए चांदनी, तथा बाहुबली के दृढ़ निश्चय को हिमगिरि के बिम्ब से व्यक्त किया गया है –

प्रश्न की सरिता प्रवाहित, कल्पना का ज्वार आया,
मौन उत्तर शरद–द्विजपति, चांदनी से जगमगाया
अचल हिमगिरि सा सुनिश्चय, त्याग की आभा प्रवण है,
किस दिशा के छंद लय में, बढ़ रहा आगे चरण है। ऋ.पृ. 289

मानव की स्वार्थ वृत्ति युद्ध का कारण है। युद्ध का शमन ही मानवता का विकास हैं। त्याग से ही युद्ध को रोका जा सकता है। कवि ने युद्ध के लिए 'अग्नि', त्याग के लिए 'नीर' एवं अमृत तथा स्वार्थ के लिए 'विष' का बिम्ब निर्मित किया है जिसे निम्नलिखित उदाहरण में देखा जा सकता है –

युद्ध की इस अग्नि को यह, त्याग–नीर बुझा सकेगा,
स्वार्थ–विष संव्याप्त जग में, त्याग ही तो अमृत कण है। ऋ.पृ. 290

इस प्रकार उक्त संदर्भो के आलोक में 'ऋषभायण' में संश्लिष्ट बिम्बों की योजना सफलतापूर्वक की गयी है।

––00––

8. गतिज ऐन्द्रिक बिम्ब

आचार्य महाप्रज्ञ ने स्थिर तथा गतिशील दोनों प्रकार के दृश्य बिम्ब नियोजित किए हैं। दृश्यों का अंकन कवि ने इतनी यथार्थपरकता एवं सहजता से किया है, जैसे एक–एक दृश्य उनकी आँखों से गुजरा हो। जीवन के बहुविध पक्षों का उद्‌घाटन पोत, रथ, निर्झर, सागर, सरिता, लहर, पवन, नाव, मृग, चीता, गुरू, शिष्य, सूर्य, कंदुक आदि गतिज बिम्ब से दर्शित हैं। स्वयं के पौरूष से गतिमान युगलों के जीवन को पोत गतिज बिम्ब से व्यक्त किया गया है –

अपने पौरूष से चलता है, नवयुवकों का जीवन पोत। ऋ.पृ. 12

समय की निरंतरता एवं परिवर्तशीलता के लिए जलप्रवाह एवं चक्र का बिम्ब निर्मित किया गया है –

परिवर्तन का हेतु काल, वह, जल प्रवाह ज्यों बहता है।
द्वादशार यह कालचक्र, गतिशील निरंतर रहता है।। ऋ.पृ. 6

रथ के गतिशील बिम्ब से भी समय की गतिशीलता द्रष्टव्य हैं उत्सर्पिणी काल की उन्नतदशा के समापन तथा अवसर्पिणी काल की अवनति दशा के प्रारम्भ के साथ ही युगलों के जीवन रथ की दिशा भी परिवर्तित हो गई। उत्सर्पण काल की इस हानि को गंगा की उथली धारा से बिम्बित किया गया है –

बढ़ा समय–रथ जैसे आगे, चला ह्रास का वैसे चक्र। ऋ.पृ. 12
अवसर्पण के चरण बढ़े तब, जीवन–रथ की गति बदली,
स्निग्ध काल की हानि हो रही, गंगा की धारा उथली। ऋ.पृ. 39

राजनीति के संदर्भ में भी 'रथ' का गतिज बिम्ब प्रयुक्त हुआ है। शासन का संचालन एक व्यक्ति द्वारा नहीं किया जा सकता। उसके लिए तो सचिव की कुशल मंत्रणा की आवश्यकता होती है। तभी शासन रूपी रथ व्यवस्थित ढंग से गतिमान हो पाता है –

एक चक्र–बल से नहीं चल सकता है यान
होता है साचिव्य से, शासन–रथ गतिमान। ऋ.पृ. 89

निर्झर, सागर, सरिता, लहर के गतिमय स्वभाव के द्वारा भी विविध भावों बिम्ब सृजित किया गया है। समय की परिवर्तन दशा का उद्‌घाटन सागर में उत्थित तथा पतित लहरों के बिम्ब से दर्शाया गया है –

प्रतिपल गतिमय काल, अगतिक कोई भी नहीं
जलनिधि की उत्ताल, लहर निदर्शन बन रही। ऋ.पृ. 22

यवनिका के पृष्ठ भाग में गायन कर रही गंधर्व कन्याओं के ध्वनि प्रसार का मूल्यांकन भी सागर जल में प्रसृत तरंगों के गतिमय दृश्य से किया गया है –

जलधि–जल में उर्मिमाला, प्रसृत होती जा रही।
यवनिका के पृष्ठ में, गंधर्वकन्या गा रही। ऋ.पृ. 93

अनुभव की यथार्थता एवं परिपक्वता के लिए बहते हुए निर्झर का बिम्ब अंकित किया गया है –

अनुभव के निर्झर से बहने, वाला जल यह निर्मल है।
सत्य तरंगित 'विविध' रूपमय, निश्चल और चलाचल है। ऋ.पृ.18

भाव विह्‌वल मनः स्थिति के उद्‌घाटन के लिए भी प्रवाहित निर्झर का बिम्ब नियोजित किया गया है। हस्तिनापुर में ऋषभ को अलख पदयात्री दशा में देखते ही उपस्थित जन समाज के हृदय में भावना का पवित्र निर्झर प्रवाहित होने लगा –

भावना का विमल निर्झर, जन–मनस में बह चला।
कल्पतरू मनहर अकल्पित, आज प्रांगण में फला। ऋ.पृ.127

सूर्ययशा के प्रति बाहुबली की प्रेमामृत मनोभावों का आस्वादन भी निर्झर की गतिमयता से कराया गया है। युद्ध के लिए तत्पर सूर्ययशा, बाहुबली से कहते हैं–

महामहिम से हुआ प्रवाहित, प्रेमामृत का निर्झर दिव्य।
किन्तु आज लड़ने को आतुर, भुजा युगल है हे पितृव्य ! ऋ.पृ. 266

संतों के गतिमय जीवन की आख्या सरिता के गतिमय निर्मल प्रवाह से

की गई है। चलायमान होने के कारण ही संतों का जीवन सरिता के निर्मल प्रवाह से समान कल्याणकारी तथा संसार के संताप का हरण करने में समर्थ होता है–

संत और सरिता का जीवन, गतिमय निर्मल एक प्रवाह।
हरता है संताप जगत का, मिट जाती अनब्याही चाह।। ऋ.पृ.106

हृदय में उद्‌बुद्ध विविध भावों के विकास के लिए प्रवाहमय सरिता का बिम्ब देखने योग्य है। युद्ध विराम संधि के पश्चात् भरत, नमि–विनमि से कहते हैं–

भाई! स्वतंत्र है हर कोई चिंतन में, मानव का यह वैशिष्ट्य छुपा है मन में,
मस्तिष्क अनुत्तर नाड़ितंत्र विकसित है, भावों की सरिता का प्रवाह उन्नत है।

ऋ.पृ. 182

महावृष्टि के प्रभाव से जलधार में बहती हुई भरत की सेना के लिए नाव तथा तैरते हुए जलचर का आकर्षक बिम्ब निरूपित किया गया है। गिरिजनों के सहायतार्थ मेघमुखों की अतिवृष्टि से जलमग्न धरती पर भरत की सेना के रथ 'नाव' तथा हाथी–घोड़े जलचर के समान तैरते हुए दिखाई दे रहे है –

सकल धरातल जल आप्लावित, लगते हैं रथ नावा
हयवर गजवर जैसे जलचर, शस्त्र–शून्य यह धावा। ऋ.पृ. 175

युद्ध के परिप्रेक्ष्य में प्रलंयकारी 'पवन' का बिम्ब भी निर्मित किया गया है। आक्रमण की मुद्रा में अनिलवेग चक्रवर्ती भरत की सेना में प्रलय पवन की भांति तीव्रता से प्रवेश कर ऐसा युद्ध करने लगा जैसे 'सागर' में ज्वार आ गया हो –

अवसर देखा अनिलवेग ने, प्रलय पवन का ले आकार,
चक्री की सेना में उतरा, आया अंभोनिधि में ज्वार । ऋ.पृ. 260

भरत के प्राणघातक हमले से अनिलवेग की मृत्यु से क्षुभित तथा क्रोध से परिपूर्ण रत्नारि ने वेगवान पवन की भॉति भरत की सेना पर इतनी तीव्रता से आक्रमण किया, जैसे, आज ही युद्ध का अंत हो जाएगा –

विद्याधर रत्नारि कोप से, ज्वलित हुआ वह दृश्य निहार,
पवनवेग सा आया मानो, होगा रण का उपसंहार।। ऋ.पृ. 261

भरत द्वारा बाहुबली पर रत्नदंड के प्रहार की तीव्रता को पवन गति की तीव्रता से व्यक्त किया गया है। भरत का प्रहार इतना गुरू गंभीर व घातक था कि बाहुबली आजानु तक धरती में धँस गए जिससे किंचित मूर्छना और आँखों के समक्ष अंधेरा छा जाने के कारण दिन भी उन्हें रात्रि के समान दिखाई देने लगा –

उठा भरत ले रत्न–दंड कर, किया पवन गति से आघात ।
हुआ अनुज आजानु भूमिगत, अनुभव जैसे दिन में रात।। ऋ.पृ. 282

मन के वेग की तुलना किसी से नहीं की जा सकती, किन्तु वेगवान उदाहरणों से उसके अतिशय वेग की कल्पना की जा सकती है। मन के वेग का आकलन अश्व ही क्या पवन के वेग से भी नहीं किया जा सकता। यहां अश्व और पवन की गति को फीका बताकर मन के वेग की क्षिप्रता को व्यक्त किया गया है –

मापना गति वेग हय का, सरल है, अति सरल हैं।
वेग मन का पवन से भी, शीघ्रगामी तरल है।। ऋ.पृ. 237

कवि ने 'मृग' और 'चीता' का बिम्ब भी निरूपित किया है। युद्ध से पलायन करती हुई भयभीत सेना के लिए 'मृग' तथा प्रतिद्वन्द्वी सबल सेना के लिए 'चीता' का बिम्ब निर्मित किया गया है। सेनानी के खड्गरत्न के प्रहार से पलायन करती हुयी गिरिजनों की सेना ऐसे दिखाई देती है जैसे 'मृग' ने 'चीता' को देख लिया हो –

सेनानी ने खड्ग रत्न ले, क्षण में सबको जीता,
किया पलायन जैसे मृग ने, देख लिया हो चीता। ऋ.पृ.171

कवि ने खेल में प्रयुक्त कंदुक के उछाल एवं उसे लपकने की क्रिया का बिम्बांकन भी किया है। बाहुबली के द्वारा कंदुक के समान भरत को आसमान में उछाल देना फिर उन्हें हाथों से झेल लेना तीव्र गतिज बिम्ब का अच्छा उदाहरण है।[15] चक्र की तीव्रगति को भी उड़ने की क्रिया से व्यक्त कर उसे गतिमयता प्रदान की गयी है। बाहुबली के दक्षिण कर में स्वयं विराजित चक्र जब भरत की ओर उड़ा तब वहां उपस्थित सेनानियों में दुश्चिन्ताजन्य अशुभ कोलाहल का ज्वार सा आ गया।[16]

युद्ध में अनिलवेग की स्फूर्ति देखने योग्य है। वह इतनी तीव्रता से भरत की सेना पर आक्रमण करता है कि उसका सर्वव्यापी रूप ही दिखाई देता है। क्षण–क्षण में उसके परिवर्तन को निम्नलिखित उदाहरण में देखा जा सकता है –

क्षण में भू पर, क्षण में नभ में
क्षण में रथ पर, क्षण में स्फाल
सर्वव्यापी रूप बना है, स्वेद बूंद से स्नेहिल भाल। ऋ.पृ. 258

तीव्र गतिज बिम्ब के अतिरिक्त धीमीगति का बिम्ब भी महाकाव्य में निर्मित हुआ है। गुरू शिष्य के बिम्ब से चक्र रत्न के प्रति भरत के प्रणतभाव का प्रदर्शन धीमी गतिज बिम्ब का श्रेष्ठ उदाहरण है – आयुध शाला में भरत चक्ररत्न की त्रि–प्रदक्षिणा उसी प्रकार से करते हैं जैसे विनयावनत शिष्य गुरू की प्रदक्षिणा करता है। शक्ति गुरूओं की भी गुरू है। गिरि में प्रवाहित निर्झर उस शाक्तिमयता की पुष्टि भी करता है। यहां प्राकारान्तर से गुरू एवं चक्र रत्न की शक्ति संपन्नता को पर्वत तथा शिष्य एवं भरत की विनम्रता को निर्झर की प्रवाहमयता से भी व्यक्त किया गया है –

त्रिः प्रदक्षिणा की, जैसे नत, शिष्य सुगुरू को करता,
शक्ति परम गुरू की गुरू होती, निर्झर गिरि से झरता। ऋ.पृ. 163

अनुकरण वृत्ति का उद्‌घाटन भी गजवर के पीछे चलने वाले 'कलभ' के गतिज बिम्ब से किया गया है। यहाँ सूर्ययशा का कथन बाहुबली के प्रति है जो यह कहना चाहते हैं कि परिवार के श्रेष्ठजनों का अनुकरण कनिष्ठ जन करते हैं यदि आप युद्ध स्थल में है तो मुझे भी उसका अनुकरण करना चाहिए –

कलभ यूथपति गजवर के पदचिन्हों पर चलता है नाथ !
रण का कौशल हम सीखेंगे, तेज आंच से बनता क्वाथ।। ऋ.पृ. 266

अस्ताचल गामी सूर्य का बिम्ब भी क्षत विक्षत युद्ध से लौटे भरत के सेनापति के लिए किया गया है। अनिलवेग के प्रहार से क्षतविक्षत सेनापति का यान युद्धस्थल से उसी प्रकार लौटा, जिस प्रकार असमय में शनैः शनैः सूर्य अस्ताचल की ओर प्रस्थान करता है –

हत–प्रहत क्षत–विक्षत होकर, लौटा सेनापति का यान।
मानो असमय में दिनमणि का, हुआ प्रतीची में प्रस्थान।। ऋ.पृ. 260

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आचार्यश्री ने ऋषभायण में तीव्र, तीव्रतम एवम् धीमी गति का बिम्बांकन सफलतांपूर्वक किया है। धीमी गति के उदाहरण विरल ही हैं।

––00––

रहा करती थीं तथा भरत से वार्तालाप करते समय उलाहना भी दिया करती थी। उलाहना का प्रभाव अति तीव्र होता है इसीलिए उसके भार को 'मंदराचल' से भी अधिक गुरू गंभीर कहा गया है –

मंदर पर्वत से भी ज्यादा, उपालंभ का होता भार। ऋ.पृ. 153

साधना में रत बाहुबली की अचलता का प्रकाशन भी हिमालय के आधार से किया गया है। युद्ध के अपराध–बोध से द्रवीभूत भरत, बाहुबली को तपस्वी की मुद्रा में देखकर कहते हैं कि विजयश्री का वरण करने के बावजूद भी यह हिमालय की तरह निर्विकार तथा निष्कंप है –

है किया अपराध मैंने, युद्ध भाई से लड़ा है।
विजय का वरदान लेकर, यह हिमालय सा खड़ा है। ऋ.पृ. 291

प्रतिमा, स्तंभ तथा 'भित्ति' का बिम्बांकन संज्ञा शून्यता व शरीर की जड़ता के लिए किया गया है। पुत्र को संयम पथ पर अग्रसर होते देख स्तंभित मां मरूदेवा अकम्प स्थिति में मौन मूर्ति के समान जहाँ थी वहीं खड़ी रह जाती है–

माता भी मरूदेवा स्तंभित, मौन मूर्ति सी खड़ी रही। ऋ.पृ. 106

यही नहीं समवसरण में आत्मलीन ऋषभ की स्थिरता का चित्रण भी प्रतिमालीन कथन कर किया गया है।[17]

नर शिशु को मृत्यु दशा में देखकर सुनंदा भी निःस्पन्द हो जाती है। उस समय न तो वह कुछ बोल सकी और न ही अपने से हिलडुल सकी। यहाँ तक कि उसका मस्तिष्क भी विचार शून्य हो गया। वह मात्र प्रतिमा के समान निर्जीव स्थिर खड़ी दशा में दिखाई दे रही है –

हिल न सकी वह, बोल सकी ना, मानस चिंतन शून्य हुआ,
प्रतिमा सी स्थिर स्तब्ध खड़ी है, जीवन हाय अनन्य हुआ। ऋ.पृ. 40

सामान्यतः जड़त्व स्थिति के लिए 'स्तम्भ' का प्रयोग प्रायः होता रहा है। पिता के संयम पथ पर गमन के निर्णय से भरत की स्तब्धता जड़ता में परिवर्तित हो जाती है। उनकी आंखें आँसुओं से परिपूर्ण है। भाव विह्वल होने के कारण वे बोल

नहीं पाते। कंठावरोध हो जाता है, जिससे उनका शरीर स्तम्भ की भाँति जड़वत दिखाई देने लगता है –

सजल नेत्र कंपित–सी वाणी, कंठकला अवरूद्ध,
स्तब्ध हुआ तनु जड़ित स्तम्भ सा, पल–पल बुद्ध अबुद्ध। ऋ.पृ. 84

माँ मरूदेवा की मनसभित्ति पर निर्मित स्वप्न बिम्ब का चित्र देखे गए स्वप्नों को स्थिरता प्रदान करता है! वे कुलकर नाभि से कहती हैं कि–हे स्वामी मेरी मनस भित्ति पर स्वप्न बिम्ब का चित्र अंकित हो गया है, जो आश्चर्य जनक है –

बोली मरूदेवा, हाँ हाँ हाँ मैंने अचरज देखा है,
स्वमिन् ! मेरी मनस–भित्ति पर, स्वप्नबिम्ब की लेखा है। ऋ.पृ. 34

नारियों के वेणी बंधन का बिम्बात्मक प्रयोग भी कवि ने किया है। उत्तर दक्षिण दिशा में स्थित हिमालय की दोनों चोटियाँ ऐसी सुशोभित हो रही हैं जैसे 'वनिता' के शीश पर वेणी बंधन सुशोभित होता है –

हिमगिरि के भाल स्थल पर हैं दो श्रेणी
वनिता के सिर राजमान ज्यों वेणी। ऋ.पृ. 179

अध्ययन में तन्मय छात्रा के स्थिर बिम्ब से देश की सीमा का चित्र भी उकेरा गया है। रणभेरी बजने के पश्चात् भरत को अपने सम्मुख बहली देश की दिखाई देती हुई सीमा ऐसी प्रतीत हो रही है जैसे वह स्वयं छात्रा के रूप में तन्मय होकर प्रगति का पाठ पढ़ रही हो –

बहली की सीमा सम्मुख दीख रही है,
जैसे छात्रा बन तन्मय सीख रही है। ऋ.पृ. 249

पलकों के न गिरने की क्रिया के आधार पर भी स्थिर बिम्ब का निर्माण किया गया है। दृष्टि युद्ध के अंतर्गत भरत और बाहुबली एक दूसरे की ओर अपलक दृष्टि से देखते हैं। इस क्रिया में कई प्रहरों तक किसी की पलकों का निपात तक नहीं होता –

दोनों अपलक पलकों ने भी, निश्चत रहकर दिया प्रकाश।
पल भर भी स्वामी को तम का, नहीं प्रतनु भी हो आभास। ऋ.पृ. 277

हस्तिनापुर में उपस्थित ऋषभ का दीदार परिवार के सदस्य गण 'अपलक' दृष्टि से करते हैं। उस समय ऐसा लगता है जैसे, पलकों ने मुक्तिदाता की शरण में प्रस्थित हो उनकी ओर 'टकटकी' लगाए रखने का व्रत ले लिया हो –

नयन सुस्थिर पलक ने, अनिमेष दीक्षा व्रत लिया,
मुक्तिदाता की शरण में, क्यों निमीलन की किया ? ऋ.पृ. 129

प्रणम्य भावों से सिक्त मनोदशाओं तथा साधना के क्षेत्र में व्यवहृत विविध मुद्राओं का स्थिर बिम्ब कवि ने विशेष रूप से निर्मित किया है। जहाँ भी ऐसा हुआ है–वहाँ भावों का मूर्त्तन सहज धरातल पर देखते ही बनता है। इसका एकमात्र कारण है कवि की साधक एवं साधना वृत्ति। भरत के समक्ष शांत, मौन, एवं निवेदन की मुद्रा में कर बद्ध खड़े सेनापति की निश्चल स्थिति का अनुमान निम्नलिखित पंक्तियों से लगाया जा सकता है –

शांत सेनापति खड़ा है, सामने बद्धांजलि,
मौन वाणी किन्तु आकृति पर मुखर भावांजलि। ऋ.पृ. 218

बाहुबली के समक्ष उपस्थित भरत के दूत तथा विनीत भाव से शत–सहस्त्रों लोक के अधिपतियों का ऋषभ के समक्ष समर्पण की अभिव्यक्ति भी स्थिर मुद्रा में की गयी है –

दूत समुपस्थित हुआ नत, शीश अंजलिबद्ध हैं। ऋ.पृ. 233
शत सहस्त्रों लोक प्रभु के सामने आ रूक गए,
बद्ध अंजलि भाव प्रांजल, शीश सबके झुक गए। ऋ.पृ. 94

ध्यान में मुद्राओं का विशेष महत्व है। इससे मन, वाणी तथा इंद्रियों का परिसीमन होता है, जिससे ध्यान अभीष्ट की पूर्ति में सफल होता है। युद्ध से विरक्त बाहुबली ध्यानावस्थित हैं। मौन अवस्था में उनकी दोनों भुजाएँ आजानु का स्पर्श किए हुए हैं। इस प्रकार वे पूर्ण रूपेण साधक की मुद्रा में स्थिर दिखाई दे रहे हैं –

मौन वाणी, गात्र सुस्थिर, भुज युगल आजानु स्पर्शी,
ध्यान मुद्रा में अवस्थित, बाहुबली मुनि पारदर्शी। ऋ.पृ. 290

साधना में रत बाहुबली की स्थिरता का चित्रण 'स्थाणु' के रूप में भी किया गया है। उनका संपूर्ण गात्र हरीभरी लताओं से आच्छन्न है जिससे उनकी केशराशि तथा अंगो से केशर की क्यारी के समान सुवास आ रही है।[18]

राजा के रूप में अभिषेक के समय ऋषभ मध्यस्थ एवं तुष्णीक मुद्रा में विराजमान हैं। दसों अंगुलियां भी सहज मुद्रा में दिखाई दे रही है।[19]

नर शिशु की मृत्यु के पश्चात् सुनन्दा की शोकजन्य स्थिति का उद्‌घाटन भी स्थिर रूप में किया गया है। सुनन्दा चेतनशील है, नर शिशु चिर शांत। जिस कारण भाई के मृत शरीर के पास खड़ी सुनन्दा की स्थिति भी मृत जैसी है। जिसकी पुष्टि 'एक अवस्था दोनों की है' पंक्ति से सहज ही होती है –

एक सो रहा, एक खड़ी है, इक वन में, इक जीवन में
एक अवस्था दोनों की है, अंतर है तन, चेतन में । ऋ.पृ. 40

उक्त भाव प्रकाश के आधार पर कहा जा सकता है कि कवि ने स्थिर बिम्बों की रचना सफलता पूर्वक तो की है किन्तु जितना उनका मन गतिज बिम्बों में रमा है उतना स्थिर बिम्बों में नहीं।

——00——

10. निष्कर्ष एवं अध्याय समीक्षा

ऋषभायण में ऐन्द्रिय संवेदनाओं के आधार पर चाक्षुस, श्रोत, घ्राण, रस स्पर्श, एकल, संश्लिष्ट, गतिज एवं स्थिर बिम्बों का निरूपण वैविध्य पूर्ण है। कवि ने भावानुरूप धरातलीय, जलीय एवं आकाशीय बिम्बों का चयन किया है। धरातलीय बिम्बों के अंतर्गत पर्वत, वृक्ष, लौह, प्रस्तर, वन, उद्यान, पशु, पक्षी, कीट, जलीय बिम्बों के अंतर्गत सागर, सरिता, लहर, निर्झर, जलचर, ज्वार, कमल तथा आकाशीय बिम्बों के अंतर्गत बादल, विद्युत, सूर्य, तारा, कुहेलिका आदि का मर्मस्पर्शी बिम्ब प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त दिन–रात्रि, मणि, अमृत, विष जैसे अनेक बिम्ब प्रस्तुत किए गए हैं, जो सम्बन्धित भावों के स्पष्टीकरण में कारगर सिद्ध हुए हैं। यों देखा जाए तो सभी संवेदनाएँ किसी न किसी स्तर पर एक दूसरे से जुड़ी रहती हैं। इसीलिए यदि कोई संवेदना कहीं अपना चाक्षुष प्रधान बिम्ब प्रस्तुत करती है तो अन्यत्र आस्वाद्य अथवा ध्वनिमय अथवा स्पर्शजन्य बिम्ब भी प्रस्तुत करती है। इसी प्रकार एकल बिम्ब संश्लिष्ट के रूप में तथा संश्लिष्ट बिम्ब एकल बिम्ब के रूप में भी प्रयुक्त हुए हैं। गतिज एवं स्थिर बिम्ब दृश्य बिम्ब के ही अंतर्गत आते हैं। शोधार्थी द्वारा संदर्भित बिम्बों की विवेचना उसके गुणधर्म व स्वभाव के आधार पर की गयी है। साधनात्मक क्षेत्र में कवि ने विविध मुद्राओं का बिम्ब सृजित किया है जिसमें साधक के रूप में कवि की निजता भी झलकती है।

भावानुरूप बिम्बों का चयन वही कवि कर पाता है जिसका वस्तु सत्य से सर्वाधिक जुड़ाव होता है। वस्तु के गुणधर्म के सापेक्षिक ज्ञान के बिना भावों की संगति नहीं बैठ पाती। क्योंकि सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों का मूर्त्तन स्थूल धरातल पर होता है। इसलिए संबंधित भावों के बिम्बांकन के लिए वस्तु, पदार्थ या स्थिति का ज्ञान आवश्यक होता है। इस रूप में आचार्य महाप्रज्ञ एक सिद्धहस्त साहित्यकार हैं। वस्तुतः ऋषभायण आदिम मानव के आलोक में एक आध्यात्मिक ग्रंथ है जिसमें समाज, परिवार, राजनीति, मनसचेतना एवं अध्यात्म से संबंधित बहुआयामी बिम्ब प्रस्तुत किए गए हैं। इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि ऐन्द्रिय बिम्बों के नियोजन में कवि को पूर्णरूपेण सफलता मिली है।

——00——

संदर्भ–सूची

1. ऋषभायण पृ. 20.
2. डॉ. नगेन्द्र शोध और सिद्धांत, पृ. 115
3. ऋषभायण पृ. 88.
4. ऋषभायण पृ. 89.
5. वहीं, पृ. 106
6. वहीं, पृ. 109
7. वहीं पृ. 176
8. वही पृ. 179
9. वही पृ. 230
10. वहीं पृ. 66
11. डॉ. नागेन्द्र–शोध और सिद्धांत पृ. 115.
12. डॉ. सुशीला शर्मा – तुलसी साहित्य में बिम्ब योजना
13. अमलेश गुप्ता – कालिदास की बिम्ब योजना – पृ. 194
14. ऋषभायण, पृ. 225–226
15. ऋषभायण पृ. 279
16. वही पृ. 287
17. ऋष भायण पृ. 137
18. ऋषभायण पृ. 292 स्थिरता ने ..... क्यारी ।
19. वही, पृ. 54 मध्यस्थ और तुष्णीक ..... मुद्रा।

––00––

अध्याय-चतुर्थ

ऋषभायण में भाव बिम्ब

भाव का स्वरूप –

भाव और विचार कविता का प्राण तत्व है। जिस प्रकार भाव या विचार विहीन कविता की कल्पना नहीं की जा सकती। उसी प्रकार भाव या विचार के अभाव में बिम्ब की कल्पना भी निरर्थक हो जाती है। भाव, चित्त की विशिष्ट दशा का नाम है जो स्वयं में अमूर्त्त होती है किन्तु उसका कारण मूर्त्त होता है। काव्य में अमूर्त्त भाव को जब तक मूर्त्ति नहीं किया जायेगा, तब तक उसका स्वरूप स्पष्ट नहीं होगा। बिम्ब के द्वारा भावों का मूर्त्तन होता है, जिस कारण वह सहज में ही पाठक अथवा श्रोता के लिए ग्राह्य बनता है। उदाहरण के तौर पर भय, भाव की अनुभूति की एक विशिष्ट दशा है। मात्र शब्दिक प्रयोग से इसके प्रभाव को निरूपित नहीं किया जा सकता। इसके लिए कवि गण, विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों की योजना कर भाव का मूर्त्तन करते हैं। कवि द्वारा अनुभाव, विभाव अथवा संचारी भाव चित्र रूप में व्यंजित किए जाने पर ही प्रभावशाली बनते हैं। जैसे–कोई व्यक्ति जंगल में शेर को देखकर एवं उसकी दहाड़ को सुनकर भय से कांपने लगता है। यहाँ भय का संचार शेर को देखकर हुआ जो स्वयं में आलंबन है और 'कम्प' भय का कार्य अथवा परिणाम है।

इस प्रकार सहृदय में भाव स्थायी रूप में रहते ही हैं। जब उसका कारण (विभाव) उपस्थित होता है, तब वे मूर्त्तित हो जाते हैं। वस्तुतः भावों के मूर्त्तन की प्रक्रिया का नाम ही बिम्ब है। ऋषभायण में न्यूनाधिक रूप से हास्य रस को छोड़कर सभी रसों के स्थायी भाव तथा कतिपय संचारी भावों से संबंधित बिम्ब नियोजित हुए हैं। इस प्रकार स्थायी भावों के आधार पर ऋषभायण के बिम्बों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है –

1. भक्ति 2. निर्वेद 3. वात्सल्य 4. शोक 5. विस्मय 6. उत्साह

7. क्रोध 8. भय 9. जुगुप्सा 10. रति।

संचारी अथवा व्यभिचारी भावों के अनुक्रम में निम्नलिखित संचारियों के बिम्ब मिलते हैं –

1. मोह 2. स्पृहा 3. हर्ष 4. प्रमाद 5. कृत्यकृत्यता (धन्यता)

6. शंका 7. ईर्ष्या 8. मद 9. श्रम एवं 10. अन्यभाव (लोभ, जड़ता, उत्सुकता, चिंता, स्वप्न)

स्थायी भावों से संबंधित बिम्ब

1. <u>भक्ति –</u>

महनीय आत्मा के प्रति आस्था, विश्वास, समर्पण एवं पूजाभाव भक्ति है। ऋषभ मानव रूप में एक ऐसे महामानव हैं, जिनका अवतरण मात्र जीवन के रहस्यों को उद्‌घाटित करने के लिए ही नहीं अपितु मानव समाज के अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की उपलब्धियों से मण्डित कराने के लिए हुआ हैं। उन्होंने नगर राज्य–व्यवस्था को प्रारम्भिक स्तर पर ही सुदृढ़ कर समानता के धरातल पर लोककल्याणकारी राज्य की नींव रखी। असि, मसि, कृषि, लिपि आदि के विकास से उन्होंने राज्य को वह स्वरूप प्रदान किया जो संपूर्ण ब्रह्माण्ड में एकमात्र उदाहरण है – 'न भूतो न भविष्यतो' यह ऋषभ चरित्र का लोकपक्ष है, जिसका मार्गान्तरण ही आध्यात्मिक पक्ष है। वे निर्लिप्त भाव से लोकजीवन को समृद्ध एवं स्वयं को ममता मोह के बंधनों से मुक्त कर आत्मदर्शन का मार्ग प्रशस्त करते हुए जनजीवन को मोक्ष का संदेश देते हैं। इस प्रकार वे लौकिक और अलौकिक जगत के पुरस्कर्ता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। ऋषभ का संपूर्ण जीवन कर्म और साधना का अद्‌भुत संगम है इसलिए वे मानव और देव दोनों के लिए पूजनीय हैं। इन्द्र, नागराज धरण, कुबेर तथा कई लोकों के अधिपति भक्ति भाव से उनकी वंदना करते हैं।

ऋषभायण में ऋषभ के प्रति भक्ति भावना से सम्बधित अनेक बिम्ब निर्मित हुए हैं। प्रेम और समर्पण भक्ति का अलंकरण है। ऋषभ के श्री चरणों में भरत के समर्पण भाव का चित्रण 'सूर्य' और 'चंद्रमा' के प्रति अनुरक्त क्रमशः 'चातक' और 'चकोर' के बिम्ब से किया गया है –

सुन्दर है वह जहाँ ऋषभ है, भले नगर या वन हो।
चातक की आशा है भोर, शशधर में अनुरक्त चकोर। ऋ.पृ. 85

पितृविहीन राज्य सिंहासन को भरत रंचमात्र महत्व नहीं देते । वे तो राज्य को 'भूसी' (तुषा) तथा ऋषभ को 'धान्य' कहते हुए उन्हें करूणा के अवतार 'बादल' के रूप में देखते हैं –

शिरोधार्य वाणी प्रभुवर की, किन्तु न मन को मान्य
लगता है यह राज्य तुषोपम, दूर हो रहा धान्य
बरसो–बरसो अब पर्जन्य!, हो जाए अन्तस्तल धन्य। ऋ.पृ. 86

'गुरू' के प्रति भक्तिभाव से समर्पित 'शिष्य' के बिम्ब से चक्ररत्न के प्रति भरत की भक्तिभावना का प्रकाशन कवि ने प्रभावशाली ढंग से किया है। आयुध शाला में पूजाभाव से भरत चक्ररत्न की त्रिप्रदक्षिणा वैसे ही करते हैं जैसे भक्ति से सराबोर नतमस्तक शिष्य अपने गुरू की प्रदक्षिणा करता है –

नृपति भरत अर्चा करने को पहुँचा आयुध शाला
चक्ररत्न की दिव्य विभा तब, दमकी बन नव बाला,
त्रिःप्रदक्षिणा की, जैसे नत, शिष्य सुगुरू को करता
शक्ति परम गुरू की गुरू होती, निर्झर गिरि से झरता। ऋ.पृ. 163

तक्षशिला में प्रभु का दर्शन न हो पाने के कारण बाहुबली का मानसिक संताप उनकी भक्ति भावना का प्रमाण है। प्रभु आगमन की सूचना मात्र से बाहुबली की वंदन मुद्रा, साष्टांग प्रणाम की स्थिति उनकी श्रद्धा, भक्ति का ही बिम्बांकन करती है –

वंदन–मुद्रा नत पंचांग, श्रद्धा से सिंचित सर्वांग।
प्रासादस्थित मैं हूँ देव ! तत्र स्थित देखो स्वयमेव।। ऋ.पृ. 137

भक्त के लिए भगवान की दूरी पीड़ादायक होती है। वह तो अपने इष्ट के बिना व्याकुल व अशांत बना रहता है। बाहुबली द्वारा ऋषभ के प्रति 'दीन दयालु' और 'कृपालु' का सम्बोधन पितृभक्ति का ही चित्र अंकित करता है –

कितने सपने, कितने भाव!, कितने चिंतन का अनुभाव!
कौन सुनेगा ? दीनदयालु!, मुझ पर थे तुम सदा कृपालु। ऋ.पृ. 138

श्रद्धा समन्वित भक्ति का उद्‌घाटन 'अपलक दृष्टि' के बिम्ब से भी किया गया है। आभामण्डल से देदीप्यमान ऋषभ के हस्तिनापुर आगमन पर परिवार के सभी सदस्यों का मस्तक उनके कमलवत् चरणों में झुक जाता है, और वे सभी अपलक दृष्टि से उसे इस प्रकार देखने लगते हैं, जैसे मुक्तिदाता के चरणों में शरणागत पलकों ने उस ओर एक टक देखने का व्रत ले लिया हो –

आ गया परिवार परिवृत्त, ऋषभ सन्निधि में रूका,
चरण सरजित पुष्प रज में, शीर्ष श्रद्धा से झुका,
नयन सुस्थिर पलक ने, अनिमेष दीक्षा व्रत लिया
मुक्तिदाता के शरण में क्या निमीलन की किया। ऋ.पृ.128–129

ऋषभ परिवार के ही नहीं संपूर्ण समाज के जीवनाधार हैं। सिद्धि के पश्चात् जब वे हस्तिनापुर आते हैं तब उन्हें देखने मात्र से ही लोगों के हृदय में भक्ति का झरना प्रवाहित होने लगता है। 'कल्पतरू' के रूप में ऋषभ को अपने समक्ष देखकर जन सामान्य अपने को धन्य समझते है। यहाँ ऋषभ के प्रति 'कल्पतरू' का बिम्ब चित्ताकर्षक है –

भावना का विमल निर्झर, जन–मनस में बह चला।
कल्पतरू मनहर अकल्पित, आज प्रांगण में फला। ऋ.पृ. 127

'चिंतामणि' रत्नीय बिम्ब से सभी की चिन्ताओं को हरने वाले ऋषभ के प्रति जन–जन की दृष्टिकोण उनकी भक्ति का सूचक है –

धन्य है हम रत्न, चिंतामणि अहो प्रत्यक्ष है,
यह प्रतीक्षा में खड़ा, जैसे सुसज्जित कक्ष है। ऋ.पृ. 127

ऋषभ के उपदेश से अविभूत जनप्रतिनिधि द्वारा उनके चरणों की शरण में रहने की आकांक्षा तथा उसे सत्यं, शिवं, सुन्दरम् कहना उनके भक्तवत्सल स्वभाव का ही बिम्ब प्रस्तुत करता है –

तम हटा आलोक–रूचि से, दीप्त अंतः करण है।
प्रभु! तुम्हारे चरण रम्यं, शिवं सत्यं शरण हैं। ऋ.पृ. 97

यही नहीं सामान्य जन उन्हें धाता, विधाता, ओंकार जैसे विशेषणों से विभूषित कर स्वयं की आस्था का प्रकाशन करते हैं –

तुम विधाता और धाता, सृष्टि के ओंकार हो,
और सामाजिक व्यवस्था, के तुम्हीं आधार हो। ऋ.पृ. 98

कच्छ और महाकच्छ भी श्रद्धा और बैराग्य भाव से परिपूर्ण मधुकर की भॉति प्रभु ऋषभ के कमलवत् चरणों से भक्तिरूपी पराग का पान करना चाहते है–

मधुकर बने लेंगे सदा, प्रभु चरणाब्ज पराग,
श्रद्धामय अनुराग से, विकसित विशद विराग। ऋ.पृ. 100

'रात' को 'प्रात' एवं 'प्रात' को रात के बिम्ब से ऋषभ के चरणों में कच्छ–महाकच्छ का भक्तिमय निवेदन निम्नलिखित पंक्तियों में दृष्टव्य है –

चरण–सन्निधि प्राप्त कर प्रभु!, प्रात जैसी रात भी।
दूर पा प्रभु–चरण–युग को, रात जैसा प्रात भी। ऋ.पृ. 103

'जलधर' और 'आकाश' का बिम्ब भी श्रद्धा भाव को व्यक्त करने के लिए निरूपित किया गया है। ऋषभ के प्रति समर्पित कच्छ और महाकच्छ का मन रूपी आकाश श्रद्धा रूपी बादल से आच्छादित है –

एक ओर श्रद्धा के जलधर, से मन का उडुपथ आकीर्ण। ऋ.पृ. 113

समर्पण और विश्वास भक्ति को उच्चता प्रदान करते हैं। जनप्रतिनिधि प्रभु की छत्रछाया को सामान्य जन के कुशलक्षेम का कारण मानते हैं। यहाँ ऋषभ की भक्तवत्सलता के लिए 'छत्र' का बिम्ब प्रयुक्त हुआ है –

सृष्टि अभिनव या पुरातन, भेद कोई है नहीं
है जहाँ प्रभु छत्रछाया, कुशल–मंगल है वहीं। ऋ.पृ. 95

आहार के लिए चक्रमण कर रहे ऋषभ का स्वागत कोई मोतियों से

परिपूर्ण थाल से कर रहा है, तो कोई भक्तिमय मंगल स्तवन का गायन कर अपनी भावना प्रकट कर रहा है –

थाल मुक्ता से भरा, उपहार कोई ला रहा।
भक्तिभावित भाव कोई, स्तवन–मंगल गा रहा। ऋ.पृ. 118

ऋषभावतार विश्व कल्याण के लिए हुआ है। उनके चरणों में मात्र युगलों की ही आसक्ति नहीं है, बल्कि शत शहस्त्रों लोक के अधिपति भी उनके प्रति पूजाभाव रखते हैं। मुनिदीक्षा के समय विविध लोकों के अधिपतियों का नतमस्तक हो उनसे कर बद्ध प्रार्थना करना उनकी भक्तिभावना का ही प्रदर्शन है –

शत सहस्त्रों लोक प्रभु के, सामने आ रूक गए
बद्ध अंजलि भाव प्रांजल शीश सबके झुक गए। ऋ.पृ. 94

इस प्रकार उक्त तथ्यों के आलोक में कहा जा सकता है कि आचार्य महाप्रज्ञ ने भक्ति के संबंध में विविध बिम्बों का निर्माण किया है।

2. <u>निर्वेद (शम) –</u>

'निर्वेद' शब्द का अर्थ है 'विशेषज्ञान'। संसार की वस्तुओं की अनित्यता देखकर हृदय में उन वस्तुओं के प्रति जो निन्दाबुद्धि उत्पन्न होती है, उसे निर्वेद कहते हैं। 'शम' की अर्थ शान्ति है। सांसरिक अशान्ति से खिन्न होकर जब मन परमार्थ की ओर झुककर शान्ति–प्राप्ति का इच्छुक हो तो 'शम' होता है।''[1]

प्रवृत्त मार्ग एवं निवृत्त मार्ग उपासना की दो पद्धतियाँ हैं। प्रवृत्तिमार्गी उपासना के अंतर्गत भक्तिभाव तथा 'निवृत्तिमार्गी' उपासना के अंतर्गत निर्वेद भाव का प्रकाट्य होता है। जैन धर्म विशुद्धतः आत्मदर्शन को महत्व देता है। तत्वज्ञान उसका मूल स्वर है। आचार्य महाप्रज्ञ ने 'ऋषभायण' में भक्ति और निर्वेद भाव का अद्भुत सामंजस्य स्थापित किया है। ऋषभ के प्रति लोगों के समर्पण भाव भक्ति परक हैं तो ऋषभ के तात्विक भाव निर्वेद परक। रूप की दृष्टि से ऋषभायण का मूल काम्य निर्वेद है। 'निर्वेद' जन्य बिम्बों को ऋषभ की आत्मसाधना, माँ मरूदेवा

की आत्मानुभूति तथा भरत बाहुबली के वैराग्यजन्य प्रसंगों में सहजता से देखा जा सकता है।

आत्म–साधना में षट चक्रवेध का विशेष महत्व है। यौगिक क्रिया के द्वारा 'अनहद नाद' की स्थिति में पहुँच जाने पर कर्ण कुहरों को बंद कर लेने पर भी सब कुछ सुनाई देता है। मुनि दीक्षा के अवसर पर योग साधना में लीन ऋषभ 'अनहद नाद' की स्थिति में पहुँच जाते हैं। उनकी यह साधनात्मक अवस्था साधना रूपी 'तैल' से परिपूर्ण, ज्ञान रूपी बाती से प्रज्वलित 'दीपक' केबिम्ब से प्रस्तुत की गयी है –

मौन वाणी, आँख ने ही, कथ्य अविकल कह दिया।
स्नेह से अभिषिक्त बाती, जस उठा 'अनहद' दिया। ऋ.पृ. 94

षट्चक्र बेध के बाद सप्तम चक्र सहस्त्रार में पहुँचने पर साधक सहस्त्र कमल दल का स्पर्श कर आत्मा का साक्षात्कार करता है। वहाँ केवल प्रकाश ही प्रकाश दिखाई देता है। यहाँ ऋषभ की आत्मा रूपी वेदी पर स्वयं प्रकाशित ज्ञानालोक के लिए अविचल जलते हुए 'दीपक' का बिम्ब निर्मित किया गया है, जिससे साधना की पूर्णावस्था व निर्वेद भाव की अभिव्यक्ति होती है–

चेतना की विमलता ने, कमल दल को छू लिया।
आत्मवर्चस्–वेदिका पर, जल उठा अविचल दिया।। ऋ.पृ. 102

महासागर में निमग्न 'मीन' के बिम्ब से भी निर्वेद भाव का अंकन किया गया है। ऋषभ निर्गुण आत्मानन्द में क्षण प्रतिक्षण उसी प्रकार लीन हो जाते हैं जिस प्रकार महासागर के अगाध जल में 'मीन' निमग्न हो जाती है –

निर्गुण आत्मानन्द में हुए प्रतिक्षण लीन।
जैसे सलिल निमग्न हो, महासिन्धु का मीन। ऋ.पृ. 108

आत्मा से परमात्मा परमात्मा भिन्न नहीं है। आत्मा में ही परमात्मा का निवास है किन्तु इसे कोई निर्गुण साधक ही जान सकता है। बाह्य जगत का ज्ञान विस्मृत हुए बिना अन्तर्जगत् के कपाट नहीं खुल सकते। साधनात्मक अवस्था में ऋषभ आत्मा रूपी मंदिर में इतने लीन हो जाते हैं कि उन्हें परमात्मा के अवतरण की साक्षात् अनुभूति होने लगती है –

आत्मलीनता के मंदिर में, बाहर का विस्मरण हुआ।
आत्मा में परमात्मा का, अनजाना–सा अवतरण हुआ। ऋ.पृ. 115

शरीर नश्वर है, आत्मा अनश्वर। शरीर जन्म और मृत्यु के बंधनों से बंधा होता है किंतु आत्मा अजन्मा है। उसका विनाश नहीं होता। वह शाश्वत् है, सर्वकालिक हैं। यहाँ 'विदेह' के लिए कवि ने अनन्त, अजन्मा शब्द का प्रयोग कर उसकी शाश्वता को 'अमृत' के बिम्ब से प्रस्तुत किया है –

देह और विदेह तत्व दो, नश्वर देह अनन्त विदेह।
देह जनमता, मरता है वह, अमृत अजन्मा सदा विदेह। ऋ.पृ. 157

शरीर व्यक्ति को संसार से जोड़ता है। 'आत्मा' उसे संसार से मुक्त करता है। आत्मा की यह मुक्तावस्था निर्वेद जन्य स्थितियाँ निर्मित करती हैं, इसीलिए आत्मा परमात्मा का उपादान है और इसलिए उसका स्वरूप मंगलकारी है। यहाँ सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् की अलौकिक धारणा से 'आत्मस्वरूप' का बिम्ब उद्घाटित किया गया है –

आत्मा सत्यम् शिवम् सुन्दरम्, आत्मा मंगलमय अभिधान
उपादान है परमात्मा का, संयम है उसका अवदान। ऋ.पृ. 158

वस्तुतः प्राण और अपान दोनों पुद्गल हैं, इसलिए नश्वर हैं, जीवनधार पुद्गल है आत्मा अपौद्गलिक है। शरीर में आत्मा की खोज 'दीक्षा' संस्कार से संभव है। दीक्षा संस्कार एक भावनात्मक स्थिति है, जो संसार से विरक्त निर्वेद भाव का बिम्बांकन करती है –

प्राणापान पौद्गलिक दोनों, पुदगल जीवन का आधार ।
उसमें आत्मा का अन्वेषण, करना यह दीक्षा संस्कार। ऋ.पृ. 206

'आकाश' एवं 'रवि' की दृश्यता से साधनात्मक अवस्था का चित्रण मनोहारी है। समत्व भाव से दीक्षित ऋषभ के अट्ठानबे पुत्रों के चित्त रूपी आकाश में चिन्मय 'रवि' रूपी आत्मप्रकाश से माया मोह की प्यास पलभर में ही शांत हो गयी। निम्नलिखित संपूर्ण पंक्तियाँ निर्वेदभाव से मंडित हैं –

चिदाकाश में चिन्मय रवि का, व्याप्त हुआ अविराम प्रकाश।
समता में दीक्षित सुतगण की, शांत हो गयी पल में प्यास।। ऋ.पृ. 207

इसी बिम्ब का नियोजन साधनारत आत्मलोक में विचरण कर रहे ऋषभ के लिए भी किया गया है। धर्म रूपी 'आकाश' में 'ऋषभ' रूपी 'रवि' के अभ्युदय से जैसे परमपद रूपी परमात्मा का अवतरण हो गया हों। साधना अवस्था में ध्यान, कायोत्सर्ग की मुद्रा, विचारहीनता, आभामंडल की दिव्यता, अन्तर्रात्मा की शांति आदि दृश्यों से ऋषभ में ऐसे ऋषि रूप का बिम्बांकन किया गया है जो तत्व ज्ञान की खोज में लीन हो –

धर्म के आकाश में, रवि का नवोदय हो रहा।
जागरण उस परम पद का, आज तक जो सो रहा।
ध्यान कायोत्सर्ग मुद्रा, मौन अन्तर्व्याप्त है।
दिव्य आभा दिव्य आत्मा, लग रहा वह आप्त है।
दिवस बीते जा रहे वह, अग अचल अश्रान्त है।
भूख की जय, प्यास की जय, अन्तरात्मा शान्त है। ऋ.पृ. 110

'दीक्षा' 'निर्वेद भाव' को मधुमय उपहार से व्यंजित कर उसके महत्व का प्रतिपादन किया गया है। संसार की असारता का ज्ञान हो जाने पर मन सन्यास की ओर उन्मुख होता है, जिसके लिए 'मुनि दीक्षा' परम आवश्यक है। सिद्धावस्था को प्राप्त ऋषभ के आभामण्डल को देखकर मां मरूदेवा उसे जीवन का 'मधुमय उपहार' कहती है –

इतने दिन मैंने तो ढोया, अर्थहीन चिन्ता का भार।
आकृति बोल रही है, दीक्षा, कष्ट नहीं, मधुमय उपहार। ऋ.पृ. 155

साधना की अंतिम अवस्था कैवल्य है। कैवल्य को 'अमृत–कलश' एवं सांसारिक जीवन की क्षणिकता को 'इन्द्रधनुष' के बिम्ब से व्यंजित किया गया है –

उदित हुआ वर केवल ज्ञान, कलश अमृत का अमृत–पिधान
हो सकता सर्वज्ञ मनुष्य, शेष जीवन हैं इन्द्रधनुष। ऋ.पृ. 145

माँ मरूदेवा आत्मस्थ ऋषभ की ओर अपलक देखते हुए यह महसूस करती है कि वीतरागता में मन की तल्लीनता से ध्येय और ध्याता में कोई भेद नहीं रह जाता। साधना के इस गहन रहस्य को समझ मरूदेवा पल भर में 'चिन्मय' परम आत्मा की अनुभूति कर लेती है। निम्नलिखित संपूर्ण पंक्तियाँ निर्वेद भाव से मण्डित हैं, जिसमें वीतरागता से सम्बन्धित सूक्ष्म रहस्यों की ओर संकेत किया गया है –

देख रही हूँ मैं तो अपलक, वहअपने में है तल्लीन।
माता का मन ममता–संकुल, उदासीन सुत नहीं नवीन।
हंत ! मोहमय चिंतन मेरा, यह निर्मोह विरत आत्मज्ञ।
वीतरागता में मन तन्मय, सदा सफल होता मंत्रज्ञ।
तन्मयता से मिट जाता है, ध्येय और ध्याता का भेद।
साध लिया पल में माता ने, चिन्मय से अनुभूति अभेद। ऋ.पृ. 155

जहाँ नींद और मूर्च्छा के बिम्ब से माया मोह में लीन माँ मरूदेवा स्वयं को धिक्कारती हुयी प्रतीत होती हैं, वहीं वे आत्मज्ञान की जागृति को 'वसंत' के दृश्य से भी अंकित करती हैं। माया, मोह के विलोपन के पश्चात् ही चैतन्यान्मा का जागरण होता है। स्वयं के बोधन में मरूदेवा का निर्वेदभाव स्पष्टतः मुखरित हुआ है –

मरूदेवा! तू जाग जाग री ! रही सुप्त तू काल अनन्त।
नींद गहनतम, गहरी मूर्च्छा, आओ पहली बार वसंत! ऋ.पृ. 155

नौवें सर्ग में माँ मरूदेवा के प्रसंग में कवि ने निर्वेद भाव से संबंधित कतिपय बिम्बों को प्रस्तुत किया है। मुनि ऋषभ का अवलोकन करने के पश्चात् मरूदेवा सिद्धि सोपान पर कदम रखती हुई माया मोह के जाल एवं शरीर के बन्धन से मुक्त हो आत्म सत्ता में लीन हो जाती हैं। यहाँ शारीरिक बंधन को 'बंध जाल' तथा 'माया मोह के बंधन को' 'मकड़ी के जाला' के बिम्ब से प्रस्तुत किया गया है –

अप्रकम्प अवस्था में मां, बंध–जाल से हुई विमुक्त
अब न बुनेगी मकड़ी जाला, निज सत्ता में नियत नियुक्त। ऋ.पृ. 156

'अनासक्ति' वीतरागता का मूल मंत्र है। अनासक्ति की साधना को शुक्ल पक्ष के 'चन्द्र', 'जलज' एवं 'रवि' के बिम्ब से निरूपित किया गया है। यह ज्ञातव्य ध्यातव्य है कि जहाँ अनासक्ति है, वहीं निर्वेद भाव है। ऋषभ भरत को उपदेश देते हुए कहते हैं –

अनासक्ति की प्रवर साधना, बढ़े शुक्ल का जैसे चन्द्र।
जल से ऊपर जलज निरन्तर, रवि रहता नभ में निस्तंद्र। ऋ.पृ. 298

अनासक्ति भाव के जागरण पर मन निर्मल हो जाता है। साधना की ओर अग्रसर आसक्ति भाव से परे भरत के मन की निर्मलता को शुष्क भित्ति पर शुष्क धूल के उपलेप न होने के बिम्ब से निर्वेद भाव को प्रस्तुत किया गया है –

शुष्क भित्ति पर शुष्क धूलि का, कभी नहीं होता उपलेप।
भरतेश्वर के मनःपटल पर, नहीं रहा कोई विक्षेप। ऋ.पृ. 299

इस प्रकार ऋषभायण में 'निर्वेद' भाव को विस्तार देते हुए कवि ने उपयुक्त बिम्बों का चयन किया है।

3. <u>वात्सल्य :–</u>

आचार्य महाप्रज्ञ ने वात्सल्य भाव से संबंधित अनेक बिम्ब रचे हैं। ऋषभायण में वात्सल्य भाव के दोनों पक्षों–संयोग और वियोग का बिम्बांकन हुआ है। शिशु रूप में उनके शरीर की कांति स्वर्ण एवं उसकी सुगंधि को 'कमल' के बिम्ब से निरूपित किया गया है –

अद्भुत रूप हिरण्यकांति तनु, स्वेद–मैल का लेश नहीं।
आनापान अब्जवत् सुरभित, आकृति यह संक्लेश नहीं। ऋ.पृ. 36

बालक ऋषभ की मृदु मुस्कान के लिए अप्रत्यक्ष रूप से 'सुमन' का बिम्ब प्रस्तुत किया गया है किन्तु सुमनों, में प्रतिस्पर्धा भाव की जागृति से ऋषभ के कोमल मुस्कान की श्रेष्ठता व्यंजित हुई है।

मृदु मुस्कान निहार, सुमन में, प्रतिस्पर्धा का भाव जगा। ऋ.पृ. 37

बालपन में ऋषभ द्वारा अंगुष्ठपान की क्रिया को 'अमृत' आस्वाद बिम्ब से प्रस्तुत कर उसे पुष्टिकारक बताया गया है। यहाँ बालक के अंगुष्ठपान में अनुभाव परक बिम्ब उभरा है –

मिला अमृत अंगुष्ठपान में, अति पोषक आहार बना। ऋ.पृ. 37

शिशु की स्वाभाविक क्रिया है – धूल में खेलना अथवा शरीर पर धूल लपेट लेना। शिशु ऋषभ भी हम उम्र साथियों के साथ खेलते हुए धूलि–धूसरित हो जातें हैं, जिससे बरबस ही युगलों का मनमोहित हो जाता है –

सवयस युगल कुमारों को ले, क्रीड़ा का प्रारम्भ किया।
धूली–धूसर कांत देह ने, युगलों का मन मोह लिया।। ऋ.पृ. 37

माँ पुत्र को कभी विस्मृत नहीं करती। वियोग काल में भी पुत्र के संयोग की यादें माँ के हृदय में हमेशा बनी रहती हैं। ऋषभ जब भोजन करने लगते थे तब माँ मरूदेवा अपनी ममता के रस से उनका अभिसिंचन किया करती थीं। प्रकृति पवन के द्वारा उन्हें शीतलता प्रदान तो करती ही थी, मां भी पंखा झलना नहीं भूलती थी। माता के द्वारा पुत्र ऋषभ को भोजन परोसना, भोजन कराना, पंखा झलना आदि आनुभाविक क्रियाएं माँ मरूदेवा के वात्सल्य भाव का सजीव बिम्ब प्रस्तुत करती हैं –

याद आ रहे हैं वे वासर, भोजन स्वयं कराती थी।
अपने हाथों से परोसती, मैं दीपक, मैं बाती थी।
भोजन का रस, माँ की ममता, का रस दोनों मिल जाते ।
पवन प्रकृति का, पवन पंख का दोनों मन को सहलाते। ऋ.पृ. 148

माता के सम्मुख पुत्र हो, और पुत्र की लीलाएँ हों तो वह क्षण बहुत ही दुर्लभ होता है। कवि ने अपत्य स्नेह से परिपूर्ण माँ मरूदेवा के हर्षातिरेक को उमंग में थिरकती हुयी 'मीनाक्षी' के बिम्ब से प्रस्तुत किया है। पुत्र वियोग में व्यथित माँ मरूदेवा संयोग काल की बातें याद कर भरत से कहती हैं –

कितना था वह रसमय जीवन, भरत! स्वयं तुम साक्षी हो।
रस पल्लव इठलाते मानो, थिरक रहीं मीनाक्षी हो। ऋ.पृ. 148

पुत्र कितना ही ज्ञानी ध्यानी क्यों न हो जाय, माँ कभी भी उसकी चिन्ता से मुक्त नहीं होती। हर वक्त पुत्र की सुख सुविधा का ध्यान उसे लगा रहता है। माँ मरूदेवा भी पुत्र ऋषभ के प्रति चिन्तातुर हो भरत से कहती हैं कि ग्रीष्मऋतु की प्रचंड धूप में धरती और बालू भी तपने लगती है, मार्ग में तपते हुए पत्थरों के टुकड़े होंगे, पदत्राण विहीन मेरा पुत्र तपते हुए ऐसे भीषण मार्गो से गुजरता होगा। यह ध रती ही उसकी शैय्या और बिछौना होगी, भला वह रात्रिभर कैसे सो पाता होगा ? माँ की इस वात्सल्य जन्य व्याकुलता का बिम्ब निम्नलिखित पंक्तियों में मूर्त्तमान हो उठा है –

पदत्राण नहीं चरणों में, पथ में होगे प्रस्तर खण्ड।
तपती धरती, तपती बालू, होगा रवि का ताप प्रचण्ड।
भूमि शैय्या, वही बिछौना, नींद कहाँ से आएगी ?
रात्रि–जागरण करता होगा, स्मृति विस्मृति बन जाएगी। ऋ.पृ. 148–149

पुत्र वियोग की वेदना माँ के लिए उस समय और असहनीय हो जाती है, जब सक्षम हो जाने पर पुत्र माँ को भूल कर अन्यत्र बसेरा कर लेता है। पुत्र की इस निष्ठुरता का चित्रण 'हंस' के उस नवोदित 'शिशु' से किया गया है, जो नवीन पंख उगते ही अपनी माँ का त्याग कर अन्यत्र उड़ जाते हैं। पुत्र ऋषभ भी हंस–शिशु की भांति समर्थ होने पर माँ का पालन पोषण विस्मृत कर मुनिमार्ग पर चल दिए। पुत्र के प्रति माँ की यह उलाहना उसके हृदय की संपूर्ण पीड़ा को खोलकर रख देती है –

माता की आंखों में आंसू, पुत्र निठुर हो जाते हैं।
विस्मृत माँ का पोष हंस शिशु, पंख उगे उड़ जाते हैं। ऋ.पृ. 149

कवि ने बछड़े के पीछे चलने वाली 'माता' के बिम्ब से माता के वात्सल्य भाव को व्यक्त किया है। जीवन के प्रारम्भिक काल में माँ ही एक मात्र त्राता है, जो शिशु की सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति कर उसके क्लेशों का हरण करती है –

माँ बछड़े के पीछे चलती, माता केवल माता है।
नवजीवन के आदिकाल में एक मात्र वह त्राता है। ऋ.पृ. 149

पौत्र के प्रति प्रमाता का वात्सल्य भाव पुत्र की तुलना में कम नहीं अपितु

अधिक होता है। चूंकि पुत्र पिता की अनुकृति होता है इसलिए पुत्र की झलक पौत्र में सहज ही दिखाई देती हैं। माँ मरूदेवा पुत्र वियोग से व्यथित होते हुए भी इसलिए विचलित नहीं हो पाती क्योंकि भरत सरीखे पौत्र उनकी नेत्रों के समक्ष हैं। वे ऋषभ के प्रति अपनी चिन्ता को उचित न मानती हुई वात्सल्य भाव से परिपूर्ण परिवार के कल्याणार्थ भरत को आशीष देती हैं, जिससे भरत के हृदयाकाश में अह्लाद के बादल उमड़ने घुमड़ने लगते हैं –

उचित नहीं है मेरी चिंता, भरत तुम्हारे सिर पर हो।
वत्स ! तुम्हारा मन मंगलमय, सुखमय घर का परिकर हो।। ऋ.पृ. 149

युद्ध स्थल में सूर्ययशा के प्रति बाहुबली के वात्सल्य भाव को निम्नलिखित उदाहरण में देखा जा सकता है जिसमें शस्त्र को 'कोमल धागा' के बिम्ब से चित्रित किया गया है –

उभर रहा है प्रेम नयन में, कर में है प्रियता का रक्त।
शस्त्र बना है कोमल धागा, हो जाओ सहसा अव्यक्त । ऋ.पृ. 266

इस प्रकार ऋषभायण में वास्सल्य परक पर्याप्त बिम्बों की योजना की गई है।

4. शोक –

इष्ट की हानि से जो वेदनानुभूति होती है उसे शोक कहते हैं। शोक की यह स्थिति विविध स्तरों पर होती है। किसी प्रिय की मृत्यु, विदाई अथवा किसी अनिष्ट की आंशका से हृदय व्याकुल हो जाता है, आँखे नम हो जाती हैं और मुख की आभा निष्प्रभ हो जाती है। शोक के चरम उत्कर्ष पर व्यक्ति की मृत्यु भी हो जाती है। 'ऋषभायण' में ऋषभ के राज्य त्याग के संकल्प से सुदृढ़ जनों में उत्पन्न वियोग जन्य शोक, पिता के दर्शन से वंचित बाहुबली का करूण विलाप, गिरिजनों की करूण पुकार आदि दृश्यों में शोक भाव के बिम्ब मिलते हैं। पिता ऋषभ जब संयम पथ पर गमन की बात करते है, तब भरत का मन आकुल हो उठता है, उनके

नेत्र आँसुओं से परिपूर्ण हो जाते हैं, कंठावरोध हो जाता है, वाणी काँपने लगती है। इस दशा में वे स्तम्भ की भांति जड़वत् हो जाते हैं –

सजल नेत्र कंपित–सी वाणी, कंठकला अवरूद्ध
स्तब्ध हुआ तनु जड़ित स्तम्भ–सा, पल–पल बुद्ध अबुद्ध। ऋ.पृ. 84

आठवें सर्ग में तक्षशिला के रमणीक उद्यान में विराजित पिता का दर्शन न करपाने के कारण बाहुबली के करूण विलाप का चित्रण किया गया है। शोक विह्वल बाहुबली के मनः संताप का बिम्ब निम्न उदाहरणों में देखा जा सकता है –

1. दर्शन के प्यासे सब लोक, बैठे नयन–अधृति को रोक,
यह क्या तुमने किया अशोक, क्या तम उगल रहा आलोक? ऋ.पृ. 138

2. तक्षशिला में हे भगवान! लिया नहीं कुछ भोजनपान।
घोर उपेक्षा का यह वृत्त, आखिर हम भी नाथ सचित्त। ऋ.पृ. 139

प्रथम उदाहरण में 'दर्शन की प्यास' 'नयनों की अधीरता' के बिम्ब से शोक भाव का उद्घाटन किया गया है। द्वितीय उदाहरण में तक्षशिला में प्रभु का न रूकना, भोजन पान न करना, तथा बाहुबली का करूण विलाप करना, शोक भाव को ही बिम्बित करता है। शोक के लिए सरिता का बिम्ब संवेदना को सजलता प्रदान करता है। ऋषभ की जुदाई के समय जनमानस का करूण विलाप ऐसा लग रहा था, जैसे शोक संतप्त शब्दों की नदी बह चली हो, तथा उनके सजल नेत्रों से संपूर्ण वनस्थली अभिषिक्त हो गयी हो –

भावना का उत्स अक्षय, शब्द–सरिता बह चली,
सजल नयनों से हुई, अभिषिक्त पूर्ण वनस्थली। ऋ.पृ. 104

'निर्झर' के बिम्ब से भी शोक भाव की अभिव्यक्ति हुयी है। पितृ वियोग से व्यथित भरत करूण रस में इस प्रकार विचरण करने लगते हैं कि उनके स्वर से शोक का झरना प्रवाहित होने लगता है –

भरतेश्वर के स्वर में करूणा, रस ने वर निर्झर रूप लिया। ऋ.पृ. 104

नर शिशु की मृत्यु से शोक मग्न सुनन्दा की मनःस्थिति का चित्रण भी 'निर्झर' के बिम्ब से किया गया है। युगलों द्वारा अकेले भटक रही सुनन्दा के बारे

में पूछे जाने पर उसके द्वारा कुछ बोल न पाना, स्वर यंत्रों का निष्क्रिय एवं कंठावरोध हो जाना तथा नेत्रों के सतत आँसुओं का झरना प्रवाहित होने लगता उसकी शोक मग्न दशा का अन्यतम उदाहरण है –

कायोत्सर्ग किया वाणी ने, निष्क्रिय–सा स्वर यंत्र हुआ।
कंठ रूद्ध, आँसू का निर्झर, समाधान का तंत्र हुआ।। ऋ.पृ. 43

यूथ भ्रष्ट 'हरिणी' के बिम्ब से शोक संतप्त सुनन्दा की मनः स्थिति का परिचय भी निम्नपंक्तियों से मिलता है –

यूथभ्रष्ट जैसे हरिणी हो, एकल ही वह घूम रही।
हुए अगोचर सभी सहारे, आँख शून्य को चूम रही। ऋ.पृ. 42

शोक संतप्त पीड़ा की रेखाएँ मुख मंडल पर सहज ही उभर आती है, जिससे कोई भी उसकी स्थिति का अनुमान लगा सकता है। युगलगण जब सुनन्दा को देखते हैं, तब ऐसा लगता है, जैसे आलम्बन हीन सुनन्दा के मुख मण्डल पर शोक की व्यथा मूर्त्तित हो गयी हो। युगलों के जीवन में असमय मृत्यु के प्रवेश से जो परिवर्तन आया उसे 'सघन तमोमय चित्रकथा' से भी बिम्बित किया गया है –

युगलों ने देखा आलम्बन, शून्य युवति है मूर्त्त व्यथा।
युगल–जगत् के परिवर्तन की, सघन तमोमय चित्रकथा।। ऋ.पृ.43

भरत की सेना से पराजित गिरिजनों की स्थिति का करूण दृश्य उस समय देखा जा सकता है, जब वे अश्रुपूरित नेत्रों से सहायतार्थ अपने इष्टदेव 'मेघमुख' की करूण पुकार करते है –

नयन अश्रु से आर्द्र गिरा में, सरस करूण रस घोला।
स्पंदमान काया का अणु–अणु, स्वयं मौन भी बोला।। ऋ.पृ. 174

इस प्रकार ऋषभायण में शोक बिम्बों की स्थापना हुयी है।

5. <u>विस्मय –</u>

अद्‌भुत रस का स्थायी भाव विस्मय है। विस्मय भाव विचित्र घटना लोकोत्तर वस्तु अथवा लोकोत्तर पुरूष के वर्णन से उत्पन्न होता है। इसमें व्यवहारिकता का अभाव होने के कारण स्पष्ट रूप से बिम्ब ग्रहण करने में व्यवधान उपस्थित होता है, जिससे कवि कल्पना द्वारा विस्मयकारी बिम्बों का निर्माण करता है। ऋषभायण में विस्मय भाव की अभिव्यक्ति तो कई स्थलों पर हुयी है, पर उसमें कुछेक प्रसंग ही बिम्बात्मक हो सके हैं। स्वेद और मैल से विरहित शिशु ऋषभ का स्वर्ण के समान दैदीप्यमान रूप तथा श्वास–प्रश्वास से कमल के समान सुरभि विस्मयकारी है –

अद्‌भुत रूप हिरण्यकांति तनु, स्वेद–मैल का लेश नहीं।
आनापान अब्जवत् सुरभित, आकृति पर संक्लेश नहीं। ऋ.पृ. 36

अन्य शिशु के द्वारा शिशु ऋषभ की अंगुलि पकड़ने पर पवन के समान श्वास वेग से उसे दूर फेंक देने में भी विस्मय भाव की अभिव्यक्ति हुई हैं। यहाँ पवन के बिम्ब से श्वास के वेग को दर्शाया गया है –

शक्ति–परीक्षण के क्षण में इक, शिशु ने अंगुलि ग्राह्य किया।
श्वास पवन ने सिकता–कणवत्, दूर क्षेत्र अवगाह किया। ऋ.पृ. 38

भरत का विस्मय भाव उस समय देखने योग्य है जब ऋषभ के साथ हजारों लोग मुनिमार्ग पर जाने के लिए तत्पर हो जाते हैं। उस समय उनकी आँखे फटी की फटी रह जाती हैं –

विस्मय विस्फारित नयन, बोला भरत नरेश।
क्या होगा सबके लिए, प्रभु का यह संदेश ? ऋ.पृ. 94

भरत ही नहीं, माँ मरूदेवा, पत्नी सुनन्दा एवं सुमंगला भी ऋषभ के गृह त्याग से आश्चर्यचकित है। आश्चर्य मिश्रित उनकी स्थिरता को 'मूर्ति' के बिम्ब से व्यक्त किया गया है –

माता भी मरूदेवा स्तंभित, मौन मूर्ति–सी खड़ी रही।
पत्नी द्वय के मानस–कंपन, से अकम्पित हुई मही। ऋ.पृ. 106

व्योम मार्ग से पुष्पक विमान द्वारा नमि विनमि का अयोध्या में उतरना वहाँ की जनता के लिए विस्मयकारी है। उस समय धरती पर उतर रहे पुष्पक विमान की आभा का चित्रण बादलों के मध्य कौंध रही विद्युत रेखा के बिम्ब से की गयी है –

यह कौन आ रहा देखो व्योम विहारी ? तापस युग ने तब घटना नई निहारी ।
धरती पर उतरा यान तनुज को देखा, कौंधी धाराधर में बिजली की रेखा।

ऋ.पृ. 124

समवसरण में त्यागी ऋषभ के ठाटबाट को देखकर मरूदेवा के मन में विस्मय के बादल घनीभूत हो जाते हैं –

देखा माँ ने विभु का वैभव, विस्मय का घन सघन हुआ।
स्वयं अकिंचन कांचन पीछे, लगता जैसे मगन हुआ।। ऋ.पृ. 154

भरत के दिग्विजय के पश्चात् चक्रवर्ती अभिनन्दन समारोह में बंधु बांधवों की अनुपस्थिति से राज्य सभा में व्याप्त सन्नाटा, मूकता, नीरवता भी विस्मयकारी है–

सन्नाटा सा राज्य सभा में, विस्मित लोचन मौन अखण्ड
भाषक जन भी हुए अभाषक, नीरवता है दण्ड प्रचंड। ऋ.पृ. 191

बाहुबली की सेना के समक्ष भरत के समान बलवान पुत्र (सूर्ययशा) की उपस्थिति से भी उनकी सेना का विध्वंश विस्मयकारी है –

स्वामीन्! सुत नव तुल्य बली हैं, देख रहे हैं सेना–ध्वंश।
अद्भुत कैसे रणभूमि में, पनपा निष्क्रियता का वंश ? ऋ.पृ. 262

युद्ध के दरम्यान बाहुबली के दक्षिण कर में चक्र को विराजित देखकर भरत उसी प्रकार विस्मित हो जाते हैं, जिस प्रकार कृषक अंकुर को गुल्म के रूप में परिवर्तित देखकर विस्मित हो जाता है –

संशय और विकल्प श्रृंखला, एक पलक में हुई प्रलंब।
देख रहा है कृषक सविस्मय, अंकुर कैसे क्षण में स्तंब । ऋ.पृ. 286

अस्तु उपर्युक्त संदर्भो में ऋषभायण में विस्मयभाव की अभिव्यक्ति हुयी है।

6. उत्साह –

ऋषभायण में उत्साह भाव पर आधारित अनेक बिम्ब निर्मित हुए हैं। उत्साह भाव का बिम्बांकन अधिकांशतः युद्ध के परिप्रेक्ष्य में हुआ है। चीता को देखकर भागते हुए मृग के बिम्ब से भरत की सेना का उत्साह भाव व्यक्त हुआ है। सेनानी के खड्ग रत्न के प्रहार से गिरिजन रणक्षेत्र से वैसे ही पलायन कर जाते हैं, जैसे मृग ने चीता देख लिया हो –

सेनानी ने खड्ग रत्न ले, क्षण में सब को जीता ।
किया पलायन जैसे मृग ने, देख लिया हो चीता।। ऋ.पृ. 171

स्वतंत्रता सबको प्रिय होती है। दृढ़ संकल्पी व्यक्ति परिणाम की परवाह किए बिना विजयोल्लास से परिपूर्ण संघर्ष के प्रति आस्थावान हो, अपने शौर्य का प्रदर्शन करता रहता है। स्वतंत्रता को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हुए गिरिजन उत्साहपूर्वक अपने संकल्प पर अटल हैं –

जन्म सिद्ध अधिकार स्ववशता, पर वश नहीं बनेंगे।
अचल अटल संकल्प जयश्री की माला पहनेंगे। ऋ.पृ. 172

'सूर्य' और 'तम' के बिम्ब से बाहुबली के तेजस व युद्ध की विभीषिका को व्यक्त किया गया है। आक्रान्ता भाई भरत के प्रतिकूल युद्ध के लिए सन्नद्ध दृढ़ प्रतिज्ञय बाहुबली का चिन्तन शौर्य से परिपूर्ण है –

संकल्प हमारा पावनतम दृढ़तम है
क्या सूर्य डरेगा यद्यपि गहरा तम है। ऋ.पृ. 252

तेल के संचार से प्रज्वलित दीपक की 'ज्योति' से बाहुबली की सेना के उत्साह का चित्रण किया गया है। रथारूढ़ सिंह रथ को रणक्षेत्र में आगे बढ़ते हुए देखकर उनकी सेना का मनोबल उसी प्रकार से बढ़ने लगा जैसे टिमटिमाते हुए दीपक में तैल का संचार कर देने पर उसकी ज्योति बढ़ जाती है।

बढ़ा सिंहरथ का रथ आगे, बढ़ा मनोबल अमिताकार
टिम–टिम करते ज्योति दीप में, हुआ तैल का नव संचार। ऋ.पृ. 255

मतवाले हाथी के बिम्ब से अनिलवेग के शौर्य को प्रदर्शित किया गया है। युद्ध में अनिल वेग भरत के सेनानी के धनुष को वैसे ही तोड़ देता है, जैसे मद मस्त हाथी बाँस के समूह को क्षण में नष्ट कर देता है –

अनिलवेग ने सेनापति के, किया धनुष का पल में ध्वंश।
मद से मत्त मतंगज से ज्यों, उन्मूलित हो जाता वंश।। ऋ.पृ. 258

प्रलंयकारी पवन एवं ज्वार के बिम्ब से अनिल वेग का शौर्य वर्णन सराहनीय है। अनिल वेग, भरत की सेना में विध्वंस के उद्देश्य से प्रलंयकारी पवन की भाँति इस प्रकार प्रवेश करते हैं जैसे सागर में ज्वार आ गया हो –

अवसर देखा अनिल वेग ने, प्रलय पवन का ले आकार।
चक्री की सेना में उतरा, आया अंभोनिधि में ज्वार।। ऋ.पृ. 260

अनिलवेग के शौर्य को विखंडित करने के लिए भरत उस पर इस प्रकार टूट पड़ते हैं जैसे 'बाज' पक्षी 'कपोत' पर झपट पड़ा हो–यहाँ 'बाजपक्षी' कपोत के बिम्ब से क्रमशः भरत और अनिलवेग के शौर्य का तुलनात्मक रूप प्रस्तुत किया गया हैं –

अनिलवेग की अनुश्रेणी में, झपटा पारापत पर बाज। ऋ.पृ. 261

भरत के शौर्य को वेगवान 'पवन' के बिम्ब से भी व्यक्त किया गया है। शक्ति परीक्षण में सैनिकों से जकड़ी हुई साँकल को भरत वैसे ही खींच लेते हैं जैसे तीव्रगामी पवन से आहत पत्ते वृक्षों की डालियोंसे टूटकर पृथ्वी पर गिर जाते हैं –

भरतेश्वर ने खींची सांकल, खिंच आए सैनिक निःशेष।
अनिल वेग से आहत तरू का, पत्र छोड़ देते हैं देश।। ऋ.पृ. 273

'केशरिया बाना' से सुसज्जित भरत एवं बाहुबली की सेना को अपनी–अपनी विजय का अदम्य विश्वास है, और यह विश्वास उनमें उत्साह का वर्धन करती है –

जय का निश्चय है सबको सोलह आना।
निश्चित होगा सार्थक केशरिया बाना। ऋ.पृ. 181

7. क्रोध –

ऋषभायण में क्रोध भाव के व्यंजक अनेक बिम्ब हैं। घटनाओं एवं उपमानों से कवि ने क्रोध की सफल व्यंजना की है। भृकुटि का तनना, आँखों में खून उतर आना आदि अनुभावों के वर्णन से क्रोध के बिम्ब बनते हैं। भरत की सेना के आक्रमण से पवन वेग के समान अपनी सेना का पलायन देखकर क्रोध से बाहुबली की भृकुटि तन जाती है, और उनकी आँखों में खून उतर आता है –

हुआ पलायन पवनवेग से, बहलीश्वर ने देखा सर्व।
तना भृकुटि का देश चक्षु में उतरा अरूण वर्ण का पर्व।। ऋ.पृ. 254

प्रज्ज्वलित अग्नि की दाहकता के बिम्ब से भी क्रोध की ज्वलनशीलता का वर्णन किया गया है। अनिलवेग के भीषण प्रहार से पलायन करती हुयी अपनी सेना को देखकर भरत क्रोधग्नि में चलते हुए दिव्य अस्त्रों का प्रक्षेप करते हैं, जिससे देवेन्द्र भी अचंभित हो जाते हैं –

कोपानल से ज्वलित भरत ने, फेंका दिव्य शक्तिमय चक्र ।
अंतरिक्ष की ज्वालाओं से विस्मित चकित हुआ सुर शक्र ।। ऋ.पृ. 261

बादलों के मध्य कौंधती हुई बिजली के बिम्ब से क्रोध को दृश्यता प्रदान की गयी है। बचपन में भरत के आघात के बदले में बाहुबली जब उन पर प्रतिघात करने के लिए मुड़ते हैं तब स्वेद बिन्दुओं से स्नात उनकी क्रोधमयी मुद्रा ऐसी लगती है जैसे आकाश में बादलों के मध्य बिजली कौंध गयी हो –

कर पृष्ठभाग में मुष्टि–घात में दौड़ा,
प्रतिघात हेतु जब भाई ने मुख मोड़ा।
तब कौंध गई नभ में कोपाम्बुद बिजली,
ऊर्जा की बूंदे बिखरी उजली–उजली। ऋ.पृ. 246

भरत के दिव्यास्त्र से अनिलवेग को मृत देखकर क्रोध से जलते हुए रत्नारि ने पवन वेग के समान भरत की सेना पर ऐसा आक्रमण किया जैसे आज ही युद्ध का समापन हो जाएगा –

विद्याधर रत्नारि कोप से, ज्वलित हुआ वह दृश्य निहार।
पवनवेग सा आया मानो, होगा रण का उपसंहार। ऋ.पृ. 261

भरतपुत्र शार्दूल और विद्याधर सुगति के द्वारा एक दूसरे पर आक्रमण के फलस्वरूप क्रोधाभिव्यंजक बिम्ब निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है –

रूद्ध हुआ शार्दूल सुगति से, देखा रवि ने अति ऑटोप।
शून्य गगन पर हुआ कोप का, मानो भीषणतम आरोप।। ऋ.पृ. 264

क्रोध और आवेश भाव का उद्‌घाटन, पक्षियों पर आक्रमण करने वाले 'बाज' पक्षी के बिम्ब से भी किया गया है। क्रोधावेश में शार्दूल सुगति का शिरोच्छेद वैसे ही कर देते हैं जैसे बाज पक्षी झपटकर किसी भी पक्षी का अंत कर देता है–

झपटा जैसे बाज विहग पर,
किया सुगति के सिर का छेद। ऋ.पृ. 264

बाहुबली के दण्ड प्रहार की क्रोधाग्नि से प्रज्जवलित भरत का मुखमंडल अति विकराल दिखाई देने लगता है। पराजय की इस अनुभूति से उनकी समग्र चेतना क्रोध से परिपूर्ण हो जाती हैं। यहाँ क्रोधाग्नि से जलना, मुखमंडल की विकरालता, क्रोधाभिव्यंजक है –

तन का पौरूष, बल मानस का, क्रोध अग्नि का ऊर्जा जाल।
व्यक्त हुआ भरतेश क्लेश से, मुखमण्डल लगता विकराल।। ऋ.पृ. 283
कोपाविष्ट समग्र चेतना, और पराजय की अनुभूति,
ज्योति हुई आच्छन्न भस्म से, नहीं रही प्रत्यक्ष विभूति। ऋ.पृ. 283

'रौद्र मूर्ति' की प्रचंडता के बिम्ब से बाहुबली के क्रोध की अभिव्यक्ति की गई है। पूर्ण पराजय के पश्चात् भरत ने बाहुबली पर जब चक्र से प्रहार किया तब बदले में 'मुस्टिताने' बाहुबली, भरत पर आक्रमण करने के उद्‌देश्य से इस प्रकार दौड़े जैसे वे रूद्र की साक्षात् प्रतिमा हो –

उठा हाथ, तन गई मुष्टि भी, दौड़ा भरतेश्वर की ओर।
रौद्र मूर्ति से लगी टपकने, साध्वस की धारा अति घोर। ऋ.पृ. 287

इस प्रकार कविवर्य ने क्रोध जन्य बिम्बों की योजना सफलता पूर्वक की है।

8. भय –

ऋषभायण में भय भाव के पर्याप्त बिम्ब निरूपित हुए हैं। कल्पवृक्षों द्वारा भोजनपान की व्यवस्था से हाथ खींच लेने पर कुलकर का युगलों के भरण–पोषण से संबंधित भूख का भय सताने लगा। भूख को ताप से अधिक भयंकर कहकर उसके भयावह रूप को बिम्बित किया गया है –

अब क्या होगा ? भय से आकुल, कुलकर का सारा परिवार ।
भूख–ताप से अधिक भयंकर, हंत! भूख के भय का तार।। ऋ.पृ. 69

तन का सिहर जाना, मन में अनबूझा सा कंपन, जीवन का ठहर जाना आदि अनुभावों का उपयोग भय व्यंजक बिम्ब के रूप में किया गया है। नर शिशु की मृत्यु के पश्चात् जड़वत् सुनन्दा को देखकर उसके माता–पिता के मानस पटल पर अनाम भय का संचार इस प्रकार होने लगा जैसे जीवन की गति ही ठहर गयी हो –

दूर स्थित माँ और पिता का, अनजाने तन सिहर गया।
मन में अनबूझा–सा कंपन, जीवन जैसे ठहर गया। ऋ.पृ. 40

शक्ति की भयावहता का चित्रण आकाश में आच्छादित बादल के बिम्ब से किया गया है। शक्ति सम्पन्न व्यक्ति दुर्बल जन के अस्तित्व को भय के घटाटोप से ढक लेते हैं –

सबल मनुज का दुर्बल जन पर, भय घन बन छा जाता।
देवि ! नहीं तुम रह पाती हो, तब ममतामय माता। ऋ.पृ. 162

काले–काले बादलों की छटा तथा बिजली की चमक से भय भाव को बिम्बायित किया गया है। गिरिजनों के निवेदन से भरत के आक्रमण को विफल करने हेतु देवकृत मेघमुखों की मूसलाधार वृष्टि से भरत की सेना भयाकुल हो काँप सी जाती है –

सहसा श्यामल अंभोधर की, घटा गगन में छाई।
मुसल सदृश वर्षा की धारा, कांप उठा सेनानी।
आंदोलित सेना का मानस, किसने लिखी कहानी। ऋ.पृ. 175

आचार्य श्री ने ध्वनि (सिंहनाद) के प्रभाव से अनेक बिम्ब गढ़े हैं, सिंह रथ के भीषण सिंहनाद से भरत की सेना के मानसपटल पर रणक्षेत्र में बाहुबली अथवा इंद्र की उपस्थिति का संदेह परक बिम्ब उभरने लगा, जिससे वे और भी अधिक भयाकुल हो रहा रण क्षेत्र से पलायन करने लगे –

सिंहनाद से हुआ प्रकंपित, भरतेश्वर का सेना–चक्र।
किया पलायन योद्धागण ने, कौन ? बाहुबली अथवा शक । ऋ.पृ. 255

दूसरी ओर दिव्य आयुधों से सुसज्जित भरत के सेनापति के सिंहनाद से बाहुबली की सेना भी भयाक्रांत हो जाती है।

दिव्य शस्त्र से सज्जित होकर, सम्मुख आया सेनाधीश।
सिंहनाद से किया प्रकंपित, बहलीश्वर सेना का शीश। ऋ.पृ. 259

सुगति की मृत्यु के पश्चात् भरतपुत्र सूर्ययशा के पराक्रम को अवरोधित करने के लिए बाहुबली सिंहनाद करते हुए युद्ध क्षेत्र में प्रवेश किए। उनके प्रचंड सिंहनाद से प्रकंपित भरत की सेना पलायन करने के लिए विवश हो गयी –

स्वयं बाहुबली आए आगे, सिंहनाद का एक निनाद।
चक्रीश्वर की सेना कंपित, हुआ पलायन का अनुवाद। ऋ.पृ. 265

बाहुबली की प्रतिस्पर्धा में भरत के सिंहनाद से संपूर्ण दिशाएं व्याप्त हो गयीं, जिससे पृथ्वी, तरूवर एवं गगनचारी भी भय से आक्रान्त हो गए –

भरतेश्वर के सिंहनाद से, दिग् दिगन्त में हुआ निनाद।
भूमि कंपित, कंपित तरूवर, अम्बरचारी भी भयभीत।
कौन अभयदाता अब होगा? अभय स्वयं है शब्दातीत। ऋ.पृ. 278

पराजित भरत द्वारा बाहुबली के चक्र प्रक्षेप से धरती पर 'कोलाहल' होने लगा, जिससे देवता और दनुज भी भय से व्याकुल हो गए । इस प्रकार ऋषभायण में ध्वनि परक बिम्बों से भयभाव की यथेष्ट अभिव्यंजना हुई है।

––00––

9. <u>जुगुप्सा–</u>

'किसी दोष युक्त वस्तु को देखने, सुनने, स्मरण अथवा स्पर्श से चित्त मे जो किंचित घृणा का भाव उत्पन्न होता है, उसे 'जुगुप्सा' कहते है'।[2] शोषण के सम्बन्ध में कवि ने इस भाव का नियोजन किया है। दूसरे का शोषण कर स्वयं के पोषण में रत व्यक्ति का कर्म घृणास्पद एवं त्याज्य होता है। शोषण की इस जुगुप्सा व्यंजक वृत्ति को वृक्षों के शोषण में रत 'अमरबेल' 'वानस्पतिक बिम्ब' से प्रस्तुत किया गया है–

अमरबेल ने आरोहण कर, किया वृक्ष का शोष,
वह कैसा प्राणी जो करता, पर शोषण निज पोष।
कितना हाय जुगुप्सित कर्म, लज्जित हो जाती है शर्म। ऋ.पृ.80

युध्यस्थल में लोगो के लहू से तृप्त होने वाली 'समरदेवी'के बिम्ब से मानव की घृणास्पद वृत्ति 'कूरता' का अंकन किया गया है। युध्द मे रक्तरंजित यह भूमि जो वस्तुतः सभी प्राणियो का भरण पोषण करती है क्या वह अपने अहं की संतुष्टि के उद्देश्य से युध्द को आमंत्रण देने वाले मनुष्य पर कभी प्रसन्न हो सकती है ?

तृप्त होती समर देवी, प्राण का बलिदान ले,
वह समर कैसे मनुज को, प्राण का आयाम दे।
निज अहं को पुष्ट करने, की महेच्छा युध्द है।
रक्त–रंजित भूमि नर की, क्रूरता पर क्रुध्द है। ऋ.पृ.220

ऋषभायण में सीमित रूप में ही जुगुप्सापरक बिम्ब निर्मित हुए हैं।

––00––

10. <u>रति–</u>

ऋषभायण में रति भाव से संबंधित एकाध बिम्ब ही मिलते हैं। चूँकि इस महाकाव्य के रचयिता एक महान साधक है, इसलिए रति विषयक बिम्बों में उनका मन रंचमात्र भी नहीं रमा है, फिर भी प्रकृति के आागोश में एक वियोग रति विषयक

विनीता नगरी को 'समरांगण की गीता' तथा भरत के हृदय को 'मादक रस से भृत प्याली' से बिम्बायित किया गया है। विजयोपरांत नमि–विनमि से असीमित उपहार तथा गंगा तट पर नवनिधियों का वरदान प्राप्त कर भरत अपनी उस विनीता नगरी की ओर प्रस्थान करते हैं, जो समरांगण की गीता बनी हुई है। उनके जिस हृदय रूपी प्याली में भाइयों के प्रति ममता का रस होना चाहिए था अब वह मादक अहंकार के रस से परिपूर्ण हैं –

अब लक्ष्य बनी है नगरी विमल विनीता।
जो बनी हुई है समरांगण की गीता।
अपने मन की होती है कथा निराली।
मादक रस से मृत है ममता की प्याली। ऋ.पृ.185

'जाति' 'कुल' और 'शक्ति' की श्रेष्ठता के बिम्ब से भी भरत के हृदय में व्याप्त मद भाव को रेखंकित किया गया है–

जाति और कुल, बल के मद से, व्यथित निरंतर मनुष समाज,
बाहर से संघर्ष प्रस्फुटित , भीतर मे है मद का राज। ऋ.पृ.215

काम, क्रोध, लोभ, मद, अहंकार मानव के शत्रु हैं। या यों कहें ये मानसिक रोग हैं। 'अहंकार' को उस असाध्य रोग के बिम्ब से प्रस्तुत किया गया है, जिसकी विश्व में कहीं भी चिकित्सा उपलब्ध नहीं हैं। अनिलवेग भरत के सेनापति से कहता है–

युध्द–विजय से उपजा है यह, अहंकार का रोग असाध्य।
नही विश्व में कहीं चिकित्सा, मम विद्या–बल से वह साध्य ऋ.पृ.256

अहं अथवा मद भाव के लिए 'गज' का भी बिम्ब प्रयुक्त किया गया हैं। सिध्दि प्राप्ति में यह भाव सबसे बड़ा अवरोधक है। बाहुबली भी इस अहं भाव के कारण प्रभु का दर्शन नहीं कर पा रहे हैं। इस संसार सागर का संतरण तो करूणा, समता रूपी नौका से ही किया जा सकता है–

बंधो ! उतरो, गज से उतरो, अब भूमि का मिट्टी का अनुभव होगा तब ।

गज–आरोही प्रभु–सम्मुख पहुंच न पाता, आदीश्वर ईश्वर समतल का उद्‌गाता ।
इस अहंभाव ने भाई! पथ रोका है, इस भव सागर में मार्दव ही नौका है।

ऋ.पृ.294

––00––

2. शंकाभाव–

विषम, अनष्टि अथवा इष्ट हानि के विचार को 'शंका' कहते हैं। ऋषभायण में शंका भाव के अनेक बिम्ब प्रयुक्त हुए हैं। तालफल के आघात से नर शिशु के निर्जीव शरीर को देखने के पश्चात् युगल दम्पति के हृदय में मृत्यु के प्रति एक ऐसी संशय की रेखा निर्मित हो गयी, जिसका कोई निदान नहीं–

आए तालवृक्ष–परिसर में, देखा, जो न कभी देखा,
कहा ऑख ने, किंतु हृदय पर, खचित रही संशय–रेखा। ऋ.पृ.40

अकाल मृत्यु की भयावह स्थिति में मुरझाए हुए सुमन के बिम्ब से प्रयुक्त कर सुनन्दा प्रकृति के 'उन्मेष निमेष' चक के प्रति शंकालु हो उठती है–

मुरझाया सुम नहीं खिलेगा, तात! मृत्यु का अर्थ यही ?
या उन्मेष–निमेष–चक्र है, क्या यह धारा सदा बही ? ऋ.पृ. 41

झुरमुट से झांकते हुए सूर्य की किरणों के बिम्ब से मानव की शंकालु प्रवृत्ति का उद्‌घाटन किया गया है–

लता मंडपों के प्रांगण में, तम का अति आतंक।
झुरमुट और निकुंज कुंज से, सूरज किरण सशंक। ऋ.पृ. 80
वल्लभ है आतप का अंक, शंकाकुल ईश्वर भी रंक। ऋ.पृ. 80

शंका भाव भी अभिव्यक्ति 'आमय कर पेय' के बिम्ब से भी की गयी है। शासन तंत्र का उपदेश देते हुए ऋषभ भरत से कहते हैं, श्रेष्ठ शासन वह है जो जनता की संपूर्ण दुविधाओं का समाधान करे। यदि जनता की दुविधा का शासन द्वारा शमन नहीं होता तो वह उस पेय पदार्थ की भॉति है जो व्याधि का कारण होता है–

जनता की दुविधा मिटे, शासन का है ध्येय।
दुविधा की यदि वृध्दि हो, वह आमयकर पेय।। ऋ.पृ.89

मझधार में फँसी डगमगाती नौका के बिम्ब से भ्रातृ स्नेह के प्रति भरत के मन में उत्पन्न शंकाभाव का बयान निम्नलिखित पंक्तियॉ करती हैं। भरत की सोच में इस परिवर्तन का कारण मंत्री की कुटिल मंत्रणा है–

सोच में परिवर्त आया, नर विचित्र स्वभाव है।
बंधु के सम्बन्ध की मझ, धार में अब नाव है। ऋ.पृ. 226

संशय के लिए 'कारा' का बिम्ब दुर्बल मानव के परिप्रेक्ष्य में बहुत ही सटीक है। संशय को उगते हुए फूल के बिम्ब से भी निरूपित किया गया है। बाहुबली संशय ग्रस्त भरत को संबोधित करते हुए कहते हैं – जब अहंकार की परस्पर टकराहट होती है तभी धूल धूसरित नेत्रों में संशय के फूल खिलते हैं। जब तक हम इस संशय की कारा से मुक्त नहीं होगें तब तक युद्ध में धन–जन की हानि होती ही रहेगी –

अहं अहं से टकराता तब, उठता गरमी का वातुल
धूल–धूसरित नयनों में फिर, उगते हैं संशय के फूल। ऋ.पृ. 269
इस संशय की कारा से कब, होंगे बंधुप्रवर! हम मुक्त ?
ऐसे जन–धन का क्षय करना, कैसे कहलाएगा मुक्त । ऋ.पृ. 270

द्वन्द्व युद्ध की घोषणा से, बाहुबली के दृढ़तप तथा भरत के कोमल शरीर से, विजय के प्रति भरत की सेना शंकालु हो उठती है – 'दृढ़' और 'कोमल' स्पर्शित बिम्ब से बाहुबली की शक्ति सम्पन्नता तथा भरत की निर्बलता का आकलन सहज में ही किया जा सकता है –

चिंतित भरतेश्वर की सेना, स्वामी की है कोमल देह।
अंग बाहुबली का दृढ़तम है, विजय–वरण में है संदेह। ऋ.पृ. 272

इस प्रकार आचार्य महाप्रज्ञ ने ऋषभायण में शंका जन्य बिम्बों का सफलतापूर्व अंकन किया है।

––00––

3. मोह

भय, वियोग आदि से भ्रम उत्पन्न होकर चित्त में व्याकुलता का उत्पन्न होना और उससे वस्तु का यथार्थ ज्ञान न रह जाना मोह है।[3] ममता मोह का ही एक रूप है। ऋषभ के प्रयास एवं प्रभाव से यौगलिक जीवन में परिवार संस्था का विकास हुआ। अभी तक जो युगल कल्प वृक्षों की छाया में माया–मोह से विरत उन्मुक्त जीवन जीते थे अब उनमें ममकार वृति से माता, पिता, भाई, पत्नी, पुत्र, धन, घर आदि के बंधनों के प्रति आकर्षण बढ़ने लगा। ये बंधन मोह के ही बंधन हैं। यहां पारिवारिक संबंधों के बिम्ब से मोह बंधन को रेखांकित किया गया है –

मम माता, मम पिता सहोदर, मेरी पत्नी, मेरा पुत्र।
मेरा घर है, मेरा धन है, सघन हुआ ममता का सूत्र।। ऋ.पृ.68

'असि' और 'म्यान' के बिम्ब से भी ममता मोह भाव को व्यक्त किया गया है। किसी भी वस्तु के प्रति प्रतिबद्धता मोह का कारण है। जिस प्रकार 'असि' की विश्रांति 'म्यान' में है, उसी प्रकार युगलों की प्रतिबद्धता अपने घर, कृषि, भूमि, वन, उद्यान तक ही सिमट कर रह गयी –

अपना घर, अपनी कृषिभूमि, अपना वन, अपना उद्यान
मर्यादा में निश्रित सब जन, प्राप्त हुआ है असि को म्यान ऋ.पृ.69

मोह भाव के बढ़ जाने पर सामाजिक मर्यादाओं का भी अतिक्रमण होने लगता है, परिस्थितियाँ तो निमित्त मात्र होती है –

मर्यादा के अतिक्रमण का, उपादान वैयक्तिक मोह।
है निमित्त परिस्थिति, उससे, कल्लोलित होता विद्रोह।। ऋ.पृ.73

'कोमल धागों' के बिम्ब से ममता–मोह की प्रगाढ़ता को व्यक्त किया गया है। चैतन्य मनुष्य भी सांसरिक विषय–विकारों के कारण मोहांध हो जाता है। जब तक वह ममता के तटबंधों को नहीं तोड़ता तब तक इस विकार से मुक्त नहीं हो पाता। धर्म प्रवर्तन के लिए व्याकुल ऋषभ चिंतन करते हैं –

ममता के कोमल धागों से, बनता मनुज समाज।
ममता की अति ही करती है, मानव मन पर राज
तोडूं ममता का तटबंध, जिससे बनता सनयन अंध।। ऋ.पृ.82

प्रेम में त्याग होता है, मोह में स्वार्थ। स्वार्थ के वशीभूत मन उपलब्ध वस्तु के त्याग से पीड़ित होता है। मुनि मार्ग पर अग्रसर ऋषभ के राज्यत्याग से भरत की पीड़ा वस्तुतः उनके प्रति मोहग्रस्तता की पीड़ा है इसीलिए उन्हें उनके कमलवत् चरणों की छाया में जो सुख रूपी शीतलता मिलती है, वह शीतलता 'आत पत्रों' की छाया में संभव नहीं है –

पद–पंकज की छाया में है, जो शीतल अनुभाव
आतपत्र की छाया में है, उसका सतत अभाव। ऋ.पृ. 85

'जल' और 'तरू' के बिम्ब से मोहग्रस्त मानव का बिम्ब अप्रस्तुत विधाान के अंतर्गत किया गया है। ऋषभ जैसे विराट व्यक्तित्व के लिए ममता मोह का बंधन एक झटके से तोड़ना आसान है किन्तु सामान्य व्यक्ति के लिए नहीं। जिस प्रकार जल से तरू का पोषण होता है, वैसे ही ममता से व्यक्ति का पोषण होता है। मित्र और परिवारजनों के कथन में मोह का ही बिम्ब निर्मित होता है –

मित्र और परिवार जन, बोले वच साक्रोश,
दुष्कर गृह का त्याग है, जल ही तरू का पोष। ऋ.पृ. 99

माया मोह के बंधनों से मुक्त ऋषभ को सुख से विचरण करने की बात कहते हुए भरत कहते हैं कि यह नगर निवास भी बंधन का कारण है –

यह बंधन है पुर–वास प्रभो!, तुम मुक्त हुए सुख से विचरो। ऋ.पृ. 104

रागयुक्त व्यक्ति इस समरांगण रूपी संसार का परित्याग नहीं कर सकता। निर्ममत्व व्यक्ति ही ममता के बंधनों से सहजता से मुक्त हो सकता है, भरत ऋषभ से कहते हैं –

निर्ममत्व तुम, हम ममता के, कोमल धागों से आबद्ध,
रागमुक्त तुम, रागयुक्त हम, समरांगण में हैं सन्नद्ध। ऋ.पृ. 105

सृष्टि में मोह संपूर्ण प्रपंच का कारण है। मोह व्यक्ति को माया में लीन करता है, जिससे व्यक्ति सहजता से उबर नहीं पाता। यहाँ मोह को संपूर्ण मनोविकारों के सेनानायक के रूप में बिम्बित किया गया है। श्रेणी आरोहण की प्रक्रिया से ही मोह भाव का शमन हो सकता है –

सेनानायक मोह कराल, सारा उसका मायाजाल।
शेष हो गया अंतर्द्वन्द्व, अंतर्जगत् हुआ निर्द्वन्द्व ।। ऋ.पृ. 144

मोह के लिए 'मधु' आस्वाद्य बिम्ब का प्रयोग किया गया है। भरत द्वारा भेजा गया दूत बाहुबली से कहता है कि परिवार नृपति की तेजस्विता का आवरण है। स्वजनों के प्रति मोह भाव का होना स्वाभाविक है। इसीलिए सुत स्वजनों के मोह रूपी मधु के प्रभाव से उनके तलवार की तीक्ष्ण धार भी कुंठित हो गयी है।

नृपति की तेजस्विता का, आवरण परिवार है।
सुत स्वजन का मोह मधु से, लिप्त असि की धार है।। ऋ.पृ. 239

इस प्रकार आचार्य महाप्रज्ञ ने प्रसंगानुकूल मोह भाव का बिम्बाकंन किया है ।

––00––

4. स्पृहा

ऋषभायण में विविध प्रसंगों में स्पृहा भाव के पर्याप्त बिम्ब मिलते हैं। ऋषभ के पौरूष एवं प्रतिभा से प्रभावित युगलों की हार्दिक इच्छा है कि वे प्रथम राजा के दायित्व का निर्वाह करते हुए उनके सभी संकटों को दूर करें। यहां संकट मोचन बिम्ब से ऋषभ के अवतारी स्वरूप को व्यक्त किया गया है।

बन राजा सबका संकट दूर करो हे !
संकट–मोचन! जन–जन का पीर हरो है ! ऋ.पृ. 53

इच्छा विकास व नवनिर्माण को नवीन दिशा देती है, यहाँ दुग्ध के विविध परिवर्तनों के बिम्ब से सद्ईच्छा की अभिव्यक्त हुयी है –

इच्छा से इच्छा बढ़ती है, इच्छा का अपना है चक्र ।
दूध जन्म देता है दधि को, दधि से फिर बनता है तक्र।। ऋ.पृ. 62

ऋषभ द्वारा संयम पथ पर प्रस्थान करने की घोषणा से व्यथित जन समाज उनसे विलग नहीं रहना चाहता। वे सभी तो उस सृष्टि का स्वागत करना चाहते हैं जिसमें राजा स्वयं ऋषभदेव हों –

ऋषभ प्रभु राजा रहे, उस सृष्टि का है स्वागतं ।
ऋषभ राजा जो न हो, वह सृष्टिपर्व अनागतं।। ऋ.पृ. 95

ऋषभ के साथ त्याग पथ पर चलने के लिए तत्पर कच्छ महाकच्छ की इच्छाओं का अंकन 'मधुकर' और 'कमल' के बिम्ब से किया गया है। कच्छ महाकच्छ कहते हैं कि जिस प्रकार भ्रमर कमल के पराग का पान तन्मयता से करता है उसी प्रकार हम भी प्रभु के कमलवत् चरणों के पराग का रसपान करेंगे।

मधुकर बन लेंगे सदा, प्रभु चरणाब्ज पराग।
श्रद्धामय अनुराग से, विकसित विशद विराग।। ऋ.पृ. 100

अयोध्या से प्रस्थान के समय बाहुबली और भरत पिता श्री से बहुत कुछ कहना चाहते हैं, पर कह नहीं पाते। जहां भरत को ऋषभ के व्यक्तित्व में सागर के समान अत्यधिक गहराई दिखाई देती है वहीं बाहुबली को कोई मार्ग नहीं सूझता।

निम्नलिखित पंक्तियाँ भ्रातादय की मूक ईच्छा का साक्षी है –

चाहता है भरत कहना, किन्तु जलधि अथाह है।
और बाहुबली न कोई, खोज पाया राह है।। ऋ.पृ. 104

अट्ठानबे पुत्र पिता ऋषभ से अपने–अपने राज्यों में आकर स्वयं की खोज–खबर लेने की इच्छा व्यक्त करते हैं। उनकी यह ईच्छा 'जलद' और 'कृषक' के बिम्ब से व्यक्त हुई है। जिस प्रकार घनघटा को देख कृषक कृषिकर्म के निर्वाह की इच्छा से हर्षित हो जाता है, वैसे ही अपने–अपने राज्यों में पिता के आगमन से पुत्रगण भी हर्षित होना चाहते हैं –

देव! हमारे राज्यों में भी, करना पावन चरणस्पर्श।
घटा जलद की देख कृषक के, मन में होगा अतिशय हर्ष। ऋ.पृ. 106

आयुध शाला में चक्ररत्न की उत्पत्ति से उल्लसित भरत की तीव्र ईच्छाओं के पंख लग जाते हैं। उनकी इस ईच्छा का प्रदर्शन खग–शावक के उगे हुए उन नवीन पंखों के बिम्ब से किया गया है जो उसे उड़ने के लिए आतुर करते रहते हैं –

पुलकित तन मन के अणु–अणु में, गौरवमय उल्लास जगा।
उड़ने को आतुर खग–शावक, नया–नया ज्यों पंख उगा।। ऋ.पृ. 151

ईच्छा का वृहद् रूप महत्वाकांक्षा है। यह महत्वाकांक्षा सद् भी होती है, असद् भी होती है। मानव में जब असद् महत्वाकांक्षा का सूत्रपात होता है तब वह 'शोषण जैसी हिंसात्मक' गतिविधियों को अपनाता है। शक्तिसम्पन्न लोकमानस के परिप्रेक्ष्य में आचार्य प्रवर ने 'अमरबेल' के बिम्ब से प्रबल महत्वाकांक्षी शोषक की दुर्वृत्ति को प्रस्तुत किया है–

मनुज महत्वाकांक्षी पर पर, निज अधिकार जमाता ।
अमरबेल–सा शोषक पर की, सत्ता पर इठलाता।। ऋ.पृ. 162

ईच्छाएं अनन्त होती हैं। एक स्पृहा होने के पश्चात् दूसरी स्पृहा स्वयं उत्पन्न हो जाती है। यह सहजात् वृत्ति है। मानव की अनन्त ईच्छा को उस प्यासे

व्यक्ति के बिम्ब से व्यक्त किया गया है जो सब कुछ प्राप्त कर लेने के बावजूद भी प्यासा ही रहता है। भरत के दिग्विजय के संबंध में निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य है –

चला काफिला रत्नों का ले, दिग्जय की शुभ आशा।
सब कुछ पाकर भी मानव मन, रहता प्रतिपल प्यासा।। ऋ.पृ. 165

'सागर' और 'मधुकर' के बिम्ब से भरत की अतृप्त ईच्छा का बिम्बांकन अभूतपूर्वक है–

इतनी नदियों का जल लेकर, नहीं हुआ यह सागर तृप्त।
दर्प बढ़ा है पा पराग रस, मधुकर आज हुआ है दृप्त । ऋ.पृ. 193

महत्वाकांक्षा रूपी बाढ़ नदी के संपूर्ण तट्बन्धों को तोड़ अमर्यादा का ही प्रदर्शन करती है। अट्ठानबे पुत्र भरत की अमर्यादित आकांक्षा का उद्घाटन एवं उनके युद्ध के आमंत्रण को 'नदी की बाढ़' के बिम्ब से प्रस्तुत करते हुए पिता ऋषभ से कहते हैं –

पूर नीर का आया प्रभुवर! उसको दो नूतन तट–बंध। ऋ.पृ. 196

अंगारकर के स्वप्न से भी तृष्णा यानी अतृप्त ईच्छा की ओर संकेत करते हुए उसे लम्बे चीर के बिम्ब से व्यक्त किया गया है –

तालाबों का, सरिताओं का, आखिर अंभोनिधि का नीर।
पिया चित्र! फिर भी है प्यासा, तृष्णा का लंबा है चीर।। ऋ.पृ. 199

अनंत ईच्छाएं भी युद्ध का कारण बनती हैं। सागर की गहराई के बिम्ब से भरत की अतृप्त इच्छा का चित्रण निम्नलिखित पंक्तियों में दृष्टव्य है –

भरत ने जीते सभी नृप, बाहुबली संतुष्ट है,
चाह की कब थाह सागर, तीर से क्या तुष्ट है ? ऋ.पृ. 229

इस प्रकार ऋषभायण में स्पृहा भाव का अंकन किया गया है।

——00——

5. हर्ष

इष्ट पदार्थ की प्राप्ति से उत्पन्न चित्त की प्रसन्नता को हर्ष कहते हैं।[4] प्रथम कुलकर के पद पर अधिष्ठित होने के पश्चात् संपूर्ण वातावरण वैसे ही प्रफुल्लित हो उठा जैसे बाल रवि के अभ्युदय से प्रातःकालीन बेला उसकी स्वर्णिम किरणों से मण्डित हो जाती है –

पूरा वातावरण प्रफुल्लित, नव सूर्योदय स्वर्ण विहान।
सरजा जैसे नियति–चक्र ने, नई सृष्टि का नया विधान।। ऋ.पृ. 20

समुद्र में उठती हुई 'लहर' के बिम्ब से पुत्रावतार के पूर्व मां मरूदेवा द्वारा देखे गए स्वप्न से उनके हर्षभाव को व्यक्त किया गया है। जिस प्रकार मौन समुद्र से अकस्मात् गगनचुम्बिनी लहरें उत्थित होने लगती हैं वैसे ही अकारण मरूदेवा के हृदय में हर्ष की लहरें उठने लगी –

पता नहीं क्यों आज अहेतुक, हर्ष–वीचि उत्ताल हुई ?
मौन समन्दर, गगनचुंबिनी, लहरी ज्यों वाचाल हुई ? ऋ.पृ. 34

सुनन्दा, सुमंगला सह ऋषभ के पाणिग्रहण संस्कार के आनन्द भाव को सावन की रिमझिम वर्षा के बिम्ब से चित्रित किया गया है –

सम्पन्न पाणि से ग्रहण पाणि का पावन।
जैसे बरसा हो रिमझिम–रिमझिम सावन।। ऋ.पृ. 51

भरत के आनन्द भाव की अभिव्यक्ति भी 'लहर' के बिम्ब से की गयी है। बारह वर्षो तक अनवरत युद्ध की यंत्रणा सहने के पश्चात् नमि विनमि के संधि प्रस्ताव से भरत का मुखमंडल आनन्दमयी लहरों से प्रफुल्लित हो उठा –

आनन्द–उर्मि उत्फुल्ल वदन हैं सारे ।
कल के अरि इस क्षण में नयनों के तारे।। ऋ.पृ. 181

तक्षशिला में पधारे पिता ऋषभदेव का दर्शन न कर पाने के कारण बाहुबली व्यग्र हैं। उनकी व्यग्रता को तप्त दूध के उफान से बिम्बित किया गया है किन्तु सचिव के कोमल वचन रूपी जल कण के प्रभाव से उनकी व्यग्रता समाप्त हो

गयी और वे आह्लादित हृदय से प्रासाद की ओर लौट गए –

तप्त दूध में एक उफान, हुआ सचिव वच जल–कण पान।
बाहुबली अंतर–आह्लाद, पहुँच गया अपने प्रासाद ।। ऋ.पृ. 140

भरत में आह्लाद भाव को 'बादल' के बिम्ब से व्यक्त किया गया है। पुत्र के प्रति चिंतित मां मरूदेवा के आशीष से भरत के हृदय रूपी आकाश में हर्ष के बादल उमड़ने–घुमड़ने लगते हैं –

पा आशीष महामाता से, आया नृप अपने प्रासाद ।
उमड़ रहा है चिदाकाश में, महा मुदिर बनकर आह्लाद ।। ऋ.पृ. 149

पनिहारिन द्वारा अयोध्या में ऋषभ की उपस्थिति एवं उनके आभामंडल के चित्रण से मरूदेवा के कमलवत् नेत्र विकसित हो चले, जिससे उनका सम्पूर्ण गात्र हर्ष से प्रफुल्लित हो उठा –

हर्षोत्फुल वदन माता का, नयन–कमल में नव उन्मेष ।
बदल गयी चिंता चिंतन में, विदा हो गया सारा क्लेश ।। ऋ.पृ. 152

चक्रवर्ती पद पर भरत के अभिषेक की घोषणा से जनमानस की प्रसन्नता की अभिव्यक्ति भी 'बादल' के बिम्ब से की गयी है। जिस प्रकार बादलों की वर्षा से उद्यान हरे भरे हो जाते हैं, सरोवर जल से परिपूर्ण एवं लताएं निर्मल हो जाती हैं, उसी प्रकार 'जन–जन का हृदय रूपी सरोवर हर्ष रूपी बादल की वर्षा से परिपूर्ण हो चला जिससे उनके जीवन रूपी उद्यान में हरियाली छा गयी –

मोद मुदिर बन लगा बरसने, हरित हुआ जीवन – उद्यान।
छलक उठे जन–मानस–सरवर, वनराजी अतिशय अम्लान।। ऋ.पृ. 189

विकसित कमल के बिम्ब से श्री सम्पन्न भरत की सभा में उपस्थिति जन मन के प्रमोद भाव को व्यक्त किया गया है। भरत के चक्रवर्ती पद के अभिषेक के समय सभी के नेत्र कमल के समान खिल उठे, मन में हर्ष भाव की व्याप्ति से किसी में भी दूर–दूर तक ईर्ष्या का जन्म नहीं हो सका –

नयन कमल उत्फुल्ल सभी के, सबके मन में व्याप्त प्रमोद ।
जन्म नहीं ले पाई ईर्ष्या, वही पुरूष जिसमें आमोद।। ऋ.पृ. 191

प्रकृति के माध्यम से हर्ष भाव का मनोहारी दृश्य देखने योग्य है, जिसमें दिशा को वधू, मुख को कमल, तथा हर्ष को उर्मि के बिम्ब से बिम्बित किया गया है –

दिग्वधू के मुख कमल पर, नयनहर मुस्कान है।
हर्ष की उत्ताल ऊर्मी, का नया प्रस्थान है।। ऋ.पृ. 218

चक्रवर्ती पद पर भरत के अभिषेक को 'अमृत' तथा उनके मन की प्रफुल्लता को 'सुमन' के रूप में विकसित होती हुई कली के बिम्ब से प्रस्तुत किया गया है –

एक ओर विनीत जनता, से बधाई मिल रही।
अमृत का अभिषेक पा मन, सुमन कलिका खिल रही। ऋ.पृ. 218

युद्ध के लिए तत्पर तथा आक्रोशित भरतपुत्र सूर्ययशा के शौर्यपूर्ण कथन से सेनापति के हृदय में हर्षभाव की व्याप्ति का चित्रण निम्नलिखित पंक्तियों के द्वारा किया गया है–यहां पुलकित शब्द द्वारा मन की उस आन्तरिक प्रसन्नता को चित्रित किया गया है जिससे हृदय, मन और शरीर में एक ऊर्जा सी भर जाती है –

पुलकित सेनापति का अंतस, सफल हुआ अविकल आयास।
रजनी ने ली विदा त्वरिततर, फैला रवि का अमल प्रकाश।। ऋ.पृ. 263

भरत बाहुबली में संगर (युद्ध) की सूचना से बाहुबली की वज्र के समान कठोर व शक्तिशाली भुजा के प्रभाव से उनकी सेना में द्वन्द्व युद्ध के पूर्व ही विजयोल्लास का वातावरण निर्मित हो गया –

हर्षित बहलीश्वर की सेना, अब निश्चित है विजयोल्लास।
स्वामी का है बाहु वज्रमय, विफल बनेगा भरत प्रयास।। ऋ.पृ. 272

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आचार्य महाप्रज्ञ ने 'ऋषभायण' में हर्षभाव का चित्रण कुशलतापूर्वक किया है।

——00——

6. प्रमाद

प्रमाद का शाब्दिक अर्थ है—नशा, गफलत भूलचूक अथवा अंतःकरण की दुर्बलता। भ्रम, भांति, अभिमान आदि के कारण कुछ का कुछ समझना या करना प्रमाद है।[5] अरों के परिवर्तन के साथ जब कल्पवृक्ष युगलों की आवश्यकताओं को पूरा करने में कार्पण्य करने लगे तब उनमें स्वत्व हरण, अतिक्रमण, छीना झपटी का जैसे नशा सा चढ़ गया। यहाँ 'नशा' बिम्ब से युगलों का प्रमाद भाव व्यंजित हुआ है –

स्वत्व–हरण, छीना–झपटी का, अतिक्रमण का वेग बढ़ा।
शांति भंग का, मौन–भंग का, सब पर जैसे नशा चढ़ा।। ऋ.पृ. 13

मद से मतवाले हाथी के बिम्ब से युगलों के प्रमाद भाव की अभिव्यक्ति हुई है। जिस प्रकार मदमस्त हाथी अंकुश के नियंत्रण को स्वीकार नहीं करता, उसी प्रकार युगल भी मर्यादाओं का तिरस्कार कर गफलत करने में मशगूल हो गए –

मत्त मद से बन द्विरद ने, व्यर्थ अंकुश को किया है।
युगल के संवेग ने गति, वेग आशुग से लिया है। ऋ.पृ. 25

द्वन्द युद्ध में पराजित भरत के अंतःकरण की दुर्बलता उस समय देखी जा सकती है जब वे सोए हुए सिंह को जगाने के बिम्ब से बाहुबली की प्रबलता स्वीकार करते हैं। यहाँ भरत का पश्चाताप मिश्रित प्रमाद भाव व्यक्त हुआ है –

व्यर्थ जगाया सुप्त सिंह को, व्यर्थ किया रण का आवेश। ऋ.पृ. 280

बाहुबली इस अभिमान के कारण ऋषभदेव की शरण में नहीं जा पाते कि उन्हें अनुजों के समक्ष झुकना होगा, प्रणाम करना होगा। वस्तुतः यह अहंकार मिश्रित उनका प्रमाद भाव ही है जो साधना के मार्ग पर अग्रसर होते हुए भी उन्हें

तत्काल उपलब्धि से वंचित रखता है –

कैसे जाऊँ मैं प्रभुवर की सन्निधि में, कुछ ज्ञात और अज्ञात नियति की विधि में।
लघु बांधव को प्रणिपात करूंगा कैसे?, अनुशासन का उल्लंघन भी हो कैसे ?

ऋ.पृ. 292

बाहुबली के हृदय में पनप रही अभिमान रूपी लता उनके प्रमाद भाव को ही उत्पन्न करती है। वे 'समता' को सत्य तो मानते है किन्तु 'वंदन' को सामान्य व्यवहार के रूप में स्वीकार करते हैं इसलिए वे उसे अनावश्यक समझते हैं जबकि ऋषियों, मुनियों की वंदना व्यवहार नहीं, व्यक्ति का सहजधर्म है। चूंकि ऋषभ दरबार में मुनि रूप में अनुज भी उपस्थित हैं इसलिए धर्मानुसार उन्हें प्रणाम करना बाहुबली का कर्तव्य है, किन्तु प्रमाद भाव के कारण वे उलझन में ही फंसे रहते है–

है वंदन तो व्यवहार सत्य समता है
क्यों पनप रही मन में अभिमान लता है ? ऋ.पृ. 294

इस प्रकार ऋषभायण में प्रमाद भाव के अन्य उदाहरण भी मिलते हैं।

––00––

7. कृतकृत्यता (धन्यता)

धन्यता भाव से संबंधित कुछ बिम्ब ऋषभायण में मिलते हैं। राजा द्वारा राज्य व्यवस्था का संचालन कुशलतापूर्वक तभी किया जा सकता है, जब वह करूणा का आगार हो, जनजन के प्रति उसमें समर्पण का भाव हो। राजा और जनता दोनों एक दूसरे के पूरक उसी प्रकार हैं, जिस प्रकार सागर और उसकी एक–एक बूंद। सागर की सत्ता बूँद पर है और बूँद का अस्तित्व सागर पर केन्द्रित है। एक को छिपाकर दूसरे के अस्तित्व का प्रकाशन सम्भव नहीं है। यहाँ चिंतन को नवीन दिशा देते हुए कवि ने 'सिन्धु' और 'बिन्दु' के बिम्ब से राजा का समर्पण जनता के प्रति और जनता का समर्पण राजा के प्रति बिम्बित किया है –

छोटा मण्डल, छोटी सीमा, नेता में करूणा का सिन्धु ।
सागर भिन्न नहीं है मुझ से, अनुभव करता है हर बिन्दु।। ऋ.पृ. 71

महाप्रभु ऋषभ के साथ मुनिवेश में जाने के लिए तत्पर कच्छ–महाकच्छ उनके उपकार के बदले अपनी कृतज्ञता का ज्ञापन करते हैं। ऋषभ ने यौगलिक समाज को जीवन जीने की दिशा प्रदान करते हुए जो सुचारू राज्यव्यवस्था दी, कोई भी विज्ञ उस उपकार को विस्मृत नहीं कर सकता। यहाँ 'आकंठ निमग्न' शब्द चित्र से ऋषभ के प्रति कच्छ महाकच्छ की धन्यता ज्ञापित हुई है –

प्रभु का बहु उपकार है, हम आकंठ कृतज्ञ।
उपकारी का साथ दे, होता वही अभिज्ञ ।। ऋ.पृ. 99

युवराज श्रेयांस द्वारा चक्रमण कर रहे ऋषभ को इक्षुरस से पारणा कराने पर जनता उन्हें बधाई देते हुए पिता के समान वात्सल्य प्रदान करने वाले ऋषभ के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित कर उनकी स्नेहमयी दृष्टि को अमृत आस्वाद बिम्ब से प्रस्तुत करती है –

पिता तुल्य वात्सल्य शल्यहर, प्रभु हम सबको देते थे।
स्नेहसिक्त नयनों से बरसा, सुधा, तृप्त कर देते थे।। ऋ.पृ. 133

'तमस' और 'प्रकाश' के बिम्ब से क्रमशः अज्ञान और ज्ञान को चित्रित

करते हुए ऋषभ पारणा के इस दिव्य अवसर पर सामान्य जनता श्रेयांस को साधुवाद देना नहीं भूलती, जो उनकी कृतज्ञता का विशुद्ध ज्ञापन है।

साधु–साधु श्रेंयांस! तमस का, नाश किया दे नया प्रकाश।
तुम से जग आलोकित होगा, जन–जन में जागा विश्वास।। ऋ.पृ. 135

––00––

8. ईर्ष्या

आचार्य महाप्रज्ञ ने ईर्ष्या भाव से संबंधित बिम्बों का निरूपण न के बराबर किया है। दृष्टि, मुष्टि, सिंहनाद, बाहु तथा यष्टि युद्ध में पूर्णरूपेण पराजित होने के पश्चात् बाहुबाली के पौरूष के प्रति भरत के हृदय में ईर्ष्या की अग्नि सुलगने लगी जिससे प्रेरित हो उचित अनुचित का त्याग कर वे असमय में रक्तरंजित फाग खेलने लगे –

पूर्ण पराजय से जो सुलगी, अंतस्तल में भीषण आग।
उससे प्रेरित अग्रज मानो, खेल रहा असमय में फाग।। ऋ.पृ. 285

यहां भरत के अन्तस्ताल में सुलगती हुई भीषण आग तथा असमय फाग के बिम्ब से उनके ईर्ष्या भावना को व्यक्त किया गया है। उक्त उदाहरण के अलावा ऋषभायण में ईर्ष्या भाव परक बिम्बों का अभाव दिखाई देता है।

––00––

9. श्रम

श्रम संचारी भाव को परिभाषित करते हुए आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लिखा है – 'मार्ग पर चलने, व्यायाम करने आदि से जहाँ संतोष सहित अनिच्छा अथवा थकावट हो वहाँ श्रम होता है [6] धन कमाने या जीविका के लिए की जाने

वाली मेहनत या कार्य, दौड़धूप परेशानी[7] आदि श्रम के अन्तर्गत' ही आते हैं। जीवन रूपी पोत का संचालन पुरूषार्थ से ही होता है, पुरूषार्थ में श्रम निहित हैं। यहाँ श्रम–साध्य पोत के गतिजबिम्ब से पुरूषार्थ सम्मत जीवन प्रगति को व्यक्त किया गया है –

अपने पौरूष से चलता है, नवयुवकों का जीवन पोत। ऋ.पृ. 12

यह संसार कर्मभूमि है। कर्म में रत व्यक्ति ही जीवन का समुचित आनंद प्राप्त कर सकता है। हाथ कर्म के लिए ही निर्मित है। ऋषभ द्वारा युगलों को कर्म मार्ग पर चलने की प्रेरणा के लिए 'आंको इन हाथों का मूल्य' कथन किया गया है जिससे श्रम भाव की ही अभिव्यक्ति होती है –

आश्वासन का बोल मिला तब, डरो न, डरना मरना तुल्य ।
कर्मभूमि का प्राण कर्म है, आंको इन हाथों का मूल्य ।। ऋ.पृ. 70

ऋद्धि और समृद्धि की प्राप्ति श्रम से ही सम्भव है। युगलों द्वारा अनवरत श्रम एवं परस्पर सहयोग से चतुर्दिक वैभव विकास का बिम्ब निम्न पंक्तियां में दृष्टव्य है –

श्रम कौशल सहयोग समर्जित, बढ़ी चतुर्दिक् ऋद्धि–समृद्धि। ऋ.पृ. 72

भरत की सेना से पराजित होने के पश्चात् सिन्धु नदी की वालुका राशि से गिरिजनों के श्रम सीकर तो सूख गए किन्तु विजय की आकांक्षा उनमें बनी रही, उनके शरीर से प्रवाहित स्वेद की धारा जैसे सिन्धु के रूप में परिवर्तित हो गयी हो। यहां श्रम बिन्दु की प्रबलता को 'सिन्धु' बिम्ब से प्रस्तुत कर गिरिजनों के संघर्ष एवं अदम्य जीवटता को चित्रित किया गया है –

सिन्धु नदी की सिकता ने रण, श्रम के बिन्दु सुखाए।
एक साथ विजयाकांक्षा के, बिन्दु सिन्धु बन आए। ऋ.पृ. 171

निद्रा के वशीभूत श्रम श्लथ मानव का बिम्ब भी निरूपित किया गया है। अत्यधिक श्रम से निद्रा आती है। निद्रा के पश्चात् थका हुआ शरीर पुनः श्रम करने के लिए उन्नत दशा को प्राप्त करता है। 'अंगारकार' की कथा योजना से निद्रा के

पश्चात् श्रम श्लथ शरीर विश्रांति को प्राप्त कर पुनः श्रम के लिए उन्नतशील होता है –

लेट गया तरूवर के नीचे, करने को कुछ क्षण विश्राम।
श्रम निद्रा को सहज निमंत्रण, निद्रा से श्रम भी उद्दाम।। ऋ.पृ. 199

श्रम जनित कृषक जीवन के बिम्ब से बहली देश की जनता का वर्णन किया गया है। बाहुबली के राज्य में सभी जन कृषि भूमि से सम्पन्न हैं। समय–समय पर मेघ भी उनकी कृषि का सिंचन करते हैं जिससे श्रम मंडित बहली देश में चारों ओर धन धान्य से पूर्ण उल्लास का ही वातावरण बना रहता है –

नाथ एक, सनाथ हम सब, भूमि सबके पास है।
बरसता है जलद समुचित, श्रम जनित उल्लास है।। ऋ.पृ. 231

ऋषभ ने जिस समाज की रचना अपने श्रम सीकरों से की है क्या उनकी ही संतानें युद्ध के भीषण रक्तपात से उसे सूखे घास के रूप में परिवर्तित कर देंगी। बाहुबली, पिता के श्रम की सराहना करते हुए भरत से कहते हैं –

सिंचित पूज्य पिता के श्रम की, बूंदों से है सकल समाज।
उसको सूखा घास बनाने, आतुर हैं हम दोनों आज।। ऋ.पृ. 269

अस्तु उक्त उदाहरणों के आलोक में श्रम भाव का बिम्ब स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूप में परिलक्षित होता है।

––00––

अन्य भाव –

विवेच्य भावों के अतिरिक्त लोभ, जड़ता, उत्सुकता तथा चिंता भाव के भी कतिपय बिम्ब ऋषभायण में प्रयुक्त हुए हैं, जिनका अवलोकन निम्नानुसार किया जा सकता है –

लोभ –

व्यक्ति में जब लोभ मनोविकार का विकास होता है, तब उसकी सोच 'स्व' तक ही सीमित रहती है। अतिक्रमण, झीनाझपटी, स्वत्वहरण, अशांति उत्पन्न करने वाले कुविचार उसमें आते रहते हैं, जिससे समाज की व्यवस्था डगमगा जाती है। काल परिवर्तन के साथ जो युगल ममताभाव से मुक्त थे, जो प्रखर चेतना के स्वामी थे, वे ही लोभ भाव से इस कदर ग्रसित हो गए जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी।

कल्पवृक्ष द्वारा कार्पण्य करने पर युगलों में दूसरे के कल्पवृक्षों पर अधिकार जमाने की भावना प्रबल हुई। लोगों में लालच वृत्ति को बढ़ाने वाली हवा के एक भयानक झोंके से लोभ रूपी अग्नि इस प्रकार प्रज्वलित हुयी कि संपूर्ण सामाजिक मर्यादाएं जलकर राख हो गयी –

धीमे–धीमे मानस बदला युगलों का, आया लालच का एक भयानक झोंका।
पर–वृक्षों पर अधिकार जमाना चाहा, इस लोभ–अग्नि में सब कुछ होता स्वाहा।।

ऋ.पृ. 21

उपर्युक्त पंक्तियों में लोभ के लिए 'अग्नि' तथा 'हवा के झोंके' का बिम्ब प्रयुक्त किया गया है। 'हवा' से 'अग्नि' की ज्वाला बढ़ती है। यहाँ 'हवा के एक झोंके' से लालच की उत्पत्ति का कारण तथा 'अग्नि' बिम्ब से लोभ की दाहकता के साथ उसके प्रतिफल को व्यक्त किया गया है।

जड़ता –

इष्ट अथवा अनिष्ट के देखने सुनने से चित्तवृत्ति का विवेक शून्य होकर किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाना 'जड़ता' है।[8] नरशिशु के मृत्योपरांत सुनन्दा की दशा चेतनाशून्य उस प्रतिमा की भाँति जड़वत हो गयी जिसमें किसी प्रकार की कोई हरकत नहीं होती –

हिल न सकी वह, बोल सकी ना, मानस चिंतन–शून्य हुआ।
प्रतिमा–सी स्थिर स्तब्ध खड़ी है, जीवन हाय अनन्य हुआ।। ऋ.पृ. 40

यहां सुनन्दा की किंकर्तव्यविमूढ़ जड़ता का चित्रण स्थिर 'प्रतिमा' के बिम्ब से किया गया है। उसका न हिलना, न बोलना, 'मानस चिंतन का शून्य' हो जाना दृश्य उसकी जड़ता को प्रगाढ़ता देते हुए प्रतीत होते हैं।

उत्सुकता –

इष्ट या इच्छित वस्तु की प्राप्ति में विलम्ब का न सह सकना औत्सुक्य कहलाता है। अकस्मात् जंगल में अग्नि के तेजस्वी रूप को देखकर युगलों में उसे स्पर्श करने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। अपनी इस जिज्ञासा को शमित करने के लिए युगलों ने ज्यों ही उस दावाग्नि को स्पर्शित किया त्यों ही वे उससे झुलस गए–

देखा युगलों ने तेजस का अर्पण है, अभिनव अदृष्ट यह भावी का दर्पण है।
उत्सुक हो छूने आगे हाथ बढ़ाए, दव–अनल–दाह से अलसाए झुलसाए।
ऋ.पृ. 58

चक्रवर्ती भरत के अभिषेक की घोषणा से जनमानस का जिज्ञासु मन बेसब्री से प्रातःकाल की प्रतिक्षा में रत है। सबकी चेतना प्रफुल्ल और प्रशान्त इसलिए है क्योंकि उत्सुकता रूपी सूर्य का अभ्युदय हो चला है। यहाँ जनमानस के हृदय में व्याप्त उत्सुकता को 'सूर्य' के बिम्ब से प्रस्तुत किया गया है –

अरी नींद! तुम क्यों आओगी ?, नहीं मनस किंचित् भी क्लांत।
उत्सुकता का सूर्य उदित है, चेता प्रमुदित और प्रशांत । ऋ.पृ. 189

चिन्ता –

हित या इष्ट की अप्राप्ति अथवा अहित या अनिष्ट की प्राप्ति के कारण उत्पन्न ध्यान को चिन्ता कहते हैं। पुत्र वियोग में व्यथित माँ मरूदेवा की वात्सल्य जन्य चिंता उनके रहन–सहन, आहार–विहार आदि के प्रति स्वाभाविक रूप में व्यक्त हुई है। वे भरत से कहती है –

तुम्हें पता क्या? ऋषभ कहां है ? करता है कैसा आहार ।
सर्दी–गर्मी कैसे सहता ? कैसा है जीवन–व्यवहार ? ऋ.पृ.–148

ऋषभ का पद त्राण विहीन जंगल में चलना, मार्ग में प्रस्तर खण्डों का होना, धरती बालू की तपन, तथा सूर्य की प्रचण्ड धूप से शरीर का तपना मां की चिंता का स्वाभाविक कारण है –

पदत्राण नहीं चरणों में, पथ में होंगे प्रस्तर खंड।
तपती धरती, तपती बालू, होगा रवि का ताप प्रचंड ।। ऋ.पृ. 148

स्वप्न –

सोते हुए असत्य बातों को सत्य समझना स्वप्न हैं।[9] गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' के 'सुंदरकांड' में 'त्रिजटा' के स्वप्न का बहुत ही सुंदर चित्रण किया है। ऋषभायण में पुत्र जन्म के पूर्व माँ मरूदेवा द्वारा देखे गये चौदह स्वप्नों के द्वारा कवि ने चित्र–विचित्र बिम्बों का निर्माण किया है।[10] सुमंगला के द्वारा भी देखे गए स्वप्न इतने मधुर हैं जैसे – उन्होंने 'इस दिव्य निशा में अमृतमय प्याले का पान किया हो'।[11] श्रेयांस द्वारा स्वप्न में श्यामल स्वर्णगिरि का 'पयस' से अभिषेक कर धवलित करने की मधुरता भी उन्हें अमृतपान के समान प्रतीत होती है।[12]

भाव बिम्बों का समीक्षण –

भाव बीज रूप में चित्त में सुरक्षित व स्थिर रहते हैं, अनुकूल परिस्थिति होने पर वे उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार बीज के अंकुरण के लिए हवा, पानी, नमी, प्रकाश, वायु आवश्यक होते हैं, उसी प्रकार भावों की उत्पत्ति के लिए घटनाएँ दृश्य व संवेदनाएं आवश्यक होती हैं। इन घटनाओं व दृश्यों के बिम्ब से उसी के अनुकूल भाव बनते हैं जिससे हृदय में स्थित भाव जागृत होते हैं। किसी भी दृश्य या घटना का बिम्ब जितना ही स्पष्ट होगा उसका भाव भी उतना ही प्रखर होगा। मैथुनरत क्रौंच वध का दृश्य वाल्मीकि को इस प्रकार मर्माहत किया कि उनकी आंखों से करूणा की धारा प्रवाहित हो चली । क्रौंच वध के बिम्ब के कारण ही

उनके हृदय में शोक स्थायी भाव का जागरण हुआ जो कालजयी ग्रंथ 'रामायण' की रचना का कारण बना।

भावबिम्बों की विवेचना में रसांगों की ही भूमिका होती है। जिन्हें स्थायीभाव, विभाव, संचारीभाव व अनुभाव के नाम से जाना जाता है। विभाव, स्थायीभाव की उत्पत्ति के कारण होते हैं। स्थायी भाव के अंतर्गत, रति, हृास, शोक, क्रोध, भय, उत्साह, जुगुप्सा, वात्सल्य, भक्ति, निर्वेद तथा आश्चर्य भाव आते हैं। ऋषभायण में हृास, जन्य भाव बिम्बों का अभाव है। रति जुगुप्सा विषयक बिम्बों के एकाध उदाहरण ही मिलते हैं। शेष स्थायी भावों के बिम्बों की बहुलता है, जिसमें भी भक्ति और निर्वेद परक बिम्बों के उद्घाटन में कवि ने अधिक तत्परता दिखाई हैं। निर्वेद का सम्बन्ध तत्व दर्शन एवं संसार की असारता से है इसीलिए ऐसे भाव बिम्ब के उद्घाटन में सूक्ष्मता भी आई है। संचारी भावों के अंतर्गत मोह, स्पृहा, हर्ष, प्रमाद, शंका, ईर्ष्या, मद, श्रम आदि भाव बिम्बों के अतिरिक्त लोभ, जड़ता, उत्सुकता, चिंता, स्वप्न आदि भाव बिम्बों का भी विस्तार ऋषभायण में दिखाई देता है, किन्तु रति, जुगुप्सा, प्रमाद भाव बिम्बों की स्थापना में कवि का मन नहीं रमा है, जो सन्त स्वभाव के अनुकुल ही जान पड़ता है। अनुभाव परक बिम्बों को स्थायी तथा संचारी भावों के अन्तर्गत देखा जा सकता है जिसमें मानवीय क्रियाओं अथवा चेष्टाओं के द्वारा उसका बिम्बांकन हुआ है। विवेचित भाव बिम्बों के आधार पर स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि ऋषभायण में बिम्ब स्थापना की दृष्टि से आचार्य महाप्रज्ञ को पूर्णरूपेण सफलता मिली है । इति चतुर्थ अध्यायः

——00——

सन्दर्भ-सूची

1. आ. विश्नाथ प्रसाद मिश्र, काव्यांग कौमुदी, पृ. 42
2. आ. विश्नाथ प्रसाद मिश्र, काव्यांग कौमुदी, पृ. 41
3. आ. विश्नाथ प्रसाद मिश्र, काव्यांग कौमुदी, पृ. 49
4. आ. विश्नाथ प्रसाद मिश्र, काव्यांग कौमुदी, पृ. 52
5. आ. विश्नाथ प्रसाद मिश्र, काव्यांग कौमुदी
6. आ. विश्नाथ प्रसाद मिश्र, काव्यांग कौमुदी, पृ. 45
7. संकलनकर्त्ता–विश्वेश्वर नारायण श्रीवास्तव, पृ. 1378
   हिन्दी राष्ट्र भाषा कोश
8. आ. विश्नाथ प्रसाद मिश्र, काव्यांग कौमुदी, पृ. 57
9. आ. विश्नाथ प्रसाद मिश्र, काव्यांग कौमुदी, पृ. 49
10. ऋषभायण पृ. 32–33
11. वही, पृ. 51
12. वही, पृ. 125

––00––

अध्याय-पंचम

ऋषभायण में मूर्त्तामूर्त्त बिम्ब

बिम्ब के द्वारा भाषा में चित्रात्मकता आती है। बिम्ब की मूल प्रकृति संमूर्त्तन की प्रक्रिया में निहित रहती है। इसीलिए अमूर्त भावों या पदार्थों को मूर्त्तता प्रदान करना बिम्ब का प्रमुख कार्य है। सादृश्य मूलक अलंकारों या अन्य स्थलों पर जहाँ मूर्त्त से अमूर्त्त, अमूर्त्त से मूर्त्त की अभिव्यक्ति की जाती है वहाँ श्रेष्ठ एवं सुन्दर बिम्ब निर्मित होते हैं। ऋषभायण में मूर्तामूर्त्त बिम्बों का उद्‌घाटन कवि ने सफलता पूर्वक किया है। वर्ण्य को ऐन्द्रिय बनाने के लिए कवि द्वारा प्रयुक्त उपमानों के आधार पर बिम्बों को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है –

1. मूर्त्त के द्वारा अमूर्त्त की उपस्थापना,
2. अमूर्त्त के द्वारा मूर्त्त की अभिव्यक्ति।

1. मूर्त्त के द्वारा अमूर्त्त की उपस्थापना –

ऋषभायण में अमूर्त्त की अभिव्यक्ति के लिए अनेक मूर्त्त रूप प्रस्तुत किए गए हैं। सूक्ष्म से सूक्ष्म अथवा अमूर्त्त से अमूर्त्त भावों व स्थितियों को कवि ने सफलता पूर्वक गोचर बनाया है जिसके तमाम उदाहरण आसानी से देखे जा सकते हैं। सृष्टि का शनैः शनैः विकास प्रकृति की एक अमूर्त्त प्रक्रिया है, जिसमें परिवर्तन समाहित है। यह समूची सृष्टि वर्तमान, भूत और भविष्य जैसे त्रिकालों में विभक्त है। इनकी भी एक निश्चित सीमा है, जिसमें समय–समय पर परिवर्तन होता रहता है। परिवर्तन की इस अमूर्त्त दशा को दुग्ध से निर्मित होने वाले 'घृत' से दर्शाया गया है। 'दुग्ध' के द्वारा घृत के निर्माण से कवि ने 'भूत' और 'वर्तमान' को गोचरता प्रदान की है –

सत्ता कालातीत न उसकी, सीमा में है भूत भविष्य ।
कालभेद परिवर्तन में है, जो कल था पय, आज हविष्य ।। ऋ.पृ. 3

उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल परिवर्तन की सतत् गतिमयता को 'चक्र' तथा निरन्तर प्रवहमान जल की धारा से मूर्त्तित किया गया है –

परिवर्तन का हेतु काल, वह, जलप्रवाह ज्यों बहता है।
द्वादशार यह कालचक्र, गतिशील निरंतर रहता है। ऋ.पृ. 6

जीवन सुख दुःख का संगम है। दुःख कष्टकारी है तो सुख मनोहारी। किन्तु यदि व्यक्ति के जीवन में कष्ट ही कष्ट हो, सुख का अनुभव लेशमात्र भी न हो तो वह जीवन दूभर हो जाता है, इसलिए थोड़ा सुख, थोड़ा दुःख, थोड़ा कष्ट, थोड़ा आराम का होना आवश्यक है तभी जीवन का संघर्ष सफलीभूत होता है। तभी जीवन पकता है। मिट्टी का बना हुआ घड़ा बिना अग्नितप के पक नहीं सकता, वैसे ही कष्टहीन जीवन संपूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता। यहां अग्नितप के अभाव में मृद जनित घट के न पकने की स्थिति से जीवन में कष्ट की उपादेयता को चित्रित किया गया है –

कष्ट केवल कष्ट ही हो, मनुज जी सकता नहीं,
अग्नितप–अभाव में, मृद जनित घट पकता नहीं। ऋ.पृ. 15

संवेग अथवा मनोवेगों के उद्घाटन में कवि ने अमूर्त्त के लिए मूर्त्त की योजना के साथ अमूर्त्त का चित्रण अमूर्त्त रूप में भी किया है –

मत्त मद से बन द्विरद ने, व्यर्थ अंकुश को किया है,
युगल के संवेग ने गति, वेग आशुग से लिया है। ऋ.पृ. 25

यहाँ युगलों की अनुशासनहीनता, अतिक्रमणता की अमूर्त्तता का उद्घाटन मदमस्त उस मतवाले हाथी से किया गया है जो अंकुश के नियंत्रण को भी अस्वीकार कर देता है, दूसरी ओर युगलों के संवेगों की गति का चित्रण वेगवान आशुग (पवन) से किया गया है जो स्पर्श जन्य होते हुए भी अगोचर है। आशा अमूर्त भाव को पावन दीप से भी बिम्बित किया गया है। माँ मरूदेवा द्वारा देखे गए स्वप्नों का वर्णन सुनकर नाभिराज यह सोचकर प्रसन्न हो जाते हैं, जैसे युग को प्रकाशित करने वाला आशादीप उनके हाथ लग गया हो –

लगता है कुछ अभिनव होगा, जो न हुआ अब तक जग में,
पावन दीप लिए आशा का, रक्त प्रवाहित रग–रग में। ऋ.पृ. 34

बल, स्फूर्ति, उत्साह और यौवन अमूर्त्त है, जिसका चित्रण प्रत्यक्षतः ऋषभ के पुष्टगात्र, कोमलतम कच तथा विहँसते हुए कमलवत नेत्रों से किया गया है। ऋषभ का व्यक्तित्व ऐसा प्रतीत होता है, जैसे उनमें प्रत्यक्षतः स्फूर्ति मूर्त्तमान हो गयी हो तथा उत्साह भी मुखरित हो गया हो। यहाँ ऋषभ के यौवन का बहुत ही सुन्दर बिम्ब निरूपित किया गया है –

वलिवर्जित वपु, श्यामलतम कच, लोचन–कुवलय विहंस रहे,
स्फूर्ति मूर्त्त, उत्साह मुखरतर, लक्षित यौवन, बिना कहे। ऋ.पृ. 39

जन्म और मृत्यु की अमूर्त्त दशा के लिए सिन्धु में उठती मिटती लहर तथा 'जलती' 'बुझती' बाती के मूर्त्त स्वरूप से व्यक्त किया गया है –

लहर सिंधु में उठती–मिटती, फिर उठती फिर मिट जाती।
जन्म–मृत्यु की यही कहानी, जलती–बुझती है बाती।। ऋ.पृ. 42

चिंता के अमूर्त्त रूप को ललाट पर उभरी हुई रेखाओं से दर्शाया गया है। युगलों की आवास व्यवस्था की समस्या से चिन्तित ऋषभ के मस्तक पर पड़े हुए बल से सौ धर्म लोक का अधिपति उनके चिंतन और चिंता का कारण समझ आवास समस्या को सुलझाने की बात करता है –

है प्रभु–ललाट पर अंकित चिन्तन रेखा
चिंतन में चिंता को इठलाते देखा
आवास समस्या को क्षण में सुलझाऊँ
नगरी की रचना पर कृतार्थ बन जाऊँ । ऋ.पृ. 55

जन शोषण में लिप्त निरंकुश शासक की स्वेच्छाचारिता को वृक्षों का शोषण करने वाली 'अमरबेल' के मूर्त्तमान दृश्य से व्यक्त किया गया है। भरत को राजनीति का संबोध देते हुए ऋषभ कहते हैं –

जनता के कंधे पर चढ़कर, चलने का अधिकार न हो।
सहजीवन में अमरबेल बन, फलने का अधिकार न हो।। ऋ.पृ. 89

'समता' अमूर्त्त भाव का बिम्बाकंन समान रूप से प्रकाश का वितरण करने वाले 'सूर्य' और 'चन्द्रमा' के मूर्त्त रूप से उद्‌घाटित किया गया है। ऋषभ राज्य में ऊंच–नीच का कोई भेदभाव नहीं था, सबका समान रूप से सम्मान होता था। इस प्रकार राजनीति के सन्दर्भ में ऊंच–नीच भेदभाव से परे समानता के व्यवहार से संचालित राज्य व्यवस्था निरंतर समान रूप से प्राणीजगत को प्रकाश प्रदान करने वाले सूर्य और चंद्रमा के समान होना चाहिए –

ऊंच नीच का भेद नहीं है, सब नर एक समान ।
भेद व्यवस्थाकृत है केवल, सबका सम सम्मान।
सूरज में है जो सौदर्य, चंद्रमा है उतना ही वर्य ।। ऋ.पृ.91

सत्य, संयम की अमूर्त्तता को भी कवि ने सुवासित कुसुम से मूर्त्तता प्रदान की है –

अधखिली कली में विकस्वर, कुसुम का आकार है।
सत्य संयम की सुरभि का, बन रहा प्रकार । ऋ.पृ. 93

त्याग पथ पर ऋषभ के साथ चलने के लिए आतुर जनप्रतिनिधि द्वारा 'संयम' अमूर्त्त भाव को 'कल्पतरू' से बिम्बित किया गया है –

छोड़ भोगावास हम भी, त्याग के पथ पर चलें,
सुखद संयम कल्पतरू की, छांह में फूलें फलें। ऋ.पृ. 98

निर्गुण साधना की अमूर्त्तवस्था का उद्‌घाटन कवि ने महासागर में निमग्न 'मीन' से किया है। निर्गुण आत्मानन्द में प्रतिक्षण ऋषभ वैसे ही लीन हो जाते हैं, जैसे महासागर की विपुल जल राशि में मछली निमग्न हो जाती है –

निर्गुण आत्मानन्द में, हुए प्रतिक्षण लीन।
जैसे सलिल–निमग्न हो, महासिन्धु का मीन। ऋ.पृ. 108

मंत्रपाठ द्वारा सिद्धि लाभ में रत साधक की क्रियात्मक अमूर्त्त दशा का उद्‌घाटन तिनके को चुनचुन कर नीड़ निर्माण में रत 'शकुनिपक्षी' के बिम्ब से नियोजित किया गया है –

नीड़ का निर्माण करने, शकुनि तृण को चुन रहा
मंत्रपाठी सिद्धि पाने, मंत्र जैसे गुन रहा। ऋ.पृ. 130

आकांक्षा अमूर्त्तभाव है जिसे चीवर के रूप में मूर्त्तता प्रदान की गयी है। वहीं दूसरी ओर 'आकांक्षा' के मुखौटे को आकाश के समान विस्तृत बताकर उसे और भी जटिल बना दिया गया है, क्योंकि खाली आकाश शून्यवत है, अमूर्त्त है। इस प्रकार निम्न उदाहरण में जहाँ 'आकांक्षा' की अभिव्यक्ति 'चीवर' से कर उसे मूर्त्तमान किया गया है, वहीं दूसरी ओर आकाश से भी उपमित किया गया है जो स्वयं में अमूर्त है –

है विश्व विजय का मीठा–मीठा सपना, आकांक्षा का चीवर कब होना अपना ?
आवश्यकता का जग है अतिशय छोटा, आकांक्षा का आकाश–समान मुखौटा

ऋ.पृ. 179

मन की उलझन एवं संचेतना अमूर्त्त के लिए क्रमशः सघन तिमिर एवं 'दीप' का बिम्ब नियोजित किया गया है। चक्रवर्ती अभिषेक समारोह में बन्धु–बांधवों की अनुपस्थिति भरत को अति कष्टप्रद प्रतीत होती है। इसीलिए वे अपने भाईयों के पास दूत भेजते हैं। भरत इस बात को जानते है कि जिस प्रकार दीपक की लौ सघन तिमिर को बेपर्दा कर देती है वैसे ही दूत के संदेश से भाईयों के मन की गांठ भी खुल जाएगी –

लगता है बांधव के मन में, उलझ रही है कोई ग्रंथि।
अनुशासित कर दूत वर्ग को, भेजा नृप ने बंधु समीप।
सघन तिमिर का चीरहरण तो, कर सकता है केवल दीप। ऋ.पृ. 192

निर्मल चरित्र की अमूर्त्तता को 'कमल' उपमान से बिम्बायित किया गया है। नियोगी संयम मय जीवन व्यतीत कर रही सुन्दरी से कहता है –

क्षमा करो हे भगिनि देवते ! कमलोपम तव अमल चरित्र। ऋ.पृ. 210

'सागर' और 'नौका' के मूर्त्त दृश्य से क्रमशः 'संसार' एवं 'सहिष्णुता' की अमूर्त्तता को व्यक्त किया गया है। ब्राह्मी और सुन्दरी साधना में भी अहम् के वशीभूत

बाहुबली से कहती हैं – सिद्धिमार्ग में अहंकार बाधक है। इस संसार रूपी सागर का संतरण सहिष्णुता रूपी नौका के सहारे आसानी से किया जा सकता है –

इस अहंभाव ने भाई ! पथ रोका है
इस भवसागर में मार्दव ही नौका है। ऋ.पृ. 294

शुक्ल पक्ष में क्रम–क्रम से अपनी कलाओं में विकास करने वाले 'चन्द्र' के मूर्तमान दृश्य से अनासक्ति की श्रेष्ठ साधना का बिम्ब नियोजित है। 'अनासक्ति' अमूर्त्त भाव के लिए 'जलज' का भी श्रेष्ठ उदाहरण दिया गया है –

अनासक्ति की प्रवर साधना, बढ़े शुक्ल का जैसे चंद्र
जल से ऊपर जलज निरंतर, रवि रहता नभ में निस्तंद्र। ऋ.पृ.298

मुनिमार्ग पर ऋषभ के साथ प्रस्थान किये शिष्यों की अमूर्त्त भावनाओं का मूर्त्त स्वरूप भी प्रस्तुत किया गया है, जिसमें शिष्यों के हृदय में ऋषभ के प्रति आदर तो है, किन्तु भूख की पीड़ा से उनका मन आहत भी है। यहाँ सुख, श्रद्धा और मन अमूर्त्त है, जिसे क्रमशः सरिता, जलधर और उडुपथ (आकाश) से चित्रित किया गया है –

सुख सरिता के तीर पर, सकल शिष्य समुदाय ऋ.पृ. 108

X X X X

एक ओर श्रद्धा के जलधर, से मन का उडुपथ आकीर्ण
पक्ष दूसरा भूख वेदना से, आहत मन, अंग विदीर्ण। ऋ.पृ. 113

ऋषभ का जब हस्तिनापुर में पदार्पण होता है, तब जनमानस में भावों का निर्मल झरना प्रवाहित होने लगता है, यहाँ जन मन की भावों की अमूर्त्त दशा का उद्‌घाटन विमल निर्झर से किया गया है –

भावना का विमल निर्झर, जन–मनस में बह चला,
कल्पतरू मनहर अकल्पित, आज प्रांगण में फला। ऋ.पृ. 127

——00——

अमूर्त्त के द्वारा मूर्त्त की अभिव्यक्ति –

ऐसे अमूर्त्त जिनके गुण, रूप, रंग की कल्पना करना कठिन हो है, किन्तु फिर भी उसकी 'अभिव्यक्ति' के लिए हमारे हृदय में उसी के अनुरूप कोई न कोई रेखा जन्म ले लेती है। भाव कितना ही सूक्ष्म व अमूर्त्त हो, उसकी मूर्त्तता कवि तलाश ही लेता है। यदि हम छायावादी काव्य पर दृष्टिपात करें, तुलसीदास के रामचरितमानस तथा सूरदास के सूरसागर को देखें अथवा कालिदास की रचनाओं का अवलोकन करें तो पाएंगे कि ये कवि अमूर्त्त के द्वारा मूर्त्त की अभिव्यक्ति करने में पूर्णतः सफल रहे हैं। ऐसे ही आचार्य महाप्रज्ञ अमूर्त्त के द्वारा मूर्त्त की उपस्थापना में पूर्णतः सफल हुए हैं, जैसे–समय निरंतर गतिशील है। समय की इस अमूर्त्त गतिमयता से रथ को मूर्त्तित कर समय की अमूर्त्तता को गतिमयता प्रदान की गयी है। उत्सर्पिणी काल से अवसर्पिणी में प्रवेश उन्नति से अवनति की ओर जाना है –

बढ़ा समय–रथ जैसे आगे, चला ह्रास का वैसे चक्र। ऋ.पृ. 12

पीड़ा का अपना साम्राज्य होता है। पीड़ा से ही प्रकाश की किरणें फूटती हैं। रति यानी भोग के अज्ञानान्धकार का जन्म होता है तो कोरी बुद्धि से विकृत परलोक की धारणा बनती है। इस प्रकार भोगवाद और बुद्धिवाद से सम्यक् ज्ञान की प्रतिष्ठा सम्भव नहीं है। यहाँ कष्ट, रति और मति अमूर्त्त स्त्रोत साधन के रूप में प्रयुक्त हुए हैं जो क्रमशः 'आलोक, 'तिमिर' और 'विकृत' परलोक को मूर्त्तित करती है –

कष्ट से उद्भूत हैं ये, रश्मियाँ आलोक की
रति तिमिर को जन्म देती, मति विकृत परलोक की। ऋ.पृ. 15

विवशतापूर्वक युगलों द्वारा स्वतंत्रता, त्याग की अमूर्त्त वृत्ति को अंकुश के नियंत्रण को स्वीकार करने वाले 'गज' से मूर्त्तमान किया गया है। युगल कलह, अतिक्रमण से बचने के लिए अपनी स्ववशता का त्याग कर विमल वाहन के नेतृत्व को वैसे ही स्वीकार कर लेते हैं, जैसे 'गज' अपनी स्वतंत्रता का त्याग कर अंकुश के नियंत्रण को स्वीकार कर लेता है –

विवश स्ववशता त्याग गहन–गज, अंकुश को स्वीकार रहा। ऋ.पृ. 19

अमूर्त्त भावों के मूर्त्तन में खाद्यानों का भी उपयोग किया गया है। कालपरिवर्तन के साथ नियमों में भी बदलाव होता है। जन्म के पश्चात् युगलों का विकास इतनी तीव्रता से होता है कि वे छह मास में ही युवा बन जाते है। काल और नियम के परिवर्तन की इस अमूर्त्तता को 'कभी बांजरी' और 'कभी चना' से मूर्त्तित किया गया है –

त्वरित वृद्धि होती युगलों की, मास षट्क में युवा बना,
काल बदलता, नियम बदलते, कभी बाजरी कभी चना। ऋ.पृ. 23

मोद अमूर्त्त हैं। माँ मरूदेवा के दिव्य स्वप्न से दिशाएँ एवं दिग्गज तो प्रमुदित हैं ही। साथ ही यह भोदभाव माँ मरूदेवा के मूर्त्त रूप में छलकता हुआ भी प्रतीत हो रहा है –

मुदित दिशाएँ प्रमुदित दिग्गज, मोद मूर्त्त बन छलक उठा। ऋ.पृ. 33

आशंका एवं आशा अमूर्त्तभाव को क्रमशः 'बादल' और 'सूर्य' की रश्मि से रूपायित किया गया है। प्रकृति का यह शाश्वत नियम है कि जब–जब नवीन परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं तब–तब लोगों के हृदय में आशंका के बादल मंडराने लगते हैं। कुहेलिका से प्रभातकाल के ढक जाने पर भी लोगों में सूर्य के किरणों की दर्शन की आशा बनी रहती है। सुनन्दा, सुमंगला सह ऋषभ के विवाह के सन्दर्भ में जनमानस की आशंका व आशा को बिम्बायित किया गया है –

यह नियम निसर्गज, नव्य परिस्थिति आती
तब–तब आशंका बादल बन मंडराती
है सर्दी का प्राभातिक दृश्य कुहासा
जीवित रहती है सूर्य–रश्मि की आशा। ऋ.पृ. 49

दुःख को 'प्रलय' एवं सुख को 'सृजन' के रूप में भी मूर्त्तमान किया गया है–

दुःख–प्रलय सुख–सृजन के, हेतु मनुज का यत्न। ऋ.पृ. 61

इच्छा अमूर्त्त भाव की उत्पत्ति दूध से निर्मित होने वाले दधि एवं तक्र से

मूर्त्तित किया गया है। इच्छा से इच्छा की उत्पत्ति वैसे ही होती है जैसे दूध से दधि और दधि से तक्र का निर्माण होता है –

इच्छा से इच्छा बढ़ती है, इच्छा का अपना है चक्र।
दूध जन्म देता है दधि को, दधि से फिर बनता है तक। ऋ.पृ. 62

वाङ्मय (साहित्य) के संपूर्ण विकास को वैडूर्य मणि से मूर्त्तित किया गया है। शब्द, लय, अलंकरण के समन्वय से भाषा का निर्माण होता है जो वैडूर्यमणि के समान जन समाज को आलोकित करता है –

वाङ्मय की शिक्षा विकसित हो, शब्द–सिद्धि, लय का माधुर्य।
अलंकरण, यह त्रिपद समन्वित, बनता वाङ्मय का वैडूर्य। ऋ.पृ. 66

ऋषभ भरत को शब्द शास्त्र एवं पुत्रियों को विद्याध्ययन के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार दुग्ध में शक्कर घुल जाती है, वैसे ही छंद शास्त्र का आत्मसातीकरण होना चाहिए। विद्या तो कामदुहा 'धेनु' है, जो सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करती है। यहाँ छन्दशास्त्र के आत्मसातीकरण एवं विद्या अमूर्त्त के लिए क्रमशः दुग्ध में घुली हुई सिता एवं कामधेनु का बिम्ब निरूपित किया गया है –

भरत! शब्द का शास्त्र पढ़ो तुम, शब्द–सिद्धि का द्वार खुले
छन्द शास्त्र हो आत्मसात तब, सिता दूध में सहज घुले ।

X X X X

पढ़ो पुत्रियों कर्मभूमि में, विद्या का होगा सम्मान।
विद्या कामदुहा धेनू है, कल्पवृक्ष का नव प्रस्थान। ऋ.पृ. 66

सुख की सरिता [1] तथा 'लोभ' और 'क्रोध' अमूर्त्त को क्रमशः 'अंकुर' और 'आसुर' से व्यक्त किया गया है –

सुख की सरिता में सारे जन, है आकंठ निमग्न। ऋ.पृ. 79

X X X X

जब–जब लोभाकुंर बढ़ता है, बढ़ता आसुर क्रोध । ऋ.पृ. 82

राजनीति के संदर्भ में शासक एवं शासन के लिए भी अमूर्त्त उपमानों का

उपयोग किया गया है। ऋषभ भरत को संबोध देते हुए कहते हैं यदि शासक इंद्रियों के वशीभूत होता है तो उसका शासन वैसे ही असफल व निरर्थक होता है जैसे अंकविहीन शून्य । यही नहीं क्रूर राजा का शासन वैसा ही होता है जैसे मातृ स्नेह से वंचित पुत्र। सुव्यवस्थित शासन संवेदनशील पुत्र के समान होता है –

अजितेन्द्रिय शासक विफल, अंकहीन ज्यों शून्य।
क्रूर नृपति का शासन–सूत्र, मात् स्नेह से विरहित पुत्र।
शासन सहसंवेदन पूत, शांतिदूत बनता साकूत । ऋ.पृ. 88

सचिव की मंत्रणा से सुचालित शासन तंत्र के लिए मंगलदायी श्रीयंत्र का बिम्ब नियोजित किया गया है –

सचिव सुचालित शासन–तंत्र, जनपद का पावनतम मंत्र।
मिल जाता मंगल श्रीयंत्र, सदा सुरक्षित और स्वतंत्र। ऋ.पृ. 89

जनप्रतिनिधि द्वारा विधाता, धाता और ओंकार अमूर्त्त से ऋषभ को संबोधित किया गया है –

तुम विधाता और धाता, सृष्टि के ओंकार हो।
और सामाजिक व्यवस्था, के तुम्हीं आधार हो। ऋ.पृ. 98

हस्तिनापुर में ऋषभ को देखकर जन–मन अपने जीवन को धन्य समझ रहे हैं, उन्हें लगता है कि सभी चिंताओं का शमन करने के लिए चिंतामणि के रूप में स्वयं ऋषभ देव प्रकट हो गए हैं।

धन्य हैं हम रत्न, चिंतामणि अहो प्रत्यक्ष है। ऋ.पृ. 127

स्वप्न के आधार पर श्रेयांस की स्मृति के लिए भी अमूर्त्त बिम्ब नियोजित है। श्रेयांस जब आहार के लिए चक्रमण कर रहे ऋषभ को देखते हैं, तब उन्हें अपने पूर्व जन्म की स्मृति हो जाती है। पूर्व जन्म की इस अमूर्त स्थिति को शरदकालीन नीरज से उद्‌घाटित किया गया है –

स्मृति उतर आई अमित, आलोकमय दिग्गज हुआ।
जन्म का संज्ञान पाकर, शरद का नीरज हुआ । ऋ.पृ. 129

आह्लाद का संबंध चित्त से है, और आकाश का संबंध बादल से। माँ मरूदेवा से आशीर्वाद प्राप्त कर भरत जब अपने प्रासाद में आते हैं तब उनके चिदाकाश में आह्लाद के बादल उमड़ने–घुमड़ने लगते हैं। यहाँ चित्त एवं आह्लाद अमूर्त्त की अभिव्यक्ति आकाश एवं बादल से की गयी है –

पा आशीष महामाता से, आया नृप अपने प्रासाद
उमड़ रहा है चिदाकाश में, महा मुदिर बनकर आह्लाद । ऋ.पृ. 149

जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म के लिए भी कवि ने बिम्ब सृजित किए हैं। जिस प्रकार से महासिंधु की अगाध जल राशि में तरंगें सहज रूप में उठती गिरती रहती हैं, वैसे ही पुनर्जन्म रूपी नियति चक्र में आत्मा का प्राकाट्य विविध रूपों में होता रहता है –

महासिंधु की सलिल राशि में, उठती–गिरती सहज तरंग।
पुनर्जन्म के नियति चक्र में, आत्मा के नानाविध रंग।। ऋ.पृ. 159

सूक्ष्म से सूक्ष्म मानवीय अमूर्त वृत्तियों की अभिव्यक्ति के लिए भी कवि ने पारम्परिक रूप से उसी अनुरूप मूर्त्त का निर्माण कर भावों को स्पष्ट किया है। नवविधियों को वरदान स्वरूप प्राप्त कर भरत फूले नहीं समाते जिससे उनके भाव रूपी सागर में आनंद की उत्ताल तरंगें उठने लगती हैं क्योंकि नवनिधियों के प्रभाव से राष्ट्र के विकास के साथ ही साथ जन–जन के सौभाग्य सितारे भी चमकने लगेंगे –

आनंद उर्मि उत्ताल भाव–सागर में, किसने देखा है सागर को गागर में।
द्रुतगति से होगा विकसित राष्ट्र हमारा, चमकेगा मानव का सौभाग्य सितारा।
ऋ.पृ. 184

अन्य राज्यों पर विजय प्राप्त कर भरत अयोध्या की ओर प्रस्थान करते हैं। वे महसूस करते हैं कि दिशा रूपी वधू के कमलवत् मुखमण्डल पर मुस्कान की जो रेखा दिखाई दे रही है वह मनोहारी है। यही नहीं ऐसा लगता है, जैसे हर्ष की उत्ताल तरंगे भरत के रूप में अयोध्या के लिए प्रस्थान कर रही हों –

दिग्वधू के मुख कमल पर, नयनहर मुस्कान है।
हर्ष की उत्ताल ऊर्मि, का नया प्रस्थान है। ऋ.पृ. 218

——00——

सन्दर्भ–सूची

1. ऋषभायण – सुख की सरिता में सारे जन, है आकण्ठ निमग्न, पृ.–79

––00––

सन्दर्भ–सूची

1. ऋषभायण – सुख की सरिता में सारे जन, है आकण्ठ निमग्न, पृ.–79

––00––

अध्याय-षष्ठम्

अभिव्यक्ति विषयक बिम्बों का चित्रण

कवि अपनी अनुभूति की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति के लिए विविध उपादानों का आश्रय लेता है। मुहावरे, लोकोक्ति, प्रतीक, शब्दशक्ति, मानवीकरण आदि उपकरण जहाँ कथ्य को प्रभावशाली बनाते हैं, वहीं कवि के कलात्मक उत्कर्ष तथा शिल्पगत वैशिष्ट्य की उद्घोषणा भी करते हैं। काव्य शिल्प के क्षेत्र में कवि किस सीमा तक अभिव्यक्ति पद्धतियों का अनुसरण करता है तथा किस सीमा तक नवीनता का समाहार करता है, इसका पूर्ण परिज्ञान अभिव्यक्ति के आधार पर वर्गीकृत उसके काव्य–बिम्बों के माध्यम से होता है। ऋषभायण में आचार्य महाप्रज्ञ ने जिन अभिव्यक्ति के साधनों का प्रयोग बिम्ब निर्माण में किया है, वे निम्नलिखित है –

1. अभिधा
2. लक्षणा
3. व्यंजना
4. मुहावरे
5. लोकोक्ति
6. प्रतीक
7. मानवीकरण
8. पौराणिक प्रसंग
9. महापुरूष चरित्र विषयक बिम्ब

1. अभिधा – अभिधा शब्द शक्ति के माध्यम से सशक्त बिम्बों के सृजन में आचार्य महाप्रज्ञ को खूब सफलता मिली है। यौगलिक जीवन की प्रारंभिक अवस्था, ऋषभ सुमंगला नामकरण, ऋषभ विवाह, राज्य व्यवस्था, समाज रचना का उपक्रम, शिल्प और कर्म का विकास, परिवार संस्था का संजीवन, पात्रों के संवाद, कच्छ महाकच्छ द्वारा प्रभु से प्रार्थना, आहार के लिए चक्रमण, नमि विनमि का वार्तालाप,

माँ मरूदेवा की ऋषभ के प्रति चिंता, युद्ध वर्णन आदि प्रसंगों में अभिधा शक्ति के द्वारा कवि ने आकर्षक बिम्बों की रचना की है। अभिधामूलक शैली के उपयोग से कथा में गति आती है, घटना और दृश्य स्पष्ट होते जाते हैं, जिस प्रकार गहन अंधकार में क्षण भर के लिए ही सही, प्रकाश की एक किरण सम्बन्धित परिवेश की एक–एक वस्तु को स्पष्ट कर देती है, वैसे ही अभिधा शक्ति काव्यारण्य में एक–एक घटना अथवा दृश्य का विवरण प्रस्तुत कर मुख्यार्थ को बिम्बित करती है। भवन, गाँव, नगर की आवश्यकता से परे युगलों का वनवासी जीवन मानवीय विकारों एवं दुर्बलताओं से सर्वथा मुक्त था, जीवन को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए उनकी आवश्यकताएँ भी सीमित थीं जिसकी पूर्ति कल्पवृक्षों से सहजता से हो जाती थी। सब स्वस्थ थे। स्वतंत्र जीवन था। स्वर्ण, रजत, मणिमुक्ता का अक्षय भंडार प्रकृति में भरा पड़ा था किंतु उसका कोई उपयोग नहीं था। निम्नलिखित पंक्तियाँ यौगलिक जीवन का दृश्य उपस्थित कर अभिधामूलक बिम्ब का सृजन करती हैं –

नहीं गाँव है, नहीं नगर है, करते हैं सब जब वनवास
नहीं भवन है, नहीं रसवती, सहज सिद्ध जैसे सन्यास । ऋ. पृ. 6

X X X

नहीं अर्थ है, नहीं दंड है, नहीं अपेक्षित है व्यापार
सीमित आवश्यकता, सीमित, इच्छा, सीमित–सा संसार।
जीवन की आवश्यकताएँ, कल्पवृक्ष से होती पूर्ण
नहीं रोग है, नहीं चिकित्सा, नहीं प्राप्त त्रिफला का चूर्ण।
इच्छाधारी है स्वतंत्र परतंत्र, बनाता ग्राम–निवास
स्वर्ण, रजत, मणि, मुक्ता सब हैं, किन्तु नहीं परिभोग विकास। ऋ.पृ. 7

सम्बन्धों में जीते हुए उसकी अनुरक्ति से परे यौगलिक जीवन के साथ पशुओं एवं इतर प्राणियों की स्थिति तथा स्वभाव का चित्रण भी अभिधामूलक है –

माता और पिता, भाई–भगिनी, का समुचित है संबंध
किन्तु सहज जीवन है सबका, नहीं तीव्र है प्रेम संबंध।

X X X

नाटक, लासक, नृत्य अजन्मा, मानस तृप्त कुतूहल मुक्त
हाथी, बकरी, गाय लब्ध पर, नर पशु हैं संबंध वियुक्त
सिंह बाघ पर हिंस्त्र नहीं है, आकृति सौम्य, प्रकृति से शांत
मच्छर, खटमल डांस नहीं है, निरूपद्रव वसुधातल कांत। ऋ.पृ. 8

युगलों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाले सभी कल्पवृक्षों–चित्र, अनग्न, भृँग, गेहाकार, ज्योतिष–अंग, मणि–अंग, दीपांग, त्रुटितांग, चित्रांग, मदांग[1] के कार्य का चित्रण भी अभिधा शैली में किया गया है।

शिशु जन्म के पश्चात् नामकरण (ऋषभ सुमंगला) के अवसर का दृश्य एवं उस परिवेश का उद्घाटन भी अभिधा की सहज भावभूमि पर हुआ है –

नामकरण के क्षण में मरूदेवा, का सक्षम तर्क रहा
ऋषभ स्वप्न ऋषभांकित वक्षस्, ऋषभ नाम अवितर्क रहा
साधु–साधु एक स्वर में कह, युगल सभी उल्लसित हुए
ऋषभ नाम का संबोधन पा, किसलय तक उच्छवसित हुए।
कन्या की अभिधा सुमंगला, मंगलमय उज्जवल वेला ।।
कुलकरवर श्रीनाभिराज के, घर में आज लगा मेला । ऋ.पृ. 36

ऋषभ विवाह का दृश्य भी अभिधामूलक है। विधि विधान से परे, बनावट से दूर मात्र पाणिग्रहण की स्वीकारोक्ति से दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करने की सहजवृत्ति का बिम्ब भी दर्शनीय है –

मंडप की रचना नहीं, न च वेदी का नाम
नहीं साक्ष्य है अग्नि का, सब कुछ अभी अनाम ।
मंत्रोच्चारक है नहीं, रचा गया ना मंत्र
केवल पाणिग्रहण ही, है विवाह का तंत्र।
लिखा गया समुदाय का, एक नया अध्याय।
युग–युग की इति पर हुआ, स्थापित नव आम्नाय।
मन से मन का मिलन ही, है वास्तविक विवाह
सामाजिक अब बन रहा, जीवन एक प्रवाह । ऋ.पृ. 50

नाटक, लासक, नृत्य अजन्मा, मानस तृप्त कुतूहल मुक्त
हाथी, बकरी, गाय लब्ध पर, नर पशु हैं संबंध वियुक्त
सिंह बाघ पर हिंस्त्र नहीं है, आकृति सौम्य, प्रकृति से शांत
मच्छर, खटमल डांस नहीं है, निरूपद्रव वसुधातल कांत। ऋ.पृ. 8

युगलों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाले सभी कल्पवृक्षों–चित्र, अनग्न, भृँग, गेहाकार, ज्योतिष–अंग, मणि–अंग, दीपांग, त्रुटितांग, चित्रांग, मदांग[1] के कार्य का चित्रण भी अभिधा शैली में किया गया है।

शिशु जन्म के पश्चात् नामकरण (ऋषभ सुमंगला) के अवसर का दृश्य एवं उस परिवेश का उद्‌घाटन भी अभिधा की सहज भावभूमि पर हुआ है –

नामकरण के क्षण में मरूदेवा, का सक्षम तर्क रहा
ऋषभ स्वप्न ऋषभांकित वक्षस्, ऋषभ नाम अवितर्क रहा
साधु–साधु एक स्वर में कह, युगल सभी उल्लसित हुए
ऋषभ नाम का संबोधन पा, किसलय तक उच्छवसित हुए।
कन्या की अभिधा सुमंगला, मंगलमय उज्जवल वेला ।।
कुलकरवर श्रीनाभिराज के, घर में आज लगा मेला । ऋ.पृ. 36

ऋषभ विवाह का दृश्य भी अभिधामूलक है। विधि विधान से परे, बनावट से दूर मात्र पाणिग्रहण की स्वीकारोक्ति से दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करने की सहजवृत्ति का बिम्ब भी दर्शनीय है –

मंडप की रचना नहीं, न च वेदी का नाम
नहीं साक्ष्य है अग्नि का, सब कुछ अभी अनाम ।
मंत्रोच्चारक है नहीं, रचा गया ना मंत्र
केवल पाणिग्रहण ही, है विवाह का तंत्र।
लिखा गया समुदाय का, एक नया अध्याय।
युग–युग की इति पर हुआ, स्थापित नव आम्नाय।
मन से मन का मिलन ही, है वास्तविक विवाह
सामाजिक अब बन रहा, जीवन एक प्रवाह । ऋ.पृ. 50

सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक कुम्भकार, लोहकार, स्थपित, तंतुवाय, क्षौर कर्म श्रेणी के प्रवर्तन तथा उसके उत्पाद्य का बिम्बांकन भी अभिधा के सहारे किया गया है –

कुंभकार की श्रेणी ने, आहार–प्रेय के पात्र दिए
लोहकार की श्रेणी ने, अयजात कुंदाली–दात्र दिए
और स्थपति की श्रेणी ने, गृह–रचना का संकल्प लिया
भोगभूमि को कर्मभूमि का, नव निर्मित परिधान दिया
तंतुवाय की श्रेणी ने, आच्छादनकारी वस्त्र दिए
क्षौर कर्म की श्रेणी ने, नख–कन्तुल के संस्कार किए । ऋ.पृ. 63

पारिवारिक, सामाजिक जीवन में प्रवेश करने के पश्चात् सम्बन्धों के मोहबन्धों का बिम्ब भी अभिधा के द्वारा प्रस्तुत किया गया है –

मम माता, मम पिता सहोदर, मेरी पत्नी, मेरा पुत्र
मेरा घर है, मेरा धन है, सघन हुआ ममता का सूत्र ।
ममता ने परिवार, नाम की, संस्था को आकार दिया
ममता ही परिवार, उसी ने, क्रूर वृत्ति का विलय किया। ऋ.पृ. 68

ऋषभ द्वारा राज्य त्याग के अवसर पर जन समाज की भावुकता, विह्वलता का सहज एवं प्रभावशाली चित्रण अभिधा के कारण ही हो सका है –

चिर सुचिर परिचित विनीता, अपरिचित अब हो रही
लग रहा था आज जनता, धैर्य अपना खो रही
जा रहे हो नाथ। हमको, छोड़कर अज्ञात में
भेद हम कर पा रहे थे, रात और प्रभात में
चरण सन्निधि प्राप्त कर प्रभु ! प्रात जैसी रात भी
दूर पा प्रभु–चरण–युग को, रात जैसा प्रात भी।
था हमें विश्वास पल–पल, प्रभु हमारे साथ हैं
क्यों हमें चिन्ता अभयदय, सदय सिर पर हाथ है। ऋ.पृ. 103

इस संदर्भ में अट्ठानबे पुत्रों तथा ब्राह्मी, सुंदरी की कामना का बिम्ब भी अभिधा पर ही आधारित है –

याद करेंगे प्रभु को हम सब, कभी–कभी कर लेना याद
आते–जाते पल भर रूककर, कर लेना हमसे संवाद ऋ.पृ. 105
स्वामी ! फिर तुम कब आओगे ? दे दो थोड़ा सा संकेत
इंगित को आधार बनाकर, हम भी प्रतिपल रहें सचेत। ऋ.पृ. 106

भूख प्यास से पीड़ित मुनिगणों की ऋषभ के प्रति निराशा जन्य स्थिति तथा ऋषभ की समाधिस्थ स्थिति के लिए भी अभिधामूलक बिम्ब को माध्यम बनाया गया है –

पहले, शिक्षा देते, पथ बतलाते
अनिमेष दृष्टि से, वत्सलता बरसाते।
अब मौन, नयन है, अर्धनिमीलित भाई !
क्या पूछें ? किससे पूछें ? यह कठिनाई
हम चले सभी तन–मन, की स्थिति बतलाएँ
संभव संवेदन की, गांठें खुल जायें
हां, साधु–साधु कह, सबने चरण बढ़ाए
प्रभु के सम्मुख आ, हार्दिक भाव सुनाए ऋ.पृ. 111
चरण चलने को चपल है, जीभ खाने के लिए
मन चपल है सोचने के देव ! अविचल किसलिए ?
देव ! हम सब अति बुभुक्षित, कंठ में अति प्यास है
आँख खोलें और बोलें, बोलता विश्वास है। ऋ.पृ. 112

आहार के लिए चक्रमण कर रहे ऋषभ के मनोभावों को न समझ स्वागत को आतुर अध्वदर्शी जनता अमूल्य वस्तुओं का समर्पण कर उनके प्रति अपने सम्मान भाव को व्यक्त करना चाहती है –

थाल मुक्ता से भरा, उपहार कोई ला रहा
भक्तिभावित भाव कोई, स्तवन–मंगल गा रहा

स्वर्ण, नाना मणि–निचय की, भेंट का प्रस्ताव है।
पूज्य के सम्मुख समर्पण, मानवीय स्वभाव है। ऋ.पृ. 118

पुत्र ऋषभ के प्रति माँ मरूदेवा की चिन्ता के बिम्बांकन में भी कवि ने अभिधा से काम लिया है। माँ मरूदेवा भरत से कहती है –

आज अकेला, कौन दूसरा, सुख दुःख में उसका साथी ?
पदचारी, पहले रहता था, चढ़ने को प्रस्तुत हाथी।
पदत्राण नहीं चरणों में, पथ में होंगे प्रस्तर खंड
तपती धरती, तपती बालू, होगा रवि का ताप प्रचंड ऋ.पृ.148
भूमी शय्या, वही बिछौना, नींद कहाँ से आएगी ?
रात्रि–जागरण करता होगा, स्मृति विस्मृति बन जाएगी ।
भरत ! तुम्हारा दोष नहीं है, कहाँ ऋषभ ने याद किया ?
एक बार भी लघु–लघुतर सा, क्या कोई संवाद दिया ? ऋ.पृ. 149

योगी रूप में ऋषभ के व्यक्तित्व, एवं उसके प्रभाव से शकटमुख उद्यान की आभा का चित्रण अभिधापरक ही है। पनिहारिन माँ मरूदेवा से आँखों देखी मनोहारी दृश्य का वर्णन करती है –

योगी है अलबेला स्वामिनि ! सिर पर आभामंडल है।
ओजस्वी है, तेजस्वी है, देवाधिप आखंडल है।
शिलापट्ट शोभित सिंहासन, महिमामंडित छत्र महान
माताजी ! आश्चर्य, हो गए, हरे भरे सारे उद्यान।
कण कण में सौरभ फैला है, करता है सबको आह्वान।
जनता कहती, आज आ गया, अलख अयोध्या का भगवान। ऋ.पृ. 152

चक्ररत्न के सहचर रत्न त्रयोदश के क्रियाकलापों के वर्णन में भी अभिधा की इतिवृत्ति सहायक हुयी है। भरत की आज्ञा से दिग्विजय के लिए प्रस्थान करती हुयी सेना दिव्य रत्नों से सज्जित एवं सुरक्षित है। सिन्धु नदी के पार्श्व देश में विजय ध्वज फहराने के लिए उत्सुक सेनापति ने चर्मरत्न के सहयोग से हिमगिरि परिसर वासियों को आत्म समर्पण करने के लिए विवश कर दिया। यहाँ सेनापति की क्रिया तथा चर्मरत्न के कार्य का बिम्बगत वर्णन भी अभिधा की देन है –

उद्घोषित कर निर्देश नृपति का, सेनापति ! तुम जाओ
सिन्धु नदी के पार्श्व देश में, विजय–ध्वज फहराओ

X X X

शिरोधार्य कर आज्ञा नृप की, सिंधु तीर पर आया
लिया हाथ में चर्मरत्न को, सविनय शीष झुकाया ऋ.पृ. 166
सिंधु नदी के आर–पार तक, चर्म बना अब नौका
जल में स्थल के अनुभव का यह, कितना दुर्लभ मौका।
सेनानी के सेना–बल को, सहसा पार उतारा
महाशक्ति के सम्मुख आता, अपने आप किनारा। ऋ.पृ. 167

अभय की उत्सर्पिणी काल में पल रहा बहली देश सुख शांति का जीवन जी रहा है। कृषक, सिद्ध, योगी तथा प्रकृति अपने–अपने कर्म में संलग्न हैं। इन सभी दृश्यों का बिम्ब अभिधा के द्वारा ही ज्ञापित हो पाया है। बहली की सीमा में प्रवेश करते ही भरत के संदेश वाहक सुवेग को चारों ओर रम्यता ही रम्यता दिखाई देती है –

दूत के आगमन से भय, भीत तक्षशिला नही।

अभय की उत्सर्पिणी में, नवल सुषमा ही रही। ऋपृ. 231
शकुनि गण का मंजु कलख, श्वास परिमल का लिया
स्वागतं बहली धरा पर, मृदुल किसलय ने किया।
कृषक निज–निज खेत में, खलिहान में संलग्न हैं
सिद्ध योगी भावनामय, साधना में मग्न हैं।
बाहुबलि की सुयश गाथा, गा रहे हैं भक्ति से
भीतरी अनुरक्ति पावन, उपजती है शक्ति से।
सफल वातावरण श्रद्धा, सिक्त अति सम्मान है
अमल ज्योत्सना पूर्णिमा के, चन्द्र का अवदान है।
वृत से आबद्ध कलि का, फलित पुष्प पराग है।
एकता का सहज अनुभव, प्रेम का अनुभाग है। ऋ.पृ. 230

दूत से बाहुबली के वार्तालाप का बिम्बांकन भी अभिधा के द्वारा किया

गया है। वे सुवेग से एक सामान्य व्यक्ति की भाँति परिवार का हाल–चाल पूछते हुए बचपन में भरत के साथ बिताये हुए दिनों की याद भी करते हैं –

कुशल कौशल देश में है, स्वजन जन–जन कुशल हैं ?
विजय यात्रा से समागत, भरत भाई कुशल हैं ? ऋ.पृ. 233
मुदित है मन आज मेरा, गात्र पुलकित हो रहा
सकल जागृत हो गया जो, स्मृति–पटल पर सो रहा ।
अंक यह पर्यंक जैसा, तात का उपलब्ध था
मैं प्रथम आसीन होता, भरत उससे स्तब्ध था।
भरत जब आसीन होता, श्री पिता की गोद में
दूर कर देता उसे मैं, शिशु सुलभ आमोद में।
मत करो अविनय अवज्ञा, भरत तुम से ज्येष्ठ है।
रोक देते तात मुझको, वचन वैभव श्रेष्ठ है। ऋ.पृ. 234

इस प्रकार अभिधात्मक बिम्ब का प्रकाशन कवि ने सफलता पूर्वक किया है।

––00––

2. लक्षणा

लाक्षणिकता अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण साधन है। जब अभिधेयार्थ से मुख्यार्थ को ग्रहण करने में बाधा उपस्थित होती है, तब लक्षणा शब्द शक्ति से मुख्यार्थ का आस्वादन किया जाता है। आचार्य महाप्रज्ञ की भाषा, लक्षणा व व्यंजना से परिपूर्ण है। लक्षणा का विशिष्ट गुणधर्म ही है चित्रात्मकता। इसीलिए लाक्षणिक शब्दों के प्रयोग से भाषा सामान्य अर्थ से परे वस्तु के गुणधर्म के आधार पर अपना विशिष्ट अर्थ देती है। यों तो सादृश्यमूलक अलंकार, मुहावरे आदि लाक्षणिक अर्थों के सशक्त वाहक हैं, जिसकी चर्चा उक्त शीर्षकों द्वारा बिम्ब निष्पादन में की जा चुकी है। भाषा को धारदार व कथ्य को उर्वर बनाने की दृष्टि से कवि ने कतिपय लाक्षणिक बिम्बों का सफल नियोजन किया है। निम्नलिखित उदाहरण में प्रकृति के

लाक्षणिक बिम्ब का सौदर्य दृष्टव्य है –

रंगभूमि में ये दोनों नट, खेल रहे हैं नाना खेल
इनके पर्यायों से ही है, हरी–भरी जीवन की बेल। ऋ.पृ. 5

उपर्युक्त पंक्तियों में 'दोनों नट' के लक्ष्यार्थ से प्रकृति की चेतन व अचेतन सत्ता तथा जीवन को हरी भरी बेल से बिम्बित किया गया है, जबकि 'चेतन' और 'अचेतन' नट नहीं है, जो खेल खेलें और न ही जीवन कोई बेल है जो हरी भरी हो। पर ऐसी कहने की परम्परा हो गयी है। अतः यहां 'हरी भरी जीवन की बेल' का लक्ष्यार्थ जीवन के समुचित विकास से है।

'खग के पाँव पसार कर' उड़ जाने के लक्ष्यार्थ से शरीर से प्राण निकलने की क्रिया का सशक्त बिम्ब भी उद्घाटित है।

उनपचास दिन तक करता है, लालन–पालन युगल उदार
एक छींक या जंभाई ले, उड़ जाता खग पाँव पसार। ऋ.पृ. 11

जीवन की गतिशीलता को 'पोत' की गतिशीलता से भी लक्षित किया गया है, जबकि जीवन कोई पोत नहीं है जो जल में चले। किन्तु जीवन और पोत में गति करने की साधर्मिकता है, पौरूष उसका सम्बल है। यहाँ गौणी लक्षणा के सहारे यौगलिक जीवन को बिम्बित किया गया है –

अपने पौरूष से चलता है, नवयुवकों का जीवन पोत
अपना दीपक अपनी बाती, स्नेहसिक्त अपना उद्योत। ऋ.पृ. 12

इसी प्रकार समय के निरंतर गतिमान बने रहने की क्रिया का उद्घाटन भी 'रथ' के लाक्षणिक प्रयोग से किया गया है जिससे उत्सर्पिणी काल की उन्नत दशा के पश्चात् अवसर्पिणी काल की अवनति दशा को दर्शाया गया है–

बढ़ा समय रथ जैसे आगे, चला ह्रास का वैसे चक्र
उन्नति अवनति की यात्रा में, कभी सुलभ पय, दुर्लभ तक्र। ऋ.पृ. 12

'सुलभ पय' के लक्ष्यार्थ से सुख सुविधा तथा 'दुर्लभ तक्र' के लक्ष्यार्थ से जीवन की समस्याओं की ओर भी लक्षित किया गया है। संस्कृति का विकास मानव

के द्वारा ही हुआ। समस्याएँ यदि मानव के द्वारा ही निर्मित हुयी तो उसका निदान भी मानव के द्वारा ही किया गया। निम्नलिखित उद्धरण में 'संस्कृति' 'भूमि' और 'उर्वर' का लक्ष्यार्थ क्रमशः 'मनुष्य', 'मस्तिष्क' ओर उसकी 'प्रतिभा' से है। प्रत्येक काल में मानवों के समक्ष यदि समस्याएँ न आयी होती तो क्या उसका मस्तिष्क अभाव की मुक्ति के लिए उर्वर बन पाता ? –

कालकृत संस्कृति समस्या, बीज यदि बोती नहीं
भूमि चिन्तन–मनन की यह, उर्वरा होती नहीं। ऋ.पृ. 14

स्वतंत्र जीवन जीने वाले युगलों के लिए 'पंछी' तथा नियमों से प्रतिबद्ध उनके जीवन को 'पिंजड़ा' लाक्षणिक बिम्ब से व्यक्त किया गया है। मुक्तगगन में पक्षी के समान विचरण करने वाले युगल क्या विधि विधान रूपी पिंजड़े से पलभर भी प्यार कर सकेंगे ? अर्थात् नहीं –

मुक्त पवन में श्वास लिया है, मुक्त गगन में किया विहार।
उस पंछी का कैसे होगा, पल भर भी पिंजड़े से प्यार। ऋ.पृ. 19

'स्वीकारोक्ति' की अभिव्यक्ति के लिए 'ओढ़ा' तथा मन की निर्लिप्तता के लिए 'उत्पल' का लाक्षणिक प्रयोग भी कुलकर यशस्वान् के संदर्भ में दृष्टव्य है –

उत्तरदायित्व यशस्वी ने, ओढ़ा सानंद मनस्वी ने
उत्पल–निर्लेप तपस्वी ने, संकल्प लिए मधु रस भीने। ऋ.पृ. 24

'वस्त्र खण्ड' एवं 'जीर्ण' लक्ष्यार्थ से क्रमशः शरीर और मृत्यु का बिम्ब निरूपित किया गया है। 'निद्रा' लक्ष्यार्थ से भी अभिधेयार्थ से परे मृत्यु के लिए मुख्यार्थ ग्रहणीय है। नर शिशु की मृत्यु पर शोक संतप्त बालिका का भावान्कन लक्षणा के सहारे ही जीवन्त हो सका है –

समझाया तब मंत्र मृत्यु का, अंतःकरण विद्रीर्ण हुआ
अधुना परिहित वस्त्र–खंड यह, हा! अधुना ही जीर्ण हुआ।
भाई निद्रा की मुद्रा में, फिर न कहीं मिल पाएंगे। ऋ.पृ. 41

संपूर्ण कामनाओं की पूर्ति के लिए 'कामधेनु' का लाक्षणिक बिम्ब भी

निरूपित किया गया है। 'विद्या' और 'कामदुहा धेनु' में सादृश्य सम्बन्ध नहीं तात्कर्म्य सम्बन्ध है। जिस प्रकार से कामधेनु से सम्पूर्ण कामनाओ की पूर्ति होती है, वैसे ही विद्या भी संपूर्ण कामनाओं की पूर्ति करती है। विद्या विकास के उद्देदश्य से ऋषभ अपनी पुत्रियों से कहते हैं –

पढ़ो पुत्रियों! कर्मभूमि में, विद्या का होगा सम्मान।
विद्या कामदुहा धेनू है, कल्पवृक्ष का नव प्रस्थान। ऋ.पृ. 66

'रीति नीति' की अभिव्यक्ति के लिए 'पथ' शब्द की योजना की गयी है। वस्तुतः पथ का अर्थ होता है 'रास्ता'। जबकि यहाँ पथ का लक्ष्यार्थ होगा 'नीति', अर्थात् संयम नीति (इन्द्रिय निग्रह) का पालन करते हुए अध्यात्म मार्ग पर चलना। योग मार्ग पर चलने के लिए तत्पर ऋषभदेव भरत से कहते हैं –

लो दायित्व संभालो अपना, सिंहासन आसीन।
मैं संयम–पथ पर चलता हूँ, बन आत्मा में लीन। ऋ.पृ. 83

'अमल कमल' लक्ष्यार्थ से ऋषभ के मन की निर्लिप्तता तथा आत्मा की परिपुष्टता का भी बिम्बांकन किया गया है। 'मधुकर' शब्द लाक्षणिक रूप में स्वतः बाहुबली एवं 'परिमल' ऋषभ के प्रति आकर्षण का वाहक है। जिस प्रकार भ्रमर कमल के सुवास से प्रतिबद्ध होता है वैसे ही बाहुबली का मन रूपी भौंरा भी कमल स्वरूप ऋषभ के सम्बन्धाकर्षण से दूर रहने में असमर्थ है –

यह अमल कमल अब दूर–दूर जाएगा।
मधुकर परिमल से दूर न हो पाएगा। ऋ.पृ. 105

समान गुणधर्म के आधार पर कवि ने लक्षणा परक कई बिम्ब निर्मित किए हैं। जैसा कि निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है –

आ गया परिवार परिवृत, ऋषभ सन्निधि में रूका
चरण सरसिज पुष्परज में, शीर्ष श्रद्धा से झुका । ऋ.पृ. 128

यहाँ 'चरण सरसिज' में गौणी लक्षणा है। सरसिज का प्रधान गुण है–कोमलता, जिसका आरोपण ऋषभ के चरणों पर कर उसे कमल के समान

कोमल कहा गया है। साधारण धर्म के अनुरूप गौणी लक्षणा का उदाहरण उस समय भी देखा जा सकता है जब बाहुबली पिता का दर्शन न कर पाने के कारण व्यथित हो जाते हैं तब सचिव उन्हें समझाते हुए कहता है –

फिर क्यों आनन–कल उदास ? क्यों मुरझाया है विश्वास। ऋ.पृ. 140

यहाँ कमल की कोमलता से बाहुबली के मुख की कोमलता को तथा 'विश्वास के मुरझाने' के लक्ष्यार्थ से विश्वास को 'डगमगाने' का कथन किया गया है।

जीवन के लिए आहार आवश्यक है। योग मार्ग पर चलने वाले राही के लिए अत्यधिक भोजन वर्जित है। अल्प आहारी ही इस मार्ग पर चल सकता है। यहाँ 'अल्प आहार' को गोचर्या एवं अत्यधिक आहार को 'गर्दभ चर्या' से लक्षित किया गया है–

गाय नहीं उन्मूलन करती, तृण का कर लेती आहार
अल्प ग्रहण गोचर्या, गर्दभ–चर्चा का वर्जित आचार। ऋ.पृ. 134

मनोविकारों को भी लाक्षणिक सन्दर्भ से जोड़कर उन्हें स्वरूप प्रदान किया गया है –

मानवीय आचार–संहिता, का आधार अहिंसा है,
शांति भंग दु:ख–बीज वपन कर, हंसने वाली हिंसा है। ऋ.पृ. 159

'हिंसा' कोई शरीर धारी नहीं है जो हँसे। 'हिंसा' एक वृत्ति है जो 'हिंसक' में ही समाहित है। इस प्रकार शुद्धा उपादान लक्षणा के सहारे हिंसक व्यक्ति की वृत्ति बिम्बित की गयी है।

'वृक्ष' पर 'वसंत' के प्रभावकारी लक्ष्यार्थ से भरत के मन की प्रसन्नता का भी बिम्बांकन किया गया है। सेनानी के द्वारा युद्ध का वृत्तांत सुनकर भरत का मन वैसे ही प्रफुल्लित हो गया जैसे वसंत के प्रभाव से वृक्ष हरा भरा हो जाता है–

वर्धापन कर सेनानी ने, अविकल वृत्त बताया
भरत नृपति के मानस तरू पर, वर वसंत गहराया। ऋ.पृ. 169

नदियों के जल से परिपूर्ण सागर की अतृप्ति के लक्ष्यार्थ से भरत की वैभव जन्य अतृप्ति का भी बिम्ब सृजित किया गया है। भरत के समर्पण परक संदेश से व्यथित उनके सहोदर सोचते हैं कि –

इतनी नदियों का जल लेकर, नहीं हुआ यह सागर तृप्त
दर्प बढ़ा है पा पराग रस, मधुकर आज हुआ है दृप्त । ऋ.पृ. 193

'बाढ़' के लक्ष्यार्थ से 'भरत की महत्वाकांक्षा को भी चित्रित किया गया है। अट्ठानबे पुत्र भरत की महत्वाकांक्षा को लक्षित कर पिता ऋषभ से कहते है–

पूर नीर का आया प्रभुवर ! उसको दो नूतन तट–बंध। ऋ.पृ. 196

सोलह कलाओं से परिपूर्ण चन्द्रमा के बिम्ब से नीति–निपुण सचिव की पारदर्शी मंत्रणा को लक्षित करते हुए भरत कहना चाहते हैं कि आकाश में जो गरिमामय स्थान कलाधर का होता है, राज्य में वही स्थान सचिव का होता है –

ऋषभ–सुत के सचिव हो तुम, स्थान गरिमापूर्ण है
देख लो सोलह कला से, चन्द्रमा परिपूर्ण है। ऋ.पृ. 223

बिम्ब निष्पादन में रूढ़ा लक्षणा का प्रयोग भी कवि ने खूब किया है। जैसे,

1. पर अचल हिमालय अपनी बात कहेगा। ऋ.पृ. 181

2. प्रासाद–पंक्ति ने नृपति भरत को देखा। ऋ.पृ. 186

3. घर नहीं वश में विवश वह, पूर्णतः परतंत्र है। ऋ.पृ. 227

इस प्रकार ऋषभायण में लक्षणा शब्द शक्ति के प्रयोग से कवि ने अनेक समर्थ बिम्बों का निर्माण किया है।

––00––

3. व्यंजना

गूढ़ार्थ की अभिव्यक्ति के लिए कविगण व्यंजना शब्द शक्ति का उपोग करते आए हैं। व्यंग्यार्थ इसका मुख्य धर्म है। ऋषभायण वस्तुतः लोक और परलोक का साक्षात् संगम है इसलिए भाषा भी आवश्यकतानुरूप वाच्यार्थ से लक्ष्यार्थ और लक्ष्यार्थ से व्यंग्यार्थ के सांचे में ढलती गयी है। युगलों का प्रारंभिक जीवन शांत, निर्विकार किंतु विद्या, भाषा, पठन–पाठन, काव्य, शब्दकोष आदि के ज्ञान से शून्य था। उनके इस अबोधमय जीवन के दृश्य को दिवस में तिरोहित नक्षत्रों के बिम्ब से व्यंजित किया गया है –

पठन, पाठन, काव्य भाषा, शब्द कोश वितर्कणा
सब तिरोहित है दिवस में, ज्यों नखत की अर्पणा। ऋ.पृ. 10

तालफल के आघात से नरशिशु की मृत्यु के पश्चात् उसके माता–पिता के मन में एक ऐसा भय समा गया, जिसका कोई निदान नहीं। यहाँ 'मन में अनबूझा सा कम्पन' तथा जीवन के ठहरने के व्यंग्यार्थ से मृत्यु की भयावह स्थिति का उद्‌घाटन किया गया है –

दूर स्थित मां और पिता का, अनजाने तन सिहर गया
मन में अनबूझा–सा कंपन, जीवन जैसे ठहर गया। ऋ.पृ. 40

यही नहीं, नर शिशु की अकाल मृत्यु से युगलों में मृत्यु के प्रति भय भाव की व्यंजना 'छुई–मुई' वनस्पति से भी की गयी है –

काल–मृत्यु से परिचित था युग, असमय–मृत्यु कभी न हुई
प्रश्न रहा होगा असमाहित, बनी मनःस्थिति छुई–मुई । ऋ.पृ. 41

पुष्प के खिलने की आतुरता से जीवन विकास को भी व्यंजित किया गया है। जैसा कि भाई की मृत्यु के पश्चात् सुनन्दा अपने पिता से कहती है –

पिता ! कहाँ अब मेरा भाई, मुझे छोड़ क्यों चला गया ?
एक पुष्प खिलने को आतुर, बिना खिले ही चला गया। ऋ.पृ. 41

कल्पवृक्षों के कार्पण्य से युगलों की क्षुधा पीड़ा की अभिव्यंजना मुरझाई

हुई फुलवारी से भी की गई है।

होती स्वतंत्रता अपनी सबको प्यारी,
पर जठर–वेदना से मुरझी फुलवारी। ऋ.पृ. 54

राजा और जनता के परस्पर मधुर सम्बन्धों के आधार को 'सागर' और उसकी एक–एक बूंद के साहचर्य से व्यक्त किया गया है। यदि जन–जन स्वयं से राजा को अभिन्न पाता है, तभी वह राजा कारूणिक राजा के रूप में माना जाता है। यहाँ सागर और बिन्दु की व्यंजना से राजा एवं प्रजा की अभिन्नता दर्शित की गयी है–

छोटी मंडल, छोटी सीमा, नेता में करूणा का सिन्धु
सागर भिन्न नहीं है मुझमें, अनुभव करता है हर बिन्दु । ऋ.पृ. 71

पिता के राज्य त्याग के निश्चय से भरत को राज्य की संपूर्ण सुख सुविधा 'तुषा' के समान प्रतीत होती है। यहाँ पिता की श्रेष्ठता के समकक्ष राज्य वैभव की तुच्छता की व्यंजना 'तुषा' से तथा ऋषभ के व्यक्तित्व एवं करूणा की व्यंजना क्रमशः 'धान्य' और 'बादल' से की गयी है –

शिरोधार्य वाणी प्रभुवर की, किन्तु न मन को मान्य
लगता है यह राज्य तुषोपम, दूर हो रहा धान्य
बरसो–बरसो अब पर्जन्य! हो जाए अन्तस्तल धन्य। ऋ.पृ. 86

उदारवादी शासक का सम्मान जनता हृदय से करती है। ऐसे सहृदय राजा के प्रति जनता के समर्पण भाव की व्यंजना 'खो देता नर होश' उक्ति से की गयी है। 'राजनीति संबोध' के अंतर्गत ऋषभ भरत से कहते हैं –

केवल निग्रहनीति से, बढ़ता जन आक्रोश
सिर्फ अनुग्रह–नीति से, खो देता नर होश ऋ.पृ. 88

ऋषभ के लिए जनप्रतिनिधि द्वारा विधाता, धाता, ओंकार तथा सामाजिक व्यवस्था के आधार का विशेष कथन उनके सर्वशक्तिमान स्वरूप को व्यंजित करता है –

तुम विधाता और धाता, सृष्टि के ओंकार हो।
और सामाजिक व्यवस्था, के तुम्हीं आधार हो।। ऋ.पृ. 98

कच्छ महाकच्छ आदि के द्वारा ऋषभ की उदारता ओर उनकी 'छत्रछाया' की व्यंजना 'सदय सिर पर हाथ है' कथन से भी की गयी है –

था हमें विश्वास पल–पल, प्रभु हमारे साथ हैं
क्यों हमें चिन्ता अभयदय, सदय सिर पर हाथ है। ऋ.पृ. 103

ऋषभ की छत्रछाया में पलने वाले नागरिक नहीं चाहते कि ऋषभ उनका त्यागकर विजन वास करें क्योंकि जो कुछ भी है जन समाज में ही है, जहाँ जन ही नहीं वहाँ मिलेगा क्या ? ऋषभ के विजन वास की उपलब्धि का अनुमान न लगा पाने के कारण ही जनसमूह उसे 'प्याज' की व्यंजना से तिरस्कृत अथवा त्याज्य मानता है –

छत्र–छाया में पले हम, हो रहा क्या आज है ?
क्या मिलेगा विजन में अब, नाथ ! यह तो प्याज है ? ऋ.पृ. 104

संसार के प्रति ऋषभ की विरक्ति भाव की व्यंजना 'अन्तर्गत के दरवाजे हैं सारे बन्द' कथन से की गयी है –

कान खुले हैं, अन्तर्मन के, दरवाजे हैं सारे बन्द ।
स्पंदन की इस चित्रपटी पर, विरल चित्र होता निस्पंद। ऋ.पृ. 106

शरीर का पोषण भोजन से और आत्मा का पोषण ज्ञानानन्द से होता है। ऋषभ के साथ दीक्षित हुए अन्य शिष्यों की समस्या भी भूख, जिसके कारण वे साधना–मग्न ऋषभ के चारों ओर मंडराते रहते थे। कामना पूरी न होने पर वे सब उनसे किनारा कस लिए। यहाँ 'भ्रमरों के गुंजारव मौन' के लक्षणा मूला व्यंजना से ऋषभ के प्रति शिष्यों की क्षुधा–तृप्ति न होने के कारण विरक्ति का भाव व्यक्त हुआ है –

आसपास मंडराने वाले, भ्रमरों का गुंजारव मौन
हो न पराजित भूख–प्यास से, जग में ऐसा मानव कौन ? ऋ.पृ. 113

ईच्छाएँ अनन्त हैं, और जब तक इच्छाएँ शेष हैं तब तक सांसारिकता से

मुक्ति नहीं मिल सकती है। 'चाह' के निःशेष हो जाने पर ही आध्यात्मिक लोक के कपाट खुलते हैं। आत्म साधना में लीन ऋषभ के सन्दर्भ में निम्नलिखित पंक्तियाँ आर्थी व्यंजना का सशक्त उदाहरण हैं –

चाह नहीं है, राह वहीं हैं, सत्य कहीं अस्पष्ट नहीं !
शुद्ध चेतना के अनुभव में, प्रिय–अप्रिय का कष्ट नहीं। ऋ.पृ. 115

नमि विनमि द्वारा राज्य के लिए भरत से याचना न करने के संकल्प में उनके स्वाभिमान की व्यंजना हुयी है। नागराज धरण से नमि–विनमि कहते हैं –

है कौन भरत ! जो दाता, हम अदाता, इस जीवन में तो केवल प्रभु ही त्राता
तुम सुनो, भरत से राज्य नहीं लेना है, यह प्राज्य राज्य तो प्रभु को ही देना है।

ऋ.पृ. 123

इससे यह भी ध्वनि निकल रही है कि भरत को साम्राज्य पिता ने दिया है जिस पर पालित पुत्र होने के नाते उसका भी अधिकार है और उसे वह पिता के द्वारा मिलना ही चाहिए, जिसे हम लेकर ही रहेंगे। यहाँ नमि–विनमि के द्वारा पुत्रवत अधिकार भाव की सफल अभिव्यक्ति हुई है।

'गुफा तमिस्त्रा' में व्याप्त अंधकार की भयावहता की व्यंजना 'रौरव की काया' कथन से की गयी है जिसमें दण्ड रत्न से सुरक्षित होने के बावजूद भी सेनापति प्रवेश करने में कतराने लगता है –

देखा वज्रकपाट तमिस्त्रा, की रौरव–सी काया
पूर्ण भरोसा, दण्ड–रत्न पर, फिर भी मन कतराया। ऋ.पृ. 168

सागर और भ्रमर के लक्षणा मूला व्यंग्यार्थ से भरत की अतृप्ति एवं अहंकारी वृत्ति को स्पष्ट किया गया है। तमाम नदियों का जल अवशोषित करने के पश्चात् भी सागर अतृप्त ही है का व्यंग्यार्थ है, अधिकांशतः नरेशों को विजित करने के बावजूद भी धन–धान्य से परिपूर्ण भरत की तृष्णा बुझी नहीं, बढ़ती ही जा रही है, जिससे वैभव रूपी पराग रस का पान करने वाला यह भौंरा उन्मत्त सा हो गया है–

इतनी नदियों का जल लेकर, नहीं हुआ यह सागर तृप्त

दर्प बढ़ा है पा पराग रस, मधुकर आज हुआ है दृप्त। ऋ.पृ. 193

इस प्रकार ऋषभायण में व्यंजना शब्द शक्ति की सफल अभिव्यक्ति का विस्तार देखा जा सकता है।

——00——

4—5. मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ —

मुहावरे किसी विशेष भाषा में प्रचलित वह पद—बन्ध या कथन—बन्ध है जिसमें भाव वहन तथा मानव जाति के अनुभवों को मूर्त्त स्वरूप प्रदान करने की अद्‌भुत क्षमता होती है, इनके प्रयोग से कथन चुटीला, मर्मस्पर्शी एवं व्यंजक बनता है। वस्तुतः मुहावरे व लोकेक्तियाँ किसी घटना अथवा उपदेशात्मक रूप में हमारे सामने आती हैं। जनसाधारण के बीच इनका जन्म होने के कारण इनका स्वरूप संवेदनात्मक होता है, इसीलिए जनमानस पर इनका अत्यधिक प्रभाव भी पड़ता है। प्रसंगानुकूल प्रयुक्त मुहावरे व लोकोक्तियाँ घटना या मूलकथा का स्मरण दिलाकर वर्णन में चमत्कार व गोचरता पैदा करते हैं। मुहावरे व लोकोक्तियों से बिम्बों का निर्माण उनकी लाक्षणिक क्षमता के कारण होता है, जिससे ही ये बिम्ब विधान के सशक्त साधन माने गये हैं। लोकोक्ति और मुहावरों में बिम्ब क्षमता को देखते हुए डॉ. दास गुप्ता ने लिखा है — 'शब्द समष्टि के भीतर इस चित्र धर्म को साधारणतः नाम मिला है — मुहावरा या लोकोक्ति। भाषा में जो प्रयोग मुहावरों के नाम से परिचित है, उनमें अधिकांश का ही विश्लेषण करने पर हम देख सकेंगे कि उनमें भाषा का यह चित्र धर्म ही है। हम एक प्रयत्न द्वारा दो कार्य सिद्ध नहीं करते, एक ढेले से दो चिड़ियों का शिकार करते हैं। हम अपना कार्य आप नहीं करते 'अपने चर्खे में तेल देते हैं'। ..... महामूर्ख व्यक्ति को हम पुकारते हैं 'काठ का उल्लू'। अपात्र व्यक्ति के निकट निष्फल निवेदन नहीं करते 'अरण्य रोदन' करते हैं। हम मर्म पीड़ा नहीं पहुँचाते 'कलेजा छेद देते हैं।' ..... तिल को ताड़ करना, समुद्र में

पानी बरसाना, दो नावों पर सवार होना, हस्तामलकवत् देखना (प्रत्यक्ष प्रमाण) ... . इन सभी में हैं। चित्र धर्म।'[2] चित्रधर्म के कारण ही ये बिम्ब निर्माण के सशक्त माध्यम माने गए हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ ने भी बहुसंख्यक मुहावरों व लोकोक्तियों का बिम्बात्मक प्रयोग किया है। प्रथम कुलकर विमल वाहन ने युगल समाज को व्यवस्थित करने के लिए दण्डनीति का निर्धारण किया, जिसे सभी युगलों ने सम्मानपूर्वक स्वीकार कर शिरोधार्य किया। युगलों द्वारा आदर पूर्वक स्वीकृत उक्त विधान को 'शीश चढ़ाना' मुहावरा से बिम्बित किया गया है –

कुलकर की कृति को सबने शीष चढ़ाया
अधिकार – भावना इन्द्रजाल की माया। ऋ.पृ. 21

आलस्य दूर करने एवं 'चैतन्य लाभ' के लिए 'अंगड़ाई लेना' तथा 'आनंद' भाव की अभिव्यक्ति के लिए 'रोमांचित होना' मुहावरे का बिम्बात्मक प्रयोग एक साथ किया गया है जिसमें कवि की मुहावरे दानी देखते ही बनती है। दिव्य स्वप्नों से रोमांचित गर्भवती सुमंगला स्वप्न संदेश देने के लिए जब ऋषभ के समक्ष उपस्थित होती हैं, तब उनकी निद्रा टूट चुकी थी और वे जागृति की 'अंगड़ाई' ले रहे थे –

रोमांचित पुलकित सुमंगला तब आयी
जब ऋषभ ले रहे, जागृति की अंगड़ाई । ऋ.पृ. 51

'रोमांचित होना' मुहावरे का बिम्ब सम्मत उपयोग अन्य स्थलों पर भी किया गया है। भिक्षा लाभ के लिए चक्रमण कर रहे ऋषभ का आगमन जब हस्तिनापुर में होता है, तब पितामह का दर्शन करने के लिए पौत्र श्रेयांस का हृदय पुलकित एवं शरीर रोमांचित हो उठता है –

ओ ! पितामह का पदार्पण देह रोमांचित हुआ
सकल अन्तःकरण पुलकित, वचन गर्वांकित हुआ। ऋ.पृ. 128

'मृत्यु' के लिए 'दीपक बुझ जाना' मुहावरे का भी बिम्बात्मक प्रयोग किया गया है। नर शिशु की अकाल मृत्यु पर शिशु कन्या के जीवन में सहसा अंधेरा ही

अंधेरा दिखाई देने लगा, क्योंकि उसके जीवन को प्रकाशित करने वाले उसके सहचर का जीवन दीप असमय में ही बुझ गया था –

कोमल सिर को क्रूर नियति ने, पलभर में निष्प्राण किया
मर्माहत–सी शिशु कन्या का, असमय में बुझ गया दिया। ऋ.पृ. 40

लज्जित होने के अर्थ में 'माथा झुकना' मुहावरे का बिम्ब नियोजित है। युगलों की भोजन, वस्त्र और आवासीय समस्या का कोई समाधान न देखकर परिस्थितियों के समक्ष कुलकर नाभि अपना 'माथा झुका हुआ' पाते हैं –

बहुत अल्प आवास बचे हैं, युगल–कष्ट की गाथा है।
समाधान है दृष्टि–अगोचर, झुका हुआ यह माथा है। ऋ.पृ. 45

किसी भी कार्यारम्भ के लिए 'सूत्रपात होना' तथा कार्य के स्थिरीकरण के लिए 'पैर जमाना' मुहावरे का बिम्बात्मक प्रयोग उस समय देखने को मिलता है, जब नाभि द्वारा स्वीकृति मिल जाने पर ऋषभ सह सुमंगला एवं सुनन्दा वैवाहिक बन्धन में बँधते हैं। तब से ही समाज में बहुपत्नीवाद के 'सूत्रपात से' इस परम्परा ने 'अपना पैर जमा लिया' –

पत्नी द्वय की नव रचना का, सूत्रपात हो जाएगा,
बहुपत्नी का वाद असंशय, अपने पैर जमाएगा। ऋ.पृ. 46

भूख से पीड़ित युगलों की विवशता के लिए 'दिन में तारे दिखाई देना' मुहावरे का बिम्ब प्रस्तुत किया गया है। कल्पवृक्षों के रूठ जाने पर युगलों के समक्ष भोजन–पान की समस्या इतनी जटिल हो गयी कि उसका निदान करने में असमर्थ युगलों को दिन में ही तारे दिखाई देने लगे –

ये रूठ रहे हैं कल्पवृक्ष भी सारे
भूखों को दिन में दीख रहे हैं तारे । ऋ.पृ. 52

श्रेष्ठ जनों के प्रति आदर सम्मान व्यक्त करने के लिए 'शीश झुकाना' मुहावरा प्रचलित है। ऋषभ के तपोबल से प्रभावित सुरपति की प्रेरणा व आज्ञा से धनपति कुबेर ने युगलों की आवासीय समस्या सुलझाने हेतु दिव्य नगर की रचना

कर आदरपूर्वक ऋषभ के श्री चरणों में शीश झुकाकर प्रसन्नता जाहिर की –

सम्पन्न कार्य कर हृष्ट–पुष्ट हो आया,
प्रभुवर चरणों में सादर शीष झुकाया। ऋ.पृ. 56

असहयोग अथवा अलग होने के अर्थ में 'हाथ खींचना' मुहावरे का प्रयोग होता है। युगलों को उस समय अत्यधिक झटका लगा जब उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने में कल्पवृक्षों ने सहसा अपना 'हाथ खींच लिया' –

एकाएक लगा झटका जब, कल्पवृक्ष ने खींचा हाथ। ऋ.पृ. 61

असम्भव अथवा अप्राप्ति के लिए 'अम्बर पुष्प' मुहावरे का प्रयोग बिम्बात्मक है। भिक्षा लाभ के लिए चक्रमण कर रहे ऋषभ के मनोभावों को युगलों द्वारा न समझ सकने के कारण उन्हें भिक्षा लाभ अम्बर पुष्प की ही भाँति प्रतीत होने लगा–

पर्यटन जनपद घरों में, भिक्षु का चलता रहा,
किन्तु भिक्षा लाभ अम्बर, पुष्प बन फलता रहा। ऋ.पृ. 119

दायित्वपूर्ण होने के पश्चात् व्यक्ति मन से हल्का हो जाता है। इस अर्थ का बिम्बांकन 'सिर का भार उतर जाना' मुहावरा से किया गया है। अयोध्या के शकटानन उद्यान में उपस्थित ऋषभदेव का दर्शन माँ मरूदेवा को कराकर भरत अपने सिर से उलाहना का वह भार उतार देना चाहते हैं जिसे आए दिन मरूदेवा दुहराया करती थीं –

मंदर पर्वत से भी ज्यादा उपालम्भ का होता भार
एक अकल्पित गूँज उठा स्वर, सिर का भार उतर जाए। ऋ.पृ. 153

गिरिजनों का शर वर्षा से हताहत् भरत की सेना इतनी व्याकुल व विचलित है कि वह रण क्षेत्र से 'मुख मोड़ने' के लिए विवश है। 'पलायन' करने के अर्थ में इस मुहावरे का बिम्ब प्रस्तुत किया गया है।

गिरिजन की शर–वर्षा से हत, सेना ने मुख मोड़ा। ऋ.पृ. 171

अत्यधिक प्रिय पात्र के लिए 'नयनों का तारा' मुहावरे का प्रयोग होता रहा है। राजनीति और युद्ध में स्वार्थ साधना को ही महत्व दिया जाता है। बारह वर्षो तक

गिरिजनों से युद्ध के पश्चात् भरत की सेना से संधि हुई। संधि के पश्चात् वे गिरिजन जो कल तक भरत के शत्रु थे आज वे भरत के नयनों के तारे बने हुए हैं –

आनन्द–उर्मि उत्फुल्ल वदन हैं सारे

कल के अरि इस क्षण में नयनों के तारे। ऋ.पृ. 181

गौरवान्ति होने के अर्थ में 'मस्तक ऊँचा होना' मुहावरा प्रयुक्त हुआ है। किंतु यदि अहं की संतुष्टि के लिए भाई–भाई में युद्ध हो तो क्या भविष्य में आने वाली पीढ़ियाँ अपने पूर्वजों की पारिवारिक युद्ध गाथा पर 'अपना मस्तक ऊँचा' कर सकती हैं ? भरत के आक्रामक आचरण से खिन्न शरण में आए अट्ठनबें पुत्रों को संबोधित करते हुए ऋषभ कहते हैं –

भाई–भाई में संगर की, गाएगा हर युग गाथा।

सोचो कैसे भावी पीढ़ी, का होगा ऊँचा माथा ? ऋ.पृ. 201

उदास भाव की अभिव्यक्ति के लिए 'मन खिन्न होना' मुहावरे का बिम्ब निरूपित किया गया है। भरत के सम्बन्ध में बहली राज्य के नागरिकों द्वारा कटुक प्रवाद सुनकर दूत सुवेग का 'मन खिन्नता' से भर जाता है –

'लोभ बढ़ता लाभ से' यह, सूत्र शाश्वत सत्य है।

भरत का अभियान होगा फल–रहित यह तथ्य है।

x x x

कटुक लोक प्रवाद सुनकर, दूत का मन खिन्न है। ऋ.पृ. 229

'मुकाबला करने' के अर्थ में 'लोहा लेना' मुहावरे का बिम्ब प्रयुक्त किया गया है। चक्र की सामर्थ्य का वर्णन करते हुए सेनापति सुषेण–भरत से कहता है कि चक्र से रक्षित सेना की शक्ति का सामना कोई नहीं कर सकता। यह चक्र तो देवराज इन्द्र से भी लोहा लेने में समर्थ है –

चक्री सेना का ताप कौन सह सकता ?

यह चक्र शक्र से भी लोहा ले सकता । ऋ.पृ. 247

'भृकुटि का तनना' तथा 'आँखों में खून उतरना' मुहावरा परक बिम्ब

क्रोधिभव्यक्ति का वाहक है। चक्रवर्ती की सेना के समक्ष अपनी सेना का पलायन देखकर बाहुबली की 'भृकुटि तन गई' और उनकी 'आँखों में खून उतर आया' (चक्षु में उतरा अरूण वर्ण) –

हुआ पलायन पवन वेग से, बहलीश्वर ने देखा सर्व
तना भृकुटि का देश चक्षु में, उतरा अरूण वर्ण का पर्व। ऋ.पृ. 254

सीमित दायरा अथवा सीमित चिंतन के लिए 'कूपमंडूक' मुहावरे का प्रयोग चाक्षुष बिम्ब का अच्छा उदाहरण है। अभी तक यह मान्यता थी कि बाहुबली की सेना को शौर्य का वरदान प्राप्त है किन्तु सेनापति सुषेण के भीषण आक्रमण से जब बाहुबली की सेना पलायन करने लगी तब उसे बाहुबली की सेना के शौर्य के सम्बन्ध में आम धारणा 'कूपमंडूक के समान' प्रतीत होने लगी –

बहलीश्वर की सेना को ही, प्राप्त पराक्रम का वरदान
मान रखा था वह चिंतन तो, हुआ कूप–मंडूक समान। ऋ.पृ. 255

'कांटों का ताज पहनना' मुहावरा स्वेच्छा से कठिनाइयों को स्वीकारने का बिम्ब निर्मित करता है। द्वन्द्व युद्ध में बाहुबली के मुष्टि प्रहार की मूर्च्छा से जागृत भरत को लक्ष्य कर बाहुबली कहते हैं कि दण्ड युद्ध में विजयी ही 'कांटे का ताज पहन' सिंहासनारूढ़ होगा। यहाँ 'कांटों का ताज' प्रशासन संबंधी कठिनाइयों का भी व्यंजक है –

खेल दंड का अभी शेष है, आओ खेलें दोनों आज
वह बैठेगा सिंहासन पर, पहनेगा कांटों का ताज। ऋ.पृ. 282

'ताज पहनना' अर्थात् राजा बनना, सर्वोच्च पद को प्राप्त करना। दण्ड युद्ध में भरत के पराजित होने के पश्चात् चारों ओर से यह आवाज आने लगी कि ताज पहनने का सुअवसर बाहुबली को ही मिलेगा –

मग्न भूमि में भरत कंठ तक, संभ्रम विभ्रम की आवाज
लुप्त हो रहा है भरतेश्वर, बहलीश्वर पहनेगा ताज। ऋ.पृ. 283

इन मुहावरों के अतिरिक्त आचार्य महाप्रज्ञ ने भाग्योदय होना 46, कृतार्थ

करना 56, शिरोधार्य करना 86, धैर्य खोना 103, शीश झुकाना 166, पैर नहीं टिक पाना 173, छटा दिखाना 175, पाखंड रचना 176, केशरिया बाना 181, सोलह आना 181, नभ को साधना 183, गागर में सागर 184, पथराई आँखें 186, इठलाना 201, धर्म संकट 227, सिर पर हाथ होना 244, साहस बटोरना 247, पलायन करना 255, हा–हाकार करना 279, सुख की सांस लेना 287, कोलाहल होना 287 आदि मुहावरों का भी बिम्बात्मक प्रयोग किया है।

लोकोक्तियों के आधार पर भी कवि ने बिम्ब सृजन किया है, जिसकी संख्या मुहावरों की तुलना में अल्प है, सत्ता अथवा प्रभुता को प्राप्त कर लेने पर ऐसा कौन व्यक्ति है जिसे अहंकार नहीं होता ? इस अर्थ की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति के लिए गोस्वामी तुलसीदास ने 'प्रभुता पाइ काहि मद नाही' लोकोक्ति का प्रयोग किया है, जिसकी अनुवर्तिका पर आचार्य महाप्रज्ञ 'सत्ता के मद से कौन नहीं टकराया' कथन नियोजित करते हैं। नमि विनमि भी राज्य प्राप्ति सम्बन्धी अधिकार भावना को समझकर विद्याधरधरण भरत के अहंकार को लक्षित कर इस लोकोक्ति को चरितार्थ करता है–

साधर्मिकता का मूल्य समझ में आया
सत्ता के मद से कौन नहीं टकराया ? ऋ.पृ. 123

मात्स्य न्याय का सिद्धांत है 'बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है।' व्यावहारिक जीवन में सबल द्वारा निर्बल पर एकाधिकार की भावना का आरेखन इस लोकोक्ति द्वारा किया जाता है। भरत के व्यवहार से पीड़ित अट्ठानवे पुत्रों को संबोध देते हुए ऋषभ स्वार्थमयी कुत्सा से परिपूर्ण शक्तिशाली व्यक्ति की मनःस्थिति का उद्घाटन करते हुए भरत को लक्षित करते हैं जिसमें भरत को 'बड़ा मत्स्य' तथा अन्य निर्बल नरेशों को 'छोटी मछली' से बिम्बित किया गया है। 'बड़ी मछली छोटी मछली से प्यार नहीं करती' उसे समूचा निगल जाती है –

दुर्बल पर बलवान शक्ति से, कर लेता अपना अधिकार ।
बड़ा मत्स्य छोटी मछली से, कब करता है मन से प्यार ? ऋ.पृ. 201

'मझधार में सम्बन्धों की नाव होना' लोकोक्ति का बिम्ब सम्बन्धों के

अस्तित्व पर खतरा मँडराने के अर्थ में निरूपित किया गया है। भरत बाहुबली से युद्ध नहीं करना चाहते, वे चक्र की अस्मिता से भातृत्व प्रेम को अधिक महत्व देते हैं किन्तु मंत्री की कुमंत्रणा से भरत की साकारात्मक सोच नाकारात्मक सोच में परिवर्तित हो जाती है जिससे भ्रातृत्व सम्बन्ध की नाव मँझधार में फँसी हुई दिखाई देने लगती है –

ऋषभ–पुत्रों में कलह हो, मान्य मुझको है नहीं
चक्र रूठे, झठ जाए, बन्धु तो वही है नहीं ऋ.पृ. 224

X X X

सोच में परिवर्त आया, नर विचित्र स्वभाव है।
बंधु के संबंध की मझ–धार में अब नाव है। ऋ.पृ. 226

स्नेही स्वजनों के द्वारा परिवार के सदस्यों में भय के संचार के लिए 'अपने घर को भय उपजा अपने घर से' लोकोक्ति का बिम्बांकन किया गया है। बाहुबली से युद्ध के लिए भरत की तत्परता पारिवारिक स्तर पर भयावह व विनाशक ही है –

बहलीश्वर को संवाद मिला है चर से,
अपने घर को भय उपजा अपने घर से। ऋ.पृ. 249

समय की अनुकूलता व प्रतिकूलता के लिए 'कभी नाव गाड़ी पर और कभी गाड़ी नाव पर' (कभी नाव में शकट उपस्थित कभी शकट में होती नाव) लोकोक्ति बहुश्रुत है। भरत–बाहुबली की सेना के घमासान युद्ध में यह निर्णय करना कठिन था कि विजय किसकी होगी ? कभी बाहुबली की सेना भरत की सेना पर भारी पड़ती तो कभी भरत की सेना बाहुबली की सेना पर –

अवसर का अपना बल होता, कभी शकट में होती नाव
कभी नाव में शकट उपस्थित, नियति–चक्र के अनगिन दाँव। ऋ.पृ. 260

किसी व्यक्ति अथवा वस्तु का सही मूल्यांकन न कर पाने के संदर्भ में 'मान रखा मैंने पय जिसको, वह तो जल से पूरित तक्र' लोकोक्ति आस्वाद्य बिम्ब परक है।

पूर्ण पराजय के पश्चात् प्राण घात की दृष्टि से भरत द्वारा बाहुबली पर प्रक्षेपित चक्र जब बाहुबली की प्रदक्षिणा कर उनके दक्षिण कर में विराजमान हो जाता है तब चक्र के प्रति भरत की शुभ धारणा परिवर्तित हो जाती है। वे जिस चक्र को दुग्ध के समान बलदायी समझते थे, वह तो जल से परिपूर्ण तक्र की भाँति निस्सार ही निकला –

यदि मै। चक्री अनुज हाथ में, कैसे आश्रित जैसा चक्र ?
मान रखा मैने पय जिसको, वह तो जल से पूरित तक्र। ऋ.पृ. 286

एकाग्र चित्त से किया गया श्रम फलीभूत होता है। इस अभिव्यक्ति के लिए 'जिन खोजा तिन पाइया' लोकोक्ति प्रचलन में है, जिसके लिए कवि ने 'खोजा उसने पाया' का कथन किया है। सेनापति सुषेण द्वारा विनम्रता पूर्वक दण्डरत्न को ग्रहण करने के सन्दर्भ में इस लोकोक्ति का प्रयोग किया गया है जो दृश्य एवं स्पर्श्य बिम्ब परक है –

सेनापति ने दंड–रत्न को, कर प्रणिपात उठाया।
विनय विजय का प्रथम मंत्र है, खोजा उसने पाया। ऋ.पृ. 168

किसी भी वस्तु की आवश्यकतानुरूप उपयोग विधि की जानकारी न होने पर हानि ही होती है। इस कथ्य के लिए 'कब धूलिपुंज में भरता जल से प्याला' बिम्ब का नियोजन किया गया ह। दावानल के अकस्मात् उत्पन्न होने पर ऋषभ ने युगलों को उसमें अन्न पकाकर तथा उसे चबा–चबाकर खाने की बात कही किन्तु अभी तक युगलों को भोजन पकाने की क्रिया का रंचमात्र भी ज्ञान न होने के कारण वे अन्न अग्नि में ही डाल दिए। जिससे वह जलकर राख हो गया। अज्ञान के कारण युगलों को मनोवांछित ध्येय की प्राप्ति नहीं हो सकी। यह लोकोक्ति युगलों की अज्ञान दशा का बिम्बांकन करती है –

ला अन्न दवानल की ज्वाला में डाला
कब धूलिपुंज में भरता जल से प्याला
सब अन्न हो गया स्वाहा झट फिर आए। ऋ.पृ. 58
इसके अतिरिक्त 'निज पर शासन फिर अनुशासन' ऋ.पृ. 182

'चलती न किसी की इस जग में मनमानी' 244, 'जैसा शासक जनता भी वैसी होती' 245, 'अपनी स्वतंत्रता लगती सबको प्यारी' 180, आदि लोकोक्तियाँ भी बिम्ब विधायक हैं।

——00——

प्रतीक

उपमान जब किसी उपमेय के लिए रूढ़ हो जाते हैं तब वे प्रतीक बन जाते हैं। आचार्य भगीरथ मिश्र के अनुसार 'प्रतीक भी अलंकार का ही एक स्वरूप है, जो वर्णन में प्रस्तुत विधान के तिरोभाव और अप्रस्तुत विधान के विशिष्ट और सुष्ठु उभार, निखार और चमत्कार के द्वारा संपादित होता है।[3] प्रतीक में अप्रस्तुत का विशेष महत्व होता है। यह अप्रस्तुत अपने गुण, धर्म एवं विशेषता के कारण इतना पारदर्शी होता है कि जिस संदर्भ में इसका प्रयोग किया जाता है उसका खुलासा वह उसी रूप में कर देता है। वाणी एवं शब्द की प्रभावोत्पादकता इसकी मूर्त्तन शक्ति से और भी अधिक बढ़ जाती है। 'प्रतीक' की भाषा जटिल होती है। इसलिए इसका सटीक प्रयोग सधा सधाया कवि ही कर पाता है। प्रतीकों का प्रयोग प्रायः कवियों द्वारा या तो पारम्परिक रूप में किया गया है अथवा नवीन रूप में। आचार्य महाप्रज्ञ ने दोनों प्रकार के प्रतीकों का उपयोग किया है। कवि ने पारम्परिक रूप में प्रयुक्त छुई–मुई, पशु, सूर्य, रत्न, इन्द्रधनुष आदि प्रतीकों का प्रयोग किया है, जो कथ्य के प्रति सटीक प्रतीकात्मक बिम्बों का सृजन करते हैं।

नर शिशु की अकाल मृत्यु से युगलों की मनःस्थिति छुई–मुई जैसी हो जाती है। 'छुई–मुई' के प्रतीकात्मक बिम्ब से मृत्यु के प्रति युगलों की भयाक्रान्त मनः स्थिति को व्यक्त किया गया है –

काल मृत्यु से परिचित था युग, असमय मृत्यु कभी न हुई।
प्रश्न रहा होगा असमाहित, बनी मनः स्थिति छुई–मुई। ऋ.पृ. 41

'अज्ञान' अथवा अविवेक के रूप में कवि ने 'पशु' का बिम्ब निरूपित

किया है –

शिक्षा दीक्षा शून्य मनुज पशु, शिक्षा है धरती का स्वर्ग।

तेजस्वी पुरूषों के लिए 'सूर्य' एवं 'रत्न' परक प्रतीकों का बिम्बान्कन होता रहा है। कवि ने 'सूर्य' और 'बैडूर्य' प्रतीक से तेजस्वी ऋषभ देव को बिम्बित किया है। बहली देश के रमणीक उद्यान से ऋषभ के प्रस्थान कर जाने पर उद्यानपाल बाहुबली से कहता है –

देव ! न देखेंगे दो सूर्य, नहीं सुलभ अब वह वैडूर्य।
एक सूर्य का नभ में यान, अपर सूर्य का तब प्रस्थान। ऋ.पृ. 138

क्षणभंगुर जीवन के लिए 'इन्द्रधनुष' का प्रतीकात्मक बिम्ब प्रयुक्त किया गया है –

उदित हुआ वर केवल ज्ञान

X X X

हो सकता सर्वज्ञ मनुष्य, शेष जीव हैं इन्द्र धुनष। ऋ.पृ. 145

कैवल्यज्ञान अमृत कलश के समान है जिसकी प्राप्ति से साधक है सर्वज्ञ भी हो सकता है, शेष जीवों में यह सम्भावना नहीं रहती। इसीलिए ऐसे प्राणियों के लिए 'इन्द्रधनुष' का बिम्ब दिया गया है। हिंसा अथवा अशांति तथा प्रेम और शांतिमय वातावरण के लिए क्रमशः 'गरल' और 'सुधा' का प्रतीकात्मक बिम्ब भी दृष्टव्य है –

कर देता निर्वीर्य गरल को, एक सुधा का प्याला। ऋ.पृ. 165

युद्ध के परिप्रेक्ष्य में 'निर्बल' और 'सबल' के प्रतीक के रूप में 'मृग' और 'चीता' का बिम्ब प्रयोग में लाया गया है। सेनापति के खड्ग रत्न के प्रहार से गिरिजनों की सेना वैसे ही पलायन कर जाती है जैसे मृग ने चीता देख लिया हो–

सेनानी ने खड्ग रत्न ले, क्षण में सबको जीता
किया पलायन जैसे मृग ने, देख लिया हो चीता। ऋ.पृ. 171

'सद्प्रेम' तथा निराशा भाव के लिए क्रमशः 'शतदल' एवम् 'तमस' प्रतीक

का प्रयोग कर कवि ने भरत की प्रतीक्षा में पलक पाँवड़ें बिछायी जनता की प्रसन्नता का चित्रण किया है –

मन सरवर में जब शतदल खिल जाता है,
तब सघन तमस का आसन हिल जाता है। ऋ.पृ. 186

'बिन्दु' और 'रेखा' प्रतीक से क्रमशः निर्बल और सबल की सामर्थ्य शक्ति का बिम्बांकन किया गया है, जिसमें 'बिन्दु' के रूप में निर्बल नरेशों तथा 'रेखा' के रूप में बाहुबली की ओर संकेत किया गया है। भरत और बाहुबली की शक्ति सामर्थ्य को ध्यान में रखकर मंत्री भरत से कहता है कि –

बाहुबली को जीतने का, स्वप्न क्यों देखा नहीं ?
शेष सब नृप बिंदु केवल, एक है रेखा यही। ऋ.पृ. 225

'कूप' प्रतीक का प्रयोग एक निश्चित सीमा अथवा सीमित परिवेश को व्यक्त करता है। इस प्रतीक का बिम्ब भरत के दूत के द्वारा बाहुबली के लिए व्यवहृत किया गया है –

सिंधु का विस्तार अपना, कूप आखिर कूप है। ऋ.पृ. 239

'गज' और 'मृगपति' के प्रतीकात्मक बिम्ब से क्रमशः भरत और बाहुबली को चित्रित किया गया है। भरत आत्मचिंतन करते हैं कि हाथी स्थूलकाय शक्तिशाली होते हुए भी मृगपति से सदैव भयभीत रहता है–

है स्थूलकाय गज किन्तु भीत मृगपति से,
भाई के बल को तोला है मति–गति से। ऋ.पृ. 246

'चींटी' और 'गज' का प्रतीकात्मक बिम्ब क्रमशः अशक्त (भरत की सेना) और सशक्त (बाहुबली) के लिए किया गया है। अपनी सेना को भरत की सेना के समक्ष पलायन करता हुआ देख बाहुबली जब युद्ध के लिए तप्तर होते हैं, तब उनका पुत्र सिंहरथ उन्हें यह कहकर रोक देता है कि चींटी के समान निर्बल सेना पर गज के समान आपका अभियान उचित नहीं है –

प्रणत सिंहरथ बोला, यह तो, चींटी पर गज का अभियान। ऋ.पृ. 254

भरत पुत्र शार्दूल के शौर्य को 'बाज' पक्षी तथा 'सुगति' को सामान्य पक्षी के प्रतीक से बिम्बित किया गया है, जिस प्रकार बाज किसी भी पक्षी को झपटकर अपना आहार बना लेता है वैसे ही शार्दूल ने सुगति का शिरोच्छेद कर उसका प्राणान्त कर दिया –

झपटा जैसे बाज विहग पर, किया सुगति के सिर का छेद। पृ. 265

'गज' प्रतीकात्मक बिम्ब में 'अहं' भाव को लक्षित किया गया है। आत्मसाक्षात्कार में सबसे बड़ा बाधक अहंकार ही होता है। ब्राह्मी और सुन्दरी एकान्त साधना में लीन बाहुबली को अहंकार से मुक्त होने के लिए 'गज' से उतरने की बात कहती है –

बंधो ! उतरो, गज से उतरो, उतरो अब,
भूमी की मिट्टी का अनुभव होगा तब,
गज–आरोही प्रभु–सम्मुख पहुँच न पाता,
आदीश्वर ईश्वर समतल का उद्‌गाता। ऋ.पृ. 294

बाहुबली की सेना के समक्ष छटपटाती, व्याकुल भरत की सेना के लिए 'जल' से निर्वासित 'मीन' का बिम्ब सृजित किया गया है। अपनी सेना को अशक्त पाकर सेनापति भरत से कहता भी है –

बहलीश्वर की सेना अपने, बलशाली सुभटो से पीन ।
और हमारी सेना प्रभुवर! है जल से निर्वासित मीन। ऋ.पृ. 262

आध्यात्मिक क्षेत्र में 'मुक्ता' 'मानस सरवर' और 'हंस' प्रतीक से क्रमशः 'मुक्ति', हृदय और जीवात्मा का बिम्ब निरूपित किया गया है। 'भरत' पर प्राणघातक आक्रमण के लिए उद्‌यत बाहुबली को रोकते हुए सुरगण उन्हें उनकी वंश परम्परा का स्मरण दिलाते है –

अमृत तत्व में पले पुसे हो,
फिर कैसे मारक आवेश ?
शांत–शांत उपशांत बनो हे !
ऋषभ–ध्वज के वंशवतंस !

मुक्ता का आकांक्षी होगा
मानस सरवर का वर हंस । ऋ.पृ. 288

उक्त प्रतीकार्थो के अतिरिक्त यहाँ 'अमृत तत्व' का प्रतीकार्थ प्रेमतत्व मानसरोवर का ऋषभ वंश एवं 'हंस' का प्रतीकार्थ बाहुबलि से भी लिया जा सकता है।

युद्ध के सन्दर्भ में सेना और भरत के लिए क्रमशः 'बादल' और 'हंस' प्रतीक का नवीन प्रयोग भी कवि ने किया है। युद्ध स्थल पर सेनाओं के मध्य भरत वैसे ही उपस्थित होते हैं जैसे आकाश में बादलों की पंक्तियों को चीरकर सूर्य (हंस) उपस्थित होता है –

चीर बादलों की अवली को,
अंतरिक्ष में चमका हंस
दूरी का अवरोध मिटाकर
आया अग्रज नृप अवतंस । ऋ.पृ. 275

इस प्रकार ऋषभायण में प्रतीकात्मक बिम्बों का सफल प्रयोग दिखाई देता है।

––00––

7. मानवीकरण

अचेतन जड़ प्रकृति व पदार्थो की चेतन के अनुरूप कल्पना करना, मानवीकरण है। इसमें मानव अथवा चेतन प्राणी के क्रिया व्यापारों का आरोपण किया जाता है। फूलों के हँसने में तथा पर्वत के देखने में मानव की क्रियाओं का दृश्य बिम्बित होता है। मानवीकरण की समस्त प्रभावोत्पादकता बिम्ब नियोजन के कारण ही होती है। सिद्धान्तः भले ही छायावादी युग में मानवीकरण विधा का प्रारम्भ हुआ, व्यवहारतः प्राचीन काल से ही कविगण प्रकृति का मानवीकरण करते आए हैं। मानवीकरण का चित्रण प्रमुखतः कवियों ने तीन रूपों में किया है। प्रथमतः कवियों ने किसी अचेतन या निर्जीव पदार्थ को चेतन प्राणी अथवा व्यक्ति के समान प्रकट किया है। यह एक प्रकार का मानव रूपक है, जिसमें अचेतन को मानवोचित गुणों से युक्त करके सचेतन जैसा कहा जाता है। द्वितीयतः, प्राकृतिक वस्तुओं को चेतना

युक्त प्राणी के रूप में वर्णन करके मनुष्योचित भावों से युक्त या मानसिक क्रियाओं को करने में समर्थ बतलाया जाता है। प्रकृति में चेतना का अस्तित्व समझकर उसके वर्णन में मानव–व्यापारों एवं भावों का समावेश होता है। मानवीकरण की तृतीय कोटि में अचेतन, मानसिक दशाओं आदि को मानव का व्यक्तित्व प्रदान किया जाता है। आचार्य महाप्रज्ञ ने प्रकृति को सचेतन रूप में स्वीकार कर मानवीकरण परक बिम्ब सृजित किए हैं, जिसमें उन्हें पूर्णतः सफलता मिली है।

ऋषभाषण में वर्णित जीवन का आधार प्रकृति है। मानवीय संवेदना प्राकृतिक संवेदना से जुड़ी है, इसलिए प्रकृति भी अपने उपादानों से अपने हर्ष विषाद को व्यक्त करती है। नवोदित शिशु के जन्म पर मंगलगीत गाये जाते हैं, चारों ओर प्रसन्नता ही प्रसन्नता होती है। ऋषभ जन्म के पश्चात् भी संपूर्ण वातावरण प्रसन्न है। समूची प्रकृति निहाल हो खुशियाँ मना रही है। यदि पवन संगीत गा रहा है तो कोमल पत्ते शहनाई वादन कर रहे हैं, वहीं पुष्प अपनी पंखुड़ी विकास से अंगड़ाई लेकर आनन्दित हो रहे हैं। प्रकृति के उपादान पवन, पल्लव और पुष्पों के क्रियाकलाप, मानवी क्रियाकलाप के अनुरूप संपादित हो रहे हैं। प्रकृति के इस प्रसन्नमय आयोजन से कवि ने संतानोत्पत्ति के पश्चात् समाज में प्रचलित परंपरा को भी बिम्बित किया है –

सुरभि – पवन संगीत गा रहा, पल्लव–रव की शहनाई।
किंशुक कुंकुम रूप हो गया, पुष्पों ने ली अँगड़ाई। ऋ.पृ. 35

ऋषभ सह सुमंगला एवं सुनंदा के पाणिग्रहण संस्कार के अवसर पर कल्पवृक्ष के कोमल पल्लवों को कवि ने गायक के रूप में भी चित्रित किया है–

श्री नाभि ऋषभ परिकर–परिवृत हो आए,
सुरतरू पल्लव ने मंगल गीत सुनाए। ऋ.पृ. 50

चक्ररत्न की पूजा–अर्चना कर जब भरत अपने प्रासाद में आए तब चारण के रूप में सूर्य की किरणों ने भी उनका विजयगान किया –

अर्चा कर संपन्न नृपतिवर, निज आलय में आया।
सूरज की उज्जवल किरणों ने, गीत विजय का गाया। ऋ.पृ. 163

कवि ने प्रकृति को गायक, वादक के साथ ही साथ लेखक के रूप में भी बिम्बित किया हैं। अयोध्या के शकट मुख उद्यान में चैत्यवृक्ष की छाया में विराजमान ऋषभ को देखकर समूची प्रकृति रमणीय हो जाती है, संपूर्ण वातावरण शांत हो जाता है। चारों ओर एक नवीन दृश्य की आभा दिखाई देने लगती है। इन विशिष्टताओं से प्रभावित ऐसा लगता है जैसे प्रकृति स्वमेव नवीन किन्तु विशिष्ट रचना का आलेखन कर रही हो –

चैत्य वृक्ष तट तरू कमनीय, शाखा पल्लव अति रमणीय । ऋ.पृ. 140
छाया में प्रभु को स्थित देख, लिखा प्रकृति ने नव अभिलेख। ऋ.पृ. 140

भरत बाहुबली की सेना के प्रबलतम युद्ध को बहुत समय तक सूर्य भी नहीं देख सका, वह अस्ताचल पर जाकर नियति का प्रतिनिधित्व करते हुए पारिवारिक विनाश लीला का आलेखन करने लगा –

दोनों में संघर्ष प्रबलतम, नहीं सका दिनमणी भी देख। ऋ.पृ. 258
अस्ताचल के अंचल पर जा, लिखा नियति का नव आलेख। ऋ.पृ. 258

आकाश के मानवीकरण के संदर्भ में भी इस बिम्ब की नियोजन किया गया है। जीवन की अनित्यता तथा आत्मशक्ति की नित्यता का ज्ञान होने पर राग–द्वेष से मुक्त भरत आनन्दित मन से पिता के श्री चरणों में उपस्थित हो अपने भाइयों से मिले। भ्रातृ मिलन के इस अद्‌भुत दृश्य का साक्षी आकाश जैसे भ्रातृ मिलन के इस पावन क्षण को मौन रूप से लिपिबद्ध कर लिया हो –

आदीश्वर के चरण–कमल की, सेवा में पहुँच सानंद,
भ्रातृ–मिलन के वे क्षण अद्‌भुत, लिखा गगन ने लेख अमंद। ऋ.पृ. 297

कवि ने पग–पग पर प्रकृति को चेतनमयी बताकर मानवीय चेतना के असर कारक बिम्ब निर्मित किए हैं। बालक ऋषभ की मृदु–मुस्कान देखकर पूर्ण विकसित फूलों में भी प्रतिस्पर्धा का भाव जन्म लेने लगता है –

मृदु मुस्कान निहार सुमन में, प्रतिस्पर्धा का भाव जगा । ऋ.पृ. 37

'निर्झर' के द्वारा प्रगति मार्ग पर संघर्ष करते हुए आगे बढ़ने की मानवीय

क्रिया का बिम्ब भी कवि ने प्रस्तुत किया है –

गिरि शिखर से निकल निर्झर, त्वरित गति से चल रहा,
पथ रूका चट्टान से, संघर्ष चिर चलता रहा। ऋ.पृ. 96

कवि ने 'निर्झर' को मुखर दर्शाकर जीवन के प्रति सच्चा संदेश देने वाले उपदेशक के रूप में भी व्यक्त किया है – जैसे निर्झर संदेश दे रहा हो कि यह शरीर 'नश्वर' है और आत्मा अनश्वर –

देह जनमता, मरता है वह, अमृत अजन्मा सदा विदेह
सुनो सुनो तुम कान ! सजग हो, निर्झर का नूतन संदेश। ऋ.पृ. 157

'कथा वाचक के रूप में भी निर्झर का मानवीकरण परक बिम्ब प्रस्तुत किया गया है। निरन्तर प्रवहमान निर्झर अपनी गति से मानव समाज के समक्ष प्रगति की कहानी कहता हुआ प्रतीत हो रहा है –

सतत प्रवाहित निर्झर का जल, प्रगति कहानी कहता । ऋ.पृ. 169

पृथ्वी, अंतरिक्ष, आकाश का भी मानवीकरण परक बिम्ब कवि ने प्रस्तुत किया है। सिंहनाद युद्ध में बाहुबली के उच्च स्वर में भरत का स्वर तिरोहित हो जाने पर अंतरिक्ष ने जहाँ बाहुबली के विजय की घोषणा की, वहीं धरती और आसमान भी स्तब्ध रह गए। यहाँ धरती, अंतरिक्ष और आकाश को मानव के पूर्ण व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किया गया है –

अंतरिक्ष ने कहा बाहुबली, विजयी, जय लघुता को लब्ध
भरत श्रेष्ठ पर बल–श्रेष्ठ लघु, धरणि अंबर सब ही स्तब्ध। ऋ.पृ. 278

'विटपि' और 'पवन' को पूर्ण मानव के रूप में चित्रित कर कवि ने रति विषयक वियोग भाव की भी अभिव्यंजना की है –

मंद–मंद समीरण सुरभित, कर–कर विटपि–स्पर्श
आगे बढ़ता लगता तरू को, इष्ट वियोग प्रकर्ष
कण–कण दृष्ट साकार, शाखा–शाखा कम्प विकार। ऋ.पृ. 79

कवि ने सशंकित मानव के रूप में सूर्य की किरणों तथा आतंकी के रूप

में तम का आकर्षक चित्रण किया है। लताओं के गहन परिवेश में व्याप्त तम के आतंक से भयभीत सूर्य की किरणें झुरमुट और निकुंज से सशंकित दृष्टि से उस ओर देखती हैं (गहन लताओं की ओर)। यहाँ शंकालु मानव की मनः स्थिति का आरोपण 'सूरज' की किरणों में किया गया है –

लता मंडपों के प्रांगण में, तम की अति आतंक
झुरमुट और निकुंज कुंज से, सूरज किरण सशंक । ऋ.पृ. 80

शारीरिक अंगों को भी मुखरित दर्शाकर मानवीकरण परक बिम्ब प्रस्तुत किये गये है। ऋषभ के हस्तिनापुर पदार्पण करने पर परिवार के सदस्यगण उन्हें भाव विह्वल होकर स्थिर दृष्टि से देख रहे हैं। उस समय परिवार के सदस्यों के द्वारा अपलक दृष्टि से ऋषभ की ओर देखने से ऐसा लग रहा था जैसे पलकों ने उन्हें अनिमेष रूप से निहारने का दीक्षा व्रत ले हो –

नयन सुस्थिर पलक ने, अनिमेष दीक्षा व्रत लिया
मुक्तिदाता की शरण में, क्यों निमीलन की क्रिया ? ऋ.पृ. 129

पलकों के पात के संदर्भ में भी आकर्षक बिम्ब की योजना हुई है। दृष्टि युद्ध के समय बाहुबली की ओर अपलक दृष्टि से निहारते हुए भरत की पलकें यह सोचकर नीचे की ओर झुक जाती हैं कि अपलक दृष्टि से देखने के कारण स्वामी को कष्ट हो रहा होगा –

कष्ट हो रहा है स्वामी को, सोच किया पलकों ने पात।
बहलीश्वर के सम्मुख जैसे, हुआ विनय–आनत प्रणिपात। ऋ.पृ. 277

मानसिक भावों जैसे राग, अहं, मति, क्रोध, लोभ, धैर्य, मोह, आनन्द को भी सचेतन के रूप में बिम्बित किया गया है –

किया अहं ने घोर विरोध, और किया मति से अनुरोध।
क्यों जागृत करती हो आज, सुप्त सिंह को हे अधिराज!
जाग गया यदि परमानन्द, हो जाओगी तुम निस्पंद

मित्र! न मेरे वश की बात, जागृत है प्रज्ञा अवदात।
क्रोध! बंधुवर! सुन लो मान! खोजो अपना–अपना स्थान।
शांत धीर तब 'करण अपूर्व', बोला बंधु! न मैं था पूर्व ।
निर्मल श्रेणी मेरा स्थान, तर्क नहीं बदलो संस्थान।
क्रोध मौन हो गया अरूप, अहंकार ने बदला रूप।
माया का अस्तित्व विलीन, फिर भी लोभ रहा आसीन। ऋ.पृ. 142–143

प्रकृति व मानव के साहचर्य भाव की अभिव्यक्ति निम्नलिखित पंक्तियों में देखी जा सकती है –

जीता मानव तरू के साथ, तरू ने भी फैलाया हाथ। ऋ.पृ. 141

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित उद्धरणों में भी मानवीकरण परक बिम्ब की छटा दिखाई देती है –

1. वह चला गया रवि जो प्रभात में आया। ऋ.पृ. 187
2. लोचन–कुवलय विहंस रहे ऋ.पृ. 39
3. इतने में उस महाकाल ने, अपना पंजा फैलाया, ऋ.पृ. 42
4. राग झांकता पूर्ण युवा बन, मीलितनयन विराग ऋ.पृ. 77
5. चक्ररत्न की दिव्य विभा तब, दमकी बन नव बाला। ऋ.पृ. 163
6. दिग्वधू के मुख कमल पर, नयन हर मुस्कान है। ऋ.पृ. 218

इस प्रकार आचार्य महाप्रज्ञ मानवीकरण परक बिम्बों की स्थापना में पूर्णतः सफल हुए हैं।

––00––

पौराणिक प्रसंग : महापुरूष चरित्र विषयक बिम्ब

जैन परंपरा के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव एक वैदिक पौराणिक पुरूष हैं। वे क्षात्रधर्म के प्रवर्त्तक और क्षत्रिय जाति में श्रेष्ठतम् इक्ष्वाकु वंश के प्रथम व सर्वश्रेष्ठ सम्राट थे। (ऋषभं पार्थिव श्रेष्ठं सर्व क्षत्रस्य पूजितम्। ब्रह्माण्ड पुराण 2.14, लिंग पुराण 47.2) श्रीमद्भागवत् में इस बात का उल्लेख मिलता है कि वे आध्यात्मिक विद्या के उपदेशक थे। आदि पुराण में उन्हें ब्रह्म स्वरूप तथा शिवपुराण में शिव का आदि तीर्थंकर के रूप में अवतार लेने का वर्णन है। भागवत् पुराण में ऋषभदेव के अतिरिक्त नाभिराज, मरूदेवा, भरत, बाहुबली का वर्णन भी मिलता है। इस प्रकार आचार्य महाप्रज्ञ ने पुराण प्रसिद्ध महनीय पात्रों का चयन कर जीवन के लौकिक एवं अलौकिक पक्षों को उद्घाटित किया है। बिम्ब की दृष्टि से कवि ने अनेक पौराणिक कथाओं का समायोजन किया है। पुराणों में वर्णित कल्पतरू सभी कामनाओं की पूर्ति के लिए प्रयुक्त होते रहे हैं। संजीवनी शक्ति से परिपूर्ण कल्पवृक्षों को युगलों की भोजन, वस्त्र, मकान एवं अन्य आवश्यकताओं की सहज पूर्ति के कारक के रूप में चित्रित किया गया है –

'चित्र' से मिलता है आहार, यही है जीवन का आधार
वस्त्र का कारक वृक्ष 'अनग्न', देह में वल्कल है परिलग्न।
'भृंग' के पत्र पात्र उपयुक्त, वास हित 'गेहाकार' प्रयुक्त ।
उष्णता देते 'ज्योतिष–अंग', अलंकरणों की कृति 'मणि–अंग'
ज्योति विकिरण करते 'दीपांग', वाद्य कलरव करते 'त्रुटितांग'
माल्यमय पुष्पस्त्रवण 'चित्रांग', स्त्रोत मधुरस का प्रवर 'मदांग' ऋ.पृ. 9

पौराणिक मान्यता के अनुसार सम्पूर्ण मानव जाति मनु की संतान है, जिसका प्रयोग युगलों के संदर्भ में भी किया गया है –

बन्धुद्वय ने, भगिनी द्वय ने, विद्या का विस्तार किया
कर्मभूमि के मनुपुत्रों को, जीवन का आधार दिया। ऋ.पृ. 68

देवराज इंद्र का वर्णन पुराणों में मिलता है। पुराणों में इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि देववासियों का सम्बन्ध पृथ्वी से रहा है। ब्रह्म स्वरूप ऋषभ के

समक्ष सौधर्म लोक के अधिपति देवराज इंद्र की उपस्थिति आदिकाल में पृथ्वीलोक और देवलोक के मनोमय सम्बन्धों का बिम्ब प्रस्तुत करती है। ऋषभ की राज्य व्यवस्था संबंधी चिन्ता के निवारणार्थ इंद्र कहते हैं –

सौधर्म लोक का अधिपति मैं हूं स्वामी !
श्री चरणों में आगत सेवा का कामी
मानव की भूमी से सम्बन्ध पुराना
रहता है पुनरपि पुनरपि आना–जाना। ऋ.पृ. 55

युद्ध में सिंहरथ के सिंहनाद से पलायन करती हुयी भरत की सेना को ऐसा लग रहा था जैसे वीर वेश में स्वयं बाहुबली अथवा देवराज इंद्र उपस्थित हो गए हों –

सिंहनाद से हुआ प्रकंपित, भरतेश्वर का सेना–चक्र
किया पलायन योद्धागण ने, कौन ? बाहुबलि अथवा शक्र ? ऋ.पृ.255

दीक्षा के समय शत–सहस्त्रों लोक की उपस्थिति ऋषभ के ब्रह्म! स्वरूप का उद्‌घाटन करती है –

विश्व का कल्याण करने, ऋषभ का अवतरण है।
शत–सहस्त्रों लोक प्रभु के, सामने आ रूक गए।
बद्ध अंजलि भाव प्रांजल, शीश सबके झुक गए।
मौन वाणी, आंखों ने ही, कथ्य अविकल कह दिया।
स्नेह से अभिषिक्त बाती, जल उठा, 'अनहद' दिया। ऋ.पृ. 94

ऋषभ के ब्रह्म स्वरूप की अभिव्यक्ति विधाता, धाता ओंकार आदि विशेषणों से कर उनकी सर्वोच्चता व्यक्त की गयी है –

तुम विधाता और धाता, सृष्टि के ओंकार हो,
और सामजिक व्यवस्था, के तुम्हीं आधार हो। ऋ.पृ. 98

आहार के लिए चक्रमण कर रहे ऋषभ के चरण स्पर्श मात्र से ही कण–कण में संचरित उल्लास को स्वर्ग की आनन्दानुभूति से व्यक्त किया गया है –

स्वर्ग की अनुभूति धरती, अमित पल पल पा रही
गांव की जनता प्रफुल्लित, भक्तिगाथा गा रही। ऋ.पृ. 117

दृढ़ संकल्प के लिए पुराण में विख्यात 'ध्रुवतारा' का बिम्ब भी कवि ने निरूपित किया है। साम्राज्य प्राप्ति के हक से वंचित ऋषभ के प्रति नमि विनमि के आश्चर्य भाव की अभिव्यक्ति के लिए कवि ने इस बिम्ब का उपयोग किया है –

आक्रोश, कल्पना, श्रद्धा सभी समेटे,
प्रभु सम्मुख आए दोनों पालित बेटे
दो संविभाग ओ ! कैसे हमें विसारा ?
कैसे बदला यह आकाशी ध्रुवतारा ? ऋ.पृ. 122

ऋषभ की समाधिस्थ अवस्था में भगवान शिव का भी बिम्ब दर्शित है। नमि–विनमि ऋषभ से प्रार्थना करते हुए कहते हैं –

अब मौन खोल सस्नेह महेश ! निहारो
अधिकार सभी को प्रिय जननाथ! विचारो । ऋ.पृ. 122

मृत्यु के पश्चात् जीव द्वारा वैतरणी नदी पार करने की मान्यता को भी बिम्ब का आधार बनाया गया है जिसे युद्ध के परिप्रेक्ष्य में अनिलवेग को संबोधित भरत सैन्य के सेनापति के कथन में देखा जा सकता है –

मौन करो अब अनिलवेग ! तुम
बहुत अनर्गल किया प्रलाप
छलना की वैतरणी में रे !
कैसे धुल पाएगा पाप ? ऋ.पृ. 257

समुद्रमंथन के पश्चात् अमृतपान के अपराध में विष्णु के चक्र से धड़ से विरहित राहु के मस्तक का बिम्ब भी कवि ने निरूपित किया है। रणक्षेत्र में बाहुबलि के दण्ड प्रहार से भूमि में कंठ तक निमग्न भरत का मस्तक उस समय ऐसा दिखाई दे रहा था, जैसे राहु का कटा हुआ सिर हो –

'शीश राहु का' सूत्र तर्क का, देखा सेना ने प्रत्यक्ष
केवल शाखा, तना नहीं है, धड़ से विरहित सिर का कक्ष। ऋ.पृ. 283

पौराणिक मान्यता के अनुसार मृत्यु के पश्चात् जीव का कर्मानुसार पुनर्जन्म होता है। पुनर्जन्म की इस क्रिया का दृश्यांकन सागर में निरंतर 'उठती' और 'मिटती' हुई तरंग से किया गया है –

लहर सिंधु में उठती–मिटती, फिर उठती फिर मिट जाती
जन्म–मृत्यु की यही कहानी, जलती–बुझती है बाती। ऋ.पृ. 42

अक्षय तृतीया के पर्व को पौराणिक प्रसिद्धि इसलिए मिली कि उस दिन ऋषभदेव ने निरवद्य आहार के रूप में इक्षुरस को ग्रहण कर अपने संपूर्ण अन्तरायों का शमन किया था। उनका चित्त वैसे ही निर्मल हो गया था जैसे जलद के प्रभाव से पृथ्वी की मलिनता धुल जाती है –

पारणा दिन पर्व पर, अक्षय तृतीया हो गया
साधना के विघ्नमल को, जलद जैसे धो गया। ऋ.पृ. 132

इस प्रकार पौराणिक संदर्भों से जुड़ी मान्यताओं तथा महान पुरूषों के आलोक में भाव को और भी सबल बनाने के लिए इस कोटि के बिम्बों का सृजन किया गया है।

––00––

सन्दर्भ–सूची

1. ऋषभायण, पृ.–9

2. उपमा कालिदासस्य, पृ. 19–20

3. कला साहित्य और समीक्षा – आधुनिक हिन्दी कविता में नवीन प्रतीक पृ. 183–184

––00––

अध्याय-सप्तम्

उपसंहार

काव्य और बिम्ब का घनिष्ट सम्बन्ध होता है। कवि की अनुभूतियाँ कल्पना के माध्यम से बहुधा बिम्ब के रूप में ही व्यक्त होती है। इस तरह कवि की भावनाएँ और उसके विचारों के सम्प्रेषण में बिम्ब की प्रमुख भूमिका होती है। अनुभूति, भावना, वासना और ऐन्द्रियता बिम्ब के प्रमुख तत्व हैं। कल्पना उसका क्रियमाण तत्व है। कवि की कल्पना ही बिम्ब को गढ़ती है। बिम्ब सृष्टि में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों का भी सहयोग रहता हैं, किन्तु अलंकार बिम्ब का अनिवार्य उपादान नहीं है। बिम्ब अलंकार का मुखापेक्षी नहीं रहता। अलंकार के बिना भी बिम्ब निर्मित होते हैं। एक सीधा–सादा अनलंकृत कथन भी ऐन्द्रियता और गहन संवेग से संपृक्त होकर प्रभावशाली बिम्ब का स्वरूप प्राप्त कर सकता है।

प्रतीक और बिम्ब का भी बड़ा निकट का सम्बन्ध होता है। प्रतीक यद्यपि बिम्ब से ही उपजते हैं, फिर भी दोनों में पर्याप्त स्वरूपगत अन्तर होता है। प्रतीक और बिम्ब परस्पर मिलकर प्रतीकात्मक बिम्ब की सृष्टि करते हैं। प्रतीकात्मक बिम्ब अपनी एन्द्रियता के बावजूद किसी अमूर्त्त भाव सत्ता का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। इस तरह प्रतीकात्मक बिम्बों में शिल्प, संवेदना और भावना का गहन अन्तर्योग समाहित रहता है।

बिम्ब काव्य का ऐसा उपकरण है जिसके माध्यम से कवि के अनुभव की विशालता, अनुभूति की गहनता, कल्पना की विराटता, भावों की गम्भीरता, विचारों की यथार्थता ओर उसके काव्य विवेक को बड़ी आसानी से समझा जा सकता है। कवि में कितनी पर्यवेक्षण शक्ति है, इसकी जानकारी भी हमें उसके काव्य बिम्बों से होती है।

पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र में बिम्ब को काव्य का अनिवार्य तत्व एवं उसकी संजीवनी शक्ति माना गया है। किन्तु भारतीय काव्य शास्त्र में रस को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया गया है। रस का सम्बन्ध भाव से है और भाव का

संबंध बिम्ब से। वस्तुतः रस व भाव को मूर्त्त रूप में उपस्थित करना ही काव्य का मुख्य उद्देश्य है, और यह कार्य बिम्ब विधान द्वारा ही सम्भव है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि रस और बिम्ब एक दूसरे के पूरक हैं।

ऋषभायण एक आध्यात्मिक महाकाव्य है, जिसमें लौकिक जगत् से अलौकिक जगत् में प्रवेश की कथा वर्णित है। लौकिक जगत् का रूप स्थूल है तो अलौकिक जगत् का रूप सूक्ष्म। स्थूल भावों के लिए बिम्बों का निष्पादन जहाँ सहज होता है, वहीं सूक्ष्म भावों के लिए अपेक्षाकृत कठिन। कवि ने दोनों ही स्थितियों में भावानुरूप बिम्बों का नियोजन किया है।

ऋषभायण में कथा का विकास प्रकृति के सहज उन्मेष से होता है, इसलिए कवि ने अधिकांशतः बिम्ब प्रकृति से ही निर्मित किये हैं। प्रकृति में जलीय, धरातलीय, आकाशीय, पवनीय, आग्नेय, ऋतुसमय और मानवेतर प्राणियों से सम्बद्ध बिम्ब प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। प्रकृति पर आधारित बिम्बों में परम्परानुसरण की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। कहीं–कहीं नवीनता और स्वतंत्र निरीक्षण का सौंदर्य भी प्रतिष्ठित है। लोक जीवन और मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं से संबंधित बिम्ब भी कवि ने निरूपित किये हैं।

बिम्ब बोध का प्रमुख आधार है ऐन्द्रियता। कवि की जितनी भी संवेदनात्मक अवस्थाएँ होती है, वे इंद्रियों के द्वारा ही व्यक्त होती हैं। दृश्य, श्रोत, घ्राण, आस्वाद्य एवं स्पर्श्य इन्द्रियों का प्रधान गुण–धर्म है। अपनी–अपनी सीमा में ये इन्द्रियाँ भाव का सम्मूर्त्तन करती हैं। रूक्षता, कठोरता अथवा कोमलता के आधार पर जहाँ स्पर्श्यजन्य बिम्बों का उद्घाटन होता है, वहीं आनुप्रासिक, अनुकरणात्मक तथा अनुरणनात्मक एवं ध्वनि प्रतीकों पर आधारित श्रव्य बिम्बों का निर्माण होता है। आस्वाद्य बिम्ब रसनेन्द्रिय पर आधारित होते हैं तो घ्राण बिम्ब गंध पर। दृश्य बिम्बों का संसार विपुल है। एक प्रकार से सभी ऐन्द्रिय बिम्बों का समाहार दृश्य बिम्बों में हो जाता है। क्योंकि दृश्य बिम्बों के अंतर्गत रूप, रंग, आकृति गति आदि के आधार पर बिम्बों का दृश्यांकन किया जाता है। आचार्य महाप्रज्ञ ने प्रायः सभी ऐन्द्रिय बिम्बों की स्थापना की हैं, किंतु विस्तार की दृष्टि से चाक्षुस बिम्ब को अधिक सम्बल मिला है। वैसे भी काव्यों में गंध बिम्बों की प्रतिष्ठा अन्य बिम्बों से

कम ही हुई है। ऋषभायण में भी कवि द्वारा पुष्पों की गंधों का ही अधिकतर बिम्बांकन किया गया है, यहाँ इतर गंधों का अभाव सा दिखाई देता हैं। किन्तु यह अभाव कहीं भी खटकता नहीं, अपितु भाव सौंदर्य का वाहक ही बनता है। ऐन्द्रिक बिम्बों के अंतर्गत एकल, संश्लिष्ट, गतिक और स्थिर बिम्बों का वैविध्यपूर्ण बिम्बाकंन भी कवि ने सफलतापूर्वक किया है।

भाव बिम्ब के आधार हैं। बिना भाव के बिम्ब की कल्पना नहीं की जा सकती है, और बिना बिम्ब के भाव का सम्मूर्त्तन नहीं हो सकता। मेरी समझ से भाव और बिम्ब एक दूसरे के पूरक हैं। ऋषभायण में रसवत् धारणाओं के आधार पर स्थायी भाव एवं संचारी भाव से संबंधित बिम्ब निर्मित किये गये हैं। स्थायी भावों के अंतर्गत भक्ति, निर्वेद, वात्सल्य, शोक, विस्मय, उत्साह, क्रोध, भय, जुगुप्सा व रति विषयक बिम्ब आरेखित किये गये हैं, किंतु सर्वाधिक बिम्ब भक्ति, निर्वेद, वात्सल्य और उत्साह भाव से सम्बन्धित हैं। शोक, विस्मय, क्रोध, भय से सम्बन्धित भी बहुआयामी बिम्ब प्रयुक्त हुए हैं। किंतु 'जुगुप्सा' और 'रति' से संबंधित अत्यल्प बिम्बों की ही रचना हुयी है। संचारी भावों में मद, शंका, मोह, स्पृहा, हर्ष, प्रमाद, धन्यता, ईर्ष्या, श्रम एवं अन्य भावों से सम्बन्धित बिम्ब भी प्रसंगानुकूल निर्मित किये गये हैं, जो भावों का सहज में ही सम्मूर्त्तन करते हुए प्रतीत होते हैं।

कवि मूर्त्तामूर्त्त बिम्बों की उपस्थापना में भी सफल रहा है। सूक्ष्म से सूक्ष्म अथवा अमूर्त्त से अमूर्त्त भावों को गोचरता प्रदान करना सरल कार्य नहीं है। किंतु आचार्य महाप्रज्ञ जैसे सधे हुए साधक कवि के लिए यह कार्य कोई कठिन नहीं। इस दिशा में भी उन्होंने समान रूप से लेखनी चलाई है और मनवांछित बिम्बों को गढ़ा है।

अभिधा, लक्षणा, व्यंजना, लोकोक्ति, मुहावरे, प्रतीक, अलंकार, मानवीकरण आदि अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम हैं। आचार्य महाप्रज्ञ ने बिम्ब निर्माण में उक्त शैलीगत साधनों का अवलम्बन लिया है। हलांकि कवि की भाषा यान्त्रिक है, किंतु बिम्ब ग्रहण में उसकी यान्त्रिकता कहीं भी बांधक नहीं बनती। लोकोक्ति और मुहावरे भाषा के श्रृंगार हैं, इनके प्रयोग से भाषा की व्यंजकता बढ़ जाती है। सादृश्यमूलक अलंकारों में उपमान बिम्ब सृजन की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं।

प्रतीकात्मक बिम्ब जहां गूढ़ अर्थ का सृजन करते हैं वहीं शब्द शक्तियाँ व्याच्यार्थ, लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ का सफल बिम्बांकन भी करती हैं।

इस प्रकार हम सकते है कि बिम्ब विधान आचार्य महाप्रज्ञ की स्वाभाविक काव्य शैली है, जिस कारण ही वे विविध बिम्बों का निष्पादन करने में सफल हो सके हैं।

---00---

ग्रंथानुक्रमणिका

1.	आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब–विधान	डॉ. केदारनाथसिंह, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रकाशन, दिल्ली, 1971
2.	आधुनिक हिन्दी कविता में चित्र विधान	डॉ. रामयतनसिंह भ्रमर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1965
3.	औचित्य विचारचर्चा	क्षेमेन्द्र, हरिदास संस्कृत सीरीज, 25,चौखम्भा प्रकाशन, बनारस, 1933
4.	काव्यालंकार	श्वेताम्बर जैन पंडित नमि साधुकृत टिप्पणी समेत व्याख्याकार – रामदेव शुक्ल, चौखम्भ विद्याभवन, वाराणसी–1
5.	काव्यांलकार	भामट, संपा, पं. वटुकनाथ शर्मा तथा बलदेव उपाध्याय, काशी संस्कृत सीरिज–61, चौखम्भा प्रकाशन, बनारस
6.	काव्यादर्श	दंडी, संपा, पं. रंगाचार्य शास्त्री भंडारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1938
7.	काव्यालंकार सूत्रवृत्ति	वामन, सं. नारायणनाथ कुलकर्णी, ओरिएन्टल बुक एजेन्सी, पूना, 1927
8.	काव्यप्रकाश	मम्मट, टीकाकार डॉ. सत्यव्रतसिंह, विद्या भवन संस्कृत ग्रंथमाला 15, चौखम्भ प्रकाशन, बनारस, 1955
9.	काव्यमीमांसा	राजशेखर, अनु. पं. केदारनाथ शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1954
10.	कालीदास के सुभाषित	डॉ. भगवतशरण उपाध्याय, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
11.	कालीदास कवि और काव्य	डॉ. भगवतशरण उपाध्याय, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
12.	कालीदास की लालित्य योजना	डॉ. हजारीलाल द्विवेदी, नैवेद्य निकेतन, वाराणसी, 1965
13.	कालीदास के काव्य में ध्वनि तत्व	डॉ. मंजुला जायसवाल, संजय प्रकाशन, इलाहाबाद, 1976
14.	कालिदास का प्राकृतिक चित्रण	डॉ. निर्मला उपाध्याय, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद
15.	कालिदास की कला और संस्कृति	डॉ. देवीदत्त शर्मा

16. काव्य बिम्ब — डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1967

17. काव्य–शास्त्र — डॉ. भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1966

18. काव्यात्मक बिम्ब — प्रो. अखौरी ब्रजनन्दन प्रसाद, ज्ञानालोक, अशोक राज पथ, पटना, 1965

19. चित्रमीमांसा चौखम्भा — अप्पयदीक्षित, सं. जगदीशचन्द्र मिश्र, संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 1971

20. चिंतामणि (भाग प्रथम व भाग द्वितीय) — डॉ. रामचन्द्र शुक्ल, इण्डिय प्रेस पब्लिकेशन्स, 1965

21. जायसी की बिम्ब योजना — डॉ. सुधा सक्सेना, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली, 1966

22. तुलसी साहित्य में बिम्ब योजना — डॉ. सुशीला शर्मा, कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली, 1972

23. दशरूपक साहित्य — धनंजय, संपा, डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत, निकेतन, कानपुर, 1956

24. ध्वन्यालोक — आनन्दवर्धन, लोचन टीका सहित व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल ग्रंथमाला 97, वाराणसी संवत् 2028

25. भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा — डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1963

26. भारतीय साहित्य शास्त्रकोष — डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा' बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1973

27. रसगंगाधर — पंडितराज जगन्नाथ, नागेश भट्ट एवं मथुरानाथ शास्त्री की टीकाओं से समन्वित, निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई, 1947

28. रसमीमांसा — डॉ. रामचन्द्र शुक्ला

29. रस सिद्धांत और सौन्दर्य शास्त्र — डॉ. निर्मला जैन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1962

30. वक्रोवितजीवित चौखम्भा — कुन्तक, व्याख्याकार राधेश्याम मिश्र, संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी–1, 1967

31. साहित्यदर्पण — आचार्य विश्वनाथ, सं. डॉ. निरूपण विद्यालंकार, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1974

32. सरस्वतीकंठाभरण — भोज, काव्यमाला 94, निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई, 1934

33. संस्कृत–आलोचना — डॉ. बलदेव उपाध्याय, प्रकाशन ब्यूरो
34. संस्कृत साहित्य में सादृश्यमूलक अंलकारो का विकास — डॉ. ब्रह्मानन्द शर्मा, लेखक व प्रकाशक–गवर्नमैन्ट कॉलेज, अजमेर, सन् 1964
35. संस्कृत काव्यों में पशु–पक्षी — डॉ. रामदत्त शर्मा, देवनागर प्रकाशन, जयपुर, 1971
36. शोध–प्रविधि — डॉ. विनय मोहन शर्मा, नेशनल पब्लिशिंक हाउस, दिल्ली, 1973
37. ऋषभायण — आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती, लाडनूँ, 1999
38. द एडवान्स्ड लर्नस डिक्सनरी — आव करेण्ट इंगलिश 1963
39. अंग्रेजी हिन्दी कोश — फादर कामिल बुल्के
40. ए पोएटिक इमेज — सी.डे. लेविस
41. इनसवन्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका
42. शेक्सपीयर इमेजनरी एंड हवाट इट टेल्स अस केंब्रिज प्रथम संस्करण 939
43. Poetic image
44. R.H. Fogle in imagery of Keats and Shelly.
45. बायोग्राफिया लिटरेरिया — कॉलरिज
46. फिलासफी इन ए न्यू की — एस.के. लैंगर
47. साइक्लाजी टाइप्स — यूंग
48. स्पेक्यू लेसन्स — ह्यूम
49. मेक इट न्यू — एजरापाउण्ड
50. लिटरेरी एसेज ऑफ — एजरापाउण्ड
51. तुलसी प्रज्ञा
52. साहित्य की विविध विधाएँ — डॉ. रामप्रकाश
52. Apicutre or representation.
53. आधुनिक हिन्दी कविता में गीति तत्व — डॉ.सच्चिदानंद तिवारी
54. डॉ.शंभूनाथ सिंह — हिन्दी में महाकाव्य का स्वरूप विकास
55. पुद्गल कोष प्रथम खण्ड, सं. — मोहनलाल बाँठिया, श्रीचंद चोरड़िया
56. जैन तत्व विद्या, खण्ड–1, गणाधिपति तुलसी — सं.साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा
57. रस सिद्धान्त — डॉ. नगेन्द्र
58. आचार्य तुलसी का काव्य वैभव — समणी कुसुमप्रज्ञा

59. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र — डॉ.कृष्णदेव शर्मा
60. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रंथावली, भाग–7
61. काव्यांग कौमुदी (तृतीय कला) — विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, अलंकार
62. पल्लव की भूमिका — सुमित्रानन्दन पंत
63. हिन्दी काव्य में अन्योक्ति — डॉ.संसार चंद्र
64. नये कवियों के काव्य शिल्प सिद्धान्त — डॉ. दिविक रमेश
65. छायावादी काव्य : सौंदर्य वैविध्य — सं.शीतला प्रसाद दुबे
66. नयी कविता की भाषा — डॉ. रविनाथ सिंह
67. आत्मने पद — अज्ञेय
68. कल्पना और छायावाद — केदारनाथ सिंह
69. कला, साहित्य और समीक्षा — डॉ.भगीरथ मिश्र
70. कबीर — सं. विजयेन्द्र स्नातक
71. विचार और विश्लेषण — डॉ.नगेन्द्र
72. ऋषभ और महावीर — आ. महाप्रज्ञ
73. जैन तत्वज्ञान प्रश्नोत्तरी — मुनि जिनेश कुमार
74. महादेवी वर्मा की काव्य–साधना — प्रो.कृष्ण देव शर्मा
75. भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य भाषा का शैली वैज्ञानिक अध्ययन — डॉ. नीलम कालड़ा
76. हजारी प्रसाद द्विवेदी — ग्रंथावली भाग–7
77. कवि श्री शिवमंगल सिंह सुमन और उनका काव्य — डॉ. के.जी.कदम
78. तुलसीप्रज्ञा — अनुसंधान त्रैमासिकी
79. आचार्य महाप्रज्ञ, संस्कृत साहित्य — सं.डॉ.हरिशंकर पाण्डेय
80. महाप्रज्ञ का रचना संसार आत्मकथ्य — सं.कन्हैयालाल फूलफगर
81. आचार्य तुलसी — विचार के वातायन में, जैनेन्द्र,
82. महाप्रज्ञ का रचना संसार — आत्मकथ्य
83. महाप्रज्ञ साहित्य — मुनि दुलहराज
84. महाप्रज्ञ का रचना संसार — आत्मकथ्य
85. उपासना — सं.महाश्रमण मुदितकुमार

86. अतुलतुला — आचार्य महाप्रज्ञ जी
86. चिंतामणि (भाग–1) मीमांसा — डॉ.राजकमल वोरा
85. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र — डॉ.गणपति चन्द्र गुप्त
86. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र, — डॉ.शांतिस्वरूप गुप्त
87. हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश — संकलनकर्ता–विश्वेश्वर नारायण श्रीवास्तव
88. आलोचना–कविता की मुक्ति — डॉ. नवल किशोर, 'नवल' के लेख से उद्धृत
89. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान का विकास केदारनाथ सिंह
90 महादेवी के काव्य में बिम्ब विधान
91. नई कविता और नरेश मेहता — विमला सिंह
92. धर्मवीर भारती, अनुभव — बिम्ब विधान, हरिश्चन्द्र वर्मा
93. काव्य–दर्पण — रामदहिन मिश्र
94. शोध और सिद्धांत — डॉ. नगेन्द्र
'भारतीय काव्य शास्त्र में बिम्ब विषयक संकेत'
95. उत्तर रामचरित, भवभूति 4/25
96. विश्वम्भरा पत्रिका, अंक 3 सन् 1970
97. अमलेश गुप्ता — कालिदास की बिम्ब योजना
98. डॉ. नगेन्द्र — भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका
99. कालिदास की बिम्ब योजना — अमलेश गुप्ता
100. काव्य प्रकाश — आचार्य विश्वेश्वर
101 डॉ. नगेन्द्र — साधना के आयाम सं. कुमार विमल
102. तार सप्तक सं. अज्ञेय
103. वक्रोक्ति जीवित चर्चा — क्षेमेन्द्र, 18 (वृत्ति)
105. एरिस्टोटल, फिजिक्स, II 188.
106. L. Abererombe — Principal of Literary criticism
107. अंग्रेजी की स्वच्छंद कविता — प्रमोद वर्मा
108. रस गंगाधर — काव्यमाला
109. जयशंकर प्रसाद — काव्य और कला, प्रथम संस्करण
110. डॉ. आदित्य प्रसाद तिवारी — सूरसागर और रामचरित मानस का तुलनात्मक अनुशीलन
111. सेन गुप्ता — S.C.
112. काव्य मीमांसा अध्याय–4

113. प्रकाशक ओरिएण्ट इन्स्टीट्यूट बड़ौदा, 1934.
114. वासवदत्ता
115. रामचरित मानस — गीता प्रेस गोरखपुर
116. संस्कृत पोएटिक्स
117. देखें, नयी कविता का अनुशीलन — डॉ.ललिता अरोड़ा
118. नन्द दुलारे बाजपेयी — आधुनिक साहित्य
119. डॉ. माधुरी नाथ — मीरा काव्य का गीतिकाव्यात्मक विवेचन
120. कृष्ण देव शर्मा — भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र
121. नयी कविता स्वरूप और समस्याएँ
122. उपमा कालिदासस्य
123. अज्ञेय काव्य : सौंदर्य चेतना के बहिरंग आयाम
124. साहित्य समीक्षा के पाश्चात्य मानदंड — डॉ. राजेन्द्र वर्मा
125. नदी की बाँक पर छाया, अज्ञेय
126. चाँद का मुँह टेढ़ा है — मुक्तिबोध
127. विचार बोध — केदारनाथ अग्रवाल
128. कवियों के कवि शमशेर — रंजना अरगड़े
129. जंगल का दर्द — सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
130. ज्ञानोदय, सितम्बर 1963
131. चक्रकाल (भूमिका)
132. डॉ. सुधा सक्सेना — जायसी की बिम्ब योजना
133. निराला, परिमल
134. निराला — गीत कुंज
135. पंत–परिवर्तन.
136. निराला — राम की शक्तिपूजा
137. नंदकिशोर नवल — कविता की मुक्ति।

——00——